श्री गणेशाय नमः

भारत में मारवाड़ी समाज

लेखक—

भीमसेन केड़िया

प्रकाशक—

नेशनल इण्डिया पब्लिकेशन्स

कलकत्ता

सं० २००४

विषयानुक्रमणिका

परिच्छेद ४

परिच्छेद ५

परिच्छेद ६

परिच्छेद ७

परिच्छेद ८

परिच्छेद ९

परिच्छेद १०

चित्र

व्यंग चित्र

समर्पण

पगड़ी

तू राजस्थान की लाज है, तुझे नमस्कार है। तेरी मान-मर्यादा की अभिवृद्धि के प्रयास रूप में ही अपनी इस कृति को, अपनी लाज को तुझे ही समर्पित करता हूं।

—भीमसेन केड़िया

लेखक !

बाबू भीमसेनजी केड़िया !

बाबू मदनलालजी केड़िया, बड़ाबाजार कलकत्ता के एक ख्यातिप्राप्त कर्मठ व्यवसायी हैं। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक इन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र हैं। आप का जन्म संवत् १९७३ में बरेली नगर में हुआ। ७ वर्ष की अवस्था से ही आप St Xavier's College कलकत्ता में भरती करा दिये गये और वहीं आप को B. A. तक शिक्षा मिली।

शिक्षा, आविष्कार, संघर्ष, साहसिकता, दुर्घटना और परिभ्रमण ही आप के जीवन का मर्म है। आप 'अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन' की स्थायी समिति के सदस्य, और डिफेंस कमेटी के असिस्टेंट सेक्रेटरी हैं।

प्राक्कथन

मैं मारवाड़ी हूं, पूरा और कट्टर मारवाड़ी, और साथ ही उन मारवाड़ियों से घृणा भी करता हूं जो अपने आपको मारवाड़ी कहलाने में नाक भौं सिकोड़ते हैं और अपनी रक्षा और आत्म-सौंदर्य के लिये अपने आपको अन्य वर्गीय शब्दों के आवरण और संस्कृति में ढकने और अलंकृत करने की कोशिश करते हैं। हमारे पाठकों में भी यदि ऐसा ही कोई हो और उसे हमारा यह कथन यदि बुरा लगे तो लगा करे, बला से। जब मैं उनसे घृणा करने में स्वतन्त्र हूं तो वे बुरा मानने में भी स्वतन्त्र हैं।

जहांतक पुस्तक लिखने का तथा साहित्यिक क्षेत्र में प्रविष्ट होने का प्रश्न है, वहांतक प्रस्तुत पुस्तक मेरा प्रथम प्रयास है जो अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन के छठवें अधिवेशन के सिलसिले की तैयारियों के रूप में होनेवाली सभाओं तथा तत्सम्बन्धी प्रश्नों एवं विचार-विमर्शों की ही प्रेरणा है। सम्मेलन की स्टैंडिंग कमेटी के सभी सदस्य अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिये बम्बई जाने तथा कुछ न कुछ रचनात्मक कार्य कर दिखाने के लिये उत्सुक थे। मैं भी उन्हीं में से एक था। अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलनसे और कलकत्ते के हमारे इस क्षेत्र के कार्यकर्ताओं से मेरा परिचय, व्यक्तिगत रूप से तो थोड़ा बहुत, बहुत दिनों से ही था परन्तु सार्वजनिक और सामाजिक कार्यक्षेत्र में हमारा अनुभव अतीव अल्प-वयस्क है। अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन की इस थोड़ी सी जिन्दगी के दरम्यान जो कुछ मैंने देखा, सुना और पढ़ा, वह मेरे लिये बहुत भयङ्कर और घातक सिद्ध हुआ। इस संस्था के क्षेत्र में मुझे व्यक्तिगत रूप से तो बड़ा आदर मिला। मैं कामर्स

विभाग का मन्त्री भी बना दिया गया। उस पद पर रहते हुए, मेरी प्रगति तथा सेवाओं को देखकर मुझे स्टैंडिंग कमेटी का सदस्य भी बना दिया गया। इतना ही नहीं, संस्था की ओर से मुझे एक और भी गौरवास्पद पद—"डिफेंस कमेटी की सदस्यता"—पर भी आसीन किया गया तथा जिसके लिये मुझे एक ऐसे बहुत विख्यात, प्रकाण्ड सामाजिक कार्यकर्त्ता का भी समर्थन प्राप्त हुआ जिसे मैं बाद में बहुत आदर न दे सका।" सामाजिक कार्यक्षेत्र में इस दूरी तक पहुंचने से मेरे अनुभव पर तथा मेरी मनोवृत्तियों पर इस क़दर ठेस पहुंची कि मैं तिलमिला गया।

मारवाड़ी सम्मेलन के सम्पर्क में आने के पूर्व मैं अपने मारवाड़ीपन के प्रति जितने गौरव का अनुभव करता था; जैसा आदर्श रखता था, तथा उसके प्रति मेरी जो कल्पना थी, जो अनुभूति थी; मेरे हृदय में उसके प्रति जो प्रतिष्ठा का भाव था, वह सब सम्मेलन के कार्य क्षेत्र में प्रविष्ट होने पर जाता रहा। गया तो मैं था अपने हृदय के उन भावों को चरितार्थ करने तथा उन्हें विकसित करने के लिये, परन्तु मुझे लक्षण और फल उलटे दिखाई पड़े। वहां काम करते हुए मुझे मालूम पड़ा कि मैं कुछ प्राप्त करने के स्थान पर कुछ खोता जा रहा हूं।

मान, बड़ाई, धन इत्यादि से—जो मेरे पास पर्याप्त परिमाण में मौजूद थे—कुछ छुट्टी पाने की ही अभिलाषा लेकर मैं सार्वजनिक कार्य क्षेत्र में गया था परन्तु वहां भी मुझे चारों तरफ वही बातें देखने को मिलीं। मैंने देखा कि इन चीजों के प्रपञ्च में कार्य को भी ताक पर रख दिया जाता है। यह सब कुछ देखकर और भी तबियत परेशान हुई। कटु आक्षेप के रूप में नहीं, विशुद्ध सम भाव से ही हमें कहना पड़ता है कि हमारे समाज में कोई भी ऐसा नेता या कर्णधार नहीं है जो समाज को चतुर्मुखी बाधाओं से रक्षित और गौरवान्वित करने के लिये अथवा उसके लिये मर मिटने को तैयार हो। सभी तथाकथित सामाजिक नेता समाज को धिक्कारने में ही सामाजिक उत्थान के प्रति अपने कर्तव्य का आदि अंत समझते हैं और इसी गर्व में वे अपनी पटुता का दिग्दर्शन करते हैं जबकि सामाजिक अभ्युत्थान का रास्ता कुछ और ही है।

सुप्रसिद्ध तथा सफल अमेरिकन मनोविज्ञान् विशारद "कारनेगी" ने इस बात को

सम्यक् रूप से व्यवहारिक सिद्ध किया है कि—किसी भी व्यक्ति विशेष को, अथवा किसी समाज या राष्ट्र विशेष को धिक्कार देकर या लानत मलामत देकर उतना जल्दी आकृष्ट नहीं किया जा सकता जितना कि उसे गौरवान्वित करके तथा उसकी उत्कृष्ट भावनाओं पर छाप डालकर।

इन्हीं सब बातों को सोचते सोचते मेरी भी धारणा यही हुई कि सम्मेलन के छठवें अधिवेशन में उपस्थित होकर अपनी इसो पुस्तक की सेवा को समर्पित करूं परन्तु कुछ थोड़ा सा खेद इस बात का है कि समयाभाव से ऐन मौक़े पर हमारी यह साध पूरी न हो सकी फिर भी मैंने उसके लिये उतनी परवाह भी नहीं की इसलिये कि ज्यादा जल्दी करने से आत्म-तृप्ति की भावना को ठेस पहुंचती।

पुस्तक के बारे में मैं क्या कह सकता हूँ, वह तो आपकी पसंद के ही ऊपर रहने वाला विषय है। यों तो लेखक, कवि और चित्रकार जब कभी तूलिका उठाते हैं तो वे एक निधि ही प्रस्तुत करते हैं, और प्रायः वे अपनी उस निधि को, जिसपर सम्राटों का सारा वैभव, नियति की निष्ठुरता तथा स्वयं भगवान की प्रभुता भी न्योछावर हो जाया करती है, धूल में ही बिखेर देते हैं परन्तु जो कुछ वे देते हैं, वह उत्तम से उत्तम ही हुआ करती है। इस दिशा में मैं अभी बालक ही हूँ, अनभिज्ञ हूँ और आप हर दशा में हमसे श्रेष्ठ तथा वयस्क हैं। मेरा हक़ आपका समय नष्ट करने तक ही हो सकता है और उसके लिये भी मैं सदा ही क्षमा का अधिकारी हूं।

कदाचित् प्रस्तुत पुस्तक आपको पसन्द आ गई तो उस दशा में मैं अपना एक और हक़ यह समझता हूँ कि आप मुझे इसकी त्रुटियों से आगाह करें तथा कष्ट उठाकर मुझे बाध्य करें कि दूसरे संस्करण में उन त्रुटियों की मैं पूर्ति करूं।

यदि पुस्तक आपको पसन्द न हो तो भी मैं विचलित नहीं हो सकूंगा क्योंकि किसी को प्रसन्न करने के ही उद्देश्य से मैंने इसे नहीं लिखा है वरन् मारवाड़ी होने के नाते अपने एक कर्तव्य का ही पालन किया है जिसके लिये मुझपर किसी का बंधन नहीं है।

पुस्तक के लिखने में मुझे "समाज-सेवक" की पुरानी फाइलों से, मासिक पत्र "मारवाड़ी" के लेखों से, श्री रघुनाथप्रसाद सिंहानिया द्वारा रचित "मारवाड़ी भजन-

।

सागर" तथा श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा रचित "कविता-कौमुदी" प्रथम भाग से कई स्थलों पर विशेष सहायता मिली है, एतदर्थ ग्रन्थकर्त्ताओं तथा लेखकों के प्रति हम अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

पुस्तक की रचना, छपाई, ब्लाक और चित्रों का निर्माण आदि बहुत जल्दी में ही किये गये हैं, इसलिये कई जगहों पर प्रूफ की भूलें भी रह गई हैं। पृष्ठ २११ के स्थान पर १११, उसी पृष्ठ पर ११ वीं पंक्ति में अनभिज्ञता के स्थान पर अनभिरता, पृष्ठ २१३ पंक्ति ७ में "कहा जाता है" के स्थान पर "कही जाती है," उसीके नीचे की पंक्ति में "पर्यायवाची" के लिये प्रर्ययवाची, १२ वीं पंक्ति में बाक़ायदा के स्थान पर बकायदा तथा पृष्ठ २१४ पंक्ति १० में शिवाजयंती के स्थानपर शिवजयंती छप जाना भद्दी भूलें हैं। प्रेस की उदासीनता को कुछ न कहकर हम पाठकों से इस विषय में भी क्षमा-याचना करते हैं।

इसके अतिरिक्त, प्राचीन, आधुनिक तथा वर्तमान साहित्यिकों के प्रकरण में हमें यथा समय समाज के बहुत से विशिष्ट साहित्यिकों और कवियों का ठीक ठीक पता ठिकाना नहीं मिला, इसी प्रकार राष्ट्रसेवा, और बुद्धिजीवी व्यवसायियों के प्रकरणों में भी सम्पूर्ण नाम हम नहीं दे सके। एतदर्थ समाज के उन बहुमूल्य नर रत्नों के समक्ष हम अपना दोष शिरोधार्य करते हैं और याचना करते हैं कि वे अपना परिचय भेजने का कष्ट उठायें जिससे अगले संस्करण में मैं निर्दोष बन सकूं। अलमिति विस्तरेण।

अक्षय तृतीया
सं० २००४ वि०

भवदीय कृपाकांक्षी-
भीमसेन केड़िया

भूमिका

समय की गति मानव-समाज को अपने ही प्रवाह की दिशा की ओर, अपना अनुकरण कराने में संलग्न है और इसका आधार है—परिवर्तन—जिसके फल-स्वरूप कमजोर को साहज़ोर, नूतन को पुरातन, एवं पतन का उत्थान होना अनिवार्य है। सारांश में कह सकते हैं कि पूर्ण मानव-समाज में भावों की नूतन आवृत्तियां इस परिवर्तन का कारण है—परन्तु सफल वही हैं जो सुचारु रूपसे इसका अनुकरण करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक का ध्येय इसी परिवर्तन का आधारभूत तथ्य है, जिसमें मारवाड़ी समाज के तीनों कालों पर दृष्टिपात किया गया है। भूतमें क्या था—वर्तमान में क्या है—और भविष्यमें क्या होना चाहिए, इन्हीं विषयों का वृहत रूप सुचारु एवं सरल ढंग से वर्णित है। राजस्थानी रियासतों का रूप, उनकी तेजस्विनी गाथायें, अखण्डित कला एवं साहित्य का दिग्दर्शन कराने में लेखक ने पूरी दिलचस्पी से काम किया है।

किसी भी राजस्थानी अनभिज्ञ व्यक्ति के लिये अपने प्रांत की सम्पूर्ण रियासतों के, शुरु से लेकर आधुनिक काल तक, के संक्षिप्त इतिहास को जानने के लिये परिच्छेद नंबर ३ ही पर्याप्त है।

'भाषा, साहित्य और काव्य' शीर्षक परिच्छेदको लिखकर लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि इस साहित्य संसार में अपने राजस्थानी साहित्य का क्या स्थान था। 'ढोला-मरवण काव्य', चारण-गीत, चन्द बरदाई, नरसी मेहता की सुन्दर पंक्तियों को देने से एक सजीव चित्र प्रगट हो जाता है। आधुनिक कवियों के काव्यों का ज्ञान, उनकी कृतियों के आधारभूत रखकर बड़े ही सरल ढंग से कराया गया है।

इन विषयों को छोड़कर लेखक ने मारवाड़ी समाज की रूढ़ियों पर पूरा प्रकाश डाला है। इस प्रकरण को पढ़कर पाठक के हृदय में विचार-विद्रोह का तूफान तो उठता ही है, साथ ही उसमें एक दृढ़ निश्चय पर पहुंचने का साहस भी उत्पन्न हो जाता है। इन रूढ़ियों का क्या रूप है, इनके कारण कैसे और कितने गह्वर गर्त में समाज को गिर जाना पड़ा, आदि सभी विषयों का वर्णन विचारणीय है। प्रायः सभी सामाजिक रूढ़ियों को अलग अलग दिखाने के कारण पुस्तक की उपादेयता और उसका सौंदर्य और भी बढ़ गया है।

सार्वजनिक संस्थाओं और औद्योगिक प्रतिष्ठानों का जैसा कुछ संपादन प्रस्तुत किया गया है, वह अपने समाज का एक चिरस्थायी गौरव है।

इतना सब होते हुए भी राजनीतिक विषय के चित्रण में समाज के राष्ट्रवीरों की सूची दे देने से इस विषय का क्षेत्र सीमित हो गया है, कलकत्ता, बंबई, मध्य प्रांत, बिहार, तथा संयुक्त प्रांत के अनेक राजस्थानी कर्मठ राष्ट्रीय वीरों के—जो जेल गये और जिन्होंने सजायें भोगीं—नाम छूट गये हैं। सार्वजनिक संस्थाओं के संकलन में भी बंबई, जयपुर, फतहपुर (राजस्थान) की कई अत्यंत सजीव, सुदृढ़ और ज्वलंत संस्थाओं के नाम छूट गये हैं। प्रजामंडल के अनेक कर्मठ राष्ट्रवीरों तथा संगठनों का विवरण छूट गया है और वस्तुतः ऐसी सारयुक्त पुस्तक के लिये यह एक खटकनेवाली त्रुटि है। हम लेखक को सुझाव देंगे कि

वह अगले संस्करण में इसे पूर्ण करके अपनी कृति को साङ्गोपाङ्ग पूर्ण करे।

'भारतवर्ष के मानचित्र में राजस्थान', एक तिरंगा, कई एक एकरंगे, चित्र तथा कार्टून देकर पुस्तक के पीछे काफी व्यय करके उसे उपयोगी तथा लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न उत्तम है।

मैं आशा करता हूं कि सर्वसाधारण जनता इस वर्तमान युग में इस सामयिक पुस्तकको पढ़कर लाभ उठायेगी तो लेखक का प्रयास सफल होगा।

ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदा
संवत् २००४ वि०

—राधाकृष्ण नेवटिया (विशारद)

HINDUSTHAN
Scale 265 miles = to 1 inch
THIBET
BALUCHISTAN
ARABIAN SEA
Tropic of Cancer
BAY OF BENGAL
INDIAN OCEAN
Laccadive Islands
Maldive Islands
Coromandel Coast
Malabar Coast
Mouths of the Ganges
BOMBAY
MADRAS
CALCUTTA
Long. E. of Greenwich
NATIONAL INDIA
PUBLICATIONS
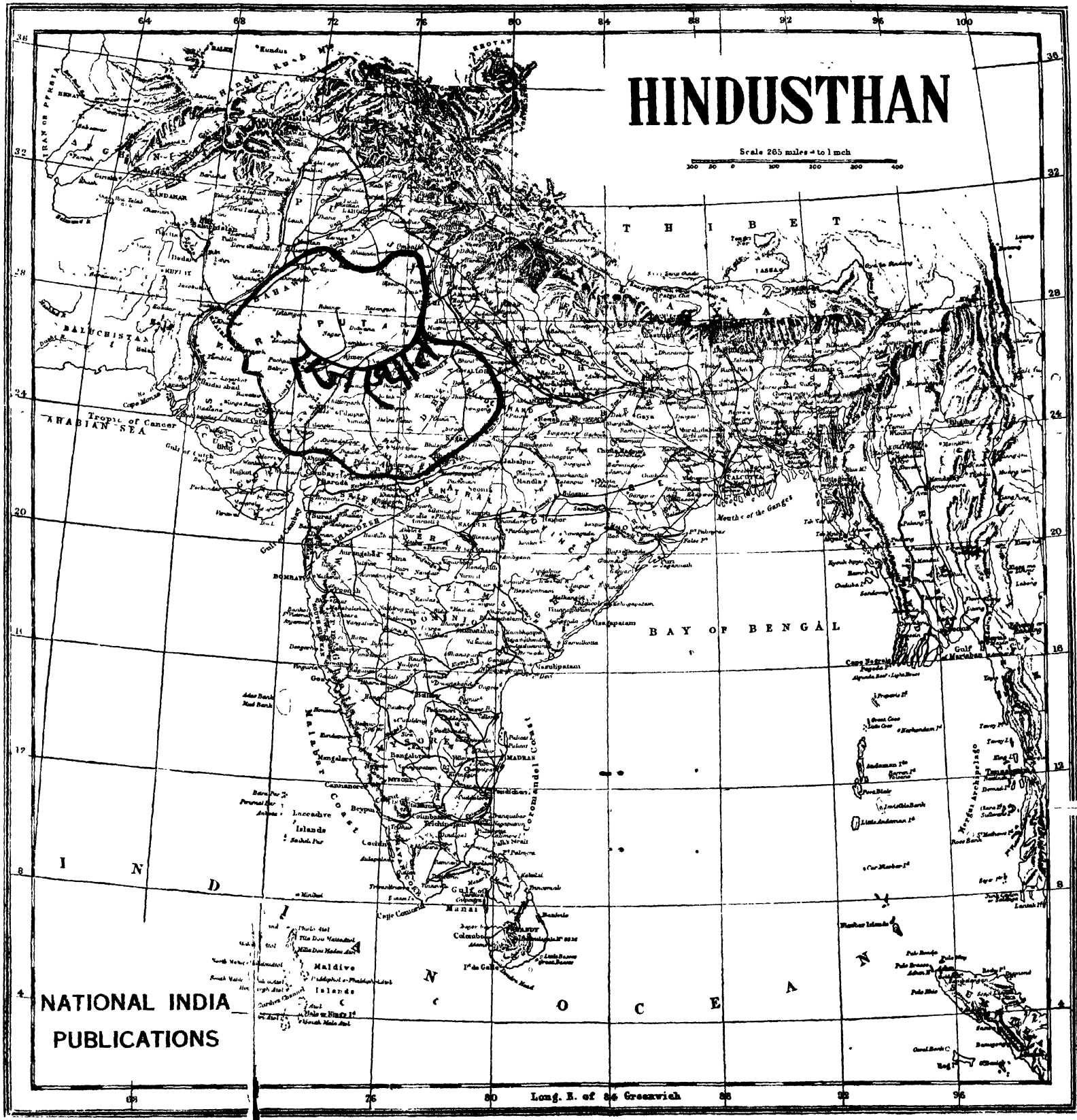
परिच्छेद १

मारवाड़ी शब्द की व्यापकता

वैश्य, राजपूत, राजस्थानी, बनिया इत्यादि शब्दों की अपेक्षा स्थानीय शब्द मारवाड़ी की व्यापकता आजकल अधिक और आमतौर से देखने में आ रही है। हम किसको मारवाड़ी कहें और किस आधार पर कहें, इस बात का निर्णय करना मामूली से ज्यादा मुश्किल प्रतीत होता है।

कुछ ऐसी बात नहीं है कि खास मारवाड़ प्रदेश निवासीको ही मारवाड़ी कहा जाता हो—और इसका भी पता लगाना बहुत मुश्किल है कि ऐसा क्यों होता है—क्योंकि महाराज अग्रसेन का ऐतिहासिक जन्मस्थान अग्रोहा पंजाब प्रदेश में है, फिर भी अग्रवाल जाति के प्रायः सब मनुष्यों को मारवाड़ी ही कहा जाता है। हमारे समाज की प्रचलित रीतिरस्मों का मखौल उड़ाने वाली अन्य जातियों में विशेष परिचय के रूप में मारवाड़ी शब्द व्याप्त है और देश विदेश, सर्वत्र विशिष्ट अर्थ सहित इस शब्द से सभी लोग परिचित हैं। अपनी विशेष वेशभूषा और बोली के दायरे के अन्दर आया हुआ हर एक आदमी, चाहे वह जिस प्रांत का निवासी हो, मारवाड़ी कहा जाता है और चूंकि दुनियां के प्रत्येक भाग में अपनी व्यापार कुशलता के कारण मारवाड़ी पाये जाते हैं, मुख्यतः इसीलिये इस शब्द की व्यापकता अधिक हो रही है।

जो लोग हमें कादर, बेवकूफ और 'आंख के अंधे और गांठ के पूरे' कहा करते हैं, प्रकाश्य रूप से भले ही वे 'मारवाड़ी' शब्द के घनिष्ठ संपर्क में मनोरंजन के आधार पर ही रहते हों, परन्तु वस्तुस्थिति यह नहीं है। वस्तुस्थिति यही है कि

वैश्यवृत्ति के प्रत्येक पहलू को चरितार्थ करने से जो सार्वभौम सफलता इस जाति को शीघ्र से शीघ्र मिल जाया करती है उसी की प्रतिक्रिया में 'मारवाड़ी' शब्द अन्य जातियों के लिये स्मरण और उच्चारण का विषय बनता है। इस प्रतिक्रिया में कहीं आंतरिक ईर्ष्या का भाव होता है, कहीं नीचा दिखाने की प्रवृत्ति छिपी रहती है और कहीं छिद्रान्वेषण को ताक पर रखकर गुण ग्राहकता के नाते आदर्श मानने की शुभ भावना काम करती है।

साधारण विवेचन पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस शब्द को व्यापक रूप देने वाला कारण केवल एक ही—वाणिज्य व्यवसाय संबंधी परंपरागत गुण और प्रवीणता ही—है, और वह कारण कुयोग और सुयोग पात्र-अपात्र में पड़कर—जैसा कि द्वंद्वमय संसार का सनातन नियम है—भिन्न भिन्न भावनाओं के रूप में प्रति-ध्वनित होता है।

'मारवाड़ी' शब्द की व्यापकता की एक सीमाबन्दी करने के प्रयास की ओर जब हम आगे बढ़ते हैं तो हमें वस्तुतः ऐसा कोई साधन नहीं मिलता जिससे यह मारवाड़ी का निरूपण हो। जो कुछ भी साधन साध्य हैं उन्हें कसौटी पर रखकर विचार किया जाय, तो हम अपनी व्याख्या इस प्रकार करेंगे :—

मारवाड़ी किसे कहा जाय?

एक ऐसा जन समुदाय, जो पूर्णरूप से हिन्दू सनातन धर्म का अनुयायी हो अथवा पूर्ण अहिंसा का भक्त जैन हो ; जिसकी अपनी विशेष प्रादेशिक अथवा राष्ट्रीय पोशाक हो, जिसने अपने खान पान में पूर्ण निरामिषता का निर्वाह आजतक किया हो और कर रहा हो, जो भारत की प्राचीन सभ्यता का पूर्ण भक्त हो, जो पूर्ण आस्तिक हो, जो दीन और अनाथों के प्रति दया के सच्चे भाव को चरितार्थ करता हो, जो देश प्रांत का भेद भुलाकर सर्वत्र धर्मशालायें बनवाने और सदावर्त बंटवाने में प्रवृत्त हो तथा जो अपने व्यवसायिक साहस और अध्यवसाय में संसार की सभी जातियों में शिरमौर हो, उसे मारवाड़ी कहना हम जैसे मारवाड़ियों का दृष्टिकोण होगा।

जो मारवाड़ी नहीं हैं उन लोगों में एक श्रेणी ऐसी होगी जो पराये दोषों को देखना सब से बड़ा अपराध समझेगी और ऐसी श्रेणी के लोग 'मारवाड़ी' शब्द से

'कुशल और साहसी व्यवसायी, झगड़े से दूर रहने वाले, एक विशिष्ट भाषा रीतिरस्म और वस्त्र परिधान धारण करने वाले वर्ग' का आशय ग्रहण करेंगे।

एक तीसरी श्रेणी उन लोगों की होगी जो 'मारवाड़ी' शब्द से यह आशय निकालेंगे :—

"जो डरपोक हो,

जो बुद्धू हो,

धनवाला होते हुए भी जो चालाक न हो,

बदले हुए ज़माने में भी जो अपने रीतिरस्मों में परिवर्तन न करे,

जिनकी औरतों की वेशभूषा असभ्य और अश्लील हो और जो विचित्र वस्त्र आभूषण पहन कर रास्तों में भद्दे गीत गाते हुए निकलें।"

प्रथम श्रेणी की परिभाषा चूंकि अपनी ही है इसलिये उसपर किसी प्रकार की विवेचना करनी ही नहीं है। द्वितीय श्रेणी की परिभाषा करने वाले साधु वृत्ति के लोगों की वृत्ति की टीका करना हमारी क्षमता के बाहर की बात है। अतएव हम तीसरी श्रेणी की परिभाषा पर ही प्रकाश डालना चाहते हैं।

कादरता अथवा भीरुता

आसन्न संघर्ष अथवा विपत्ति के मुक़ाबले आत्मबल के अभाव को ही कादरता या भीरुता कहते हैं जिसकी सद् और असद् दो शाखायें हैं। किसी दुष्कर्म के मुक़ाबले की कादरता सद् तथा स्वत्व, न्याय और सामूहिक हित के मुक़ाबले की कादरता असद् होती है। तो हमें देखना यह है कि क्या सचमुच मारवाड़ी वर्ग में ऐसी असद् कादरता व्याप्त है?

हमारा प्राचीन इतिहास अपने अगणित शूरवीर सद् साहसियों की दृष्टि से अप्रमेय है। हम देखते हैं कि भारतवर्ष की स्वाधीनता के आधुनिकतम संग्राम के सद् साहस में अनेकों मारवाड़ी वीरों का नाम आया है और आ रहा है। यदि वैश्य नीति के अनुसार कोई मारवाड़ी हर एक को राजी रखकर ही अपने उद्देश्य की पूर्ति का मर्म समझकर तदनुकूल आचरण करता है, तब तो संघर्ष से बचने की उसकी वृत्ति असद् कादरता की कोटि में नहीं आती। बापारावल से लेकर डाक्टर राम मनोहर

लोहिया तक समष्टि रूप से मारवाड़ी समाज पर हमें असद् कादरता कहीं भी नहीं दिखाई देती। व्यष्टि से यदि कोई मारवाड़ी डरपोक हो सकता है तो अन्य वर्गों में भी "काबुल में सब घोड़े ही नहीं होते" की उक्ति चरितार्थ होती है परन्तु व्यष्टि के आधार पर कोई निर्णय करना मूर्खता ही होती है।

जिस प्रकार कादरता की दो शाखायें हैं, उसी प्रकार साहस और वीरता की भी सद् और असद् दो शाखायें होती हैं। इस विचार से यदि किसी वर्ग में चोरी, डाकेज़नी, व्यभिचार और बलात्कार से सम्बन्धित असद् साहस और वीरता अधिक पाई जाती है तो वह वर्ग किसी ऐसे वर्ग का मखौल तो नहीं उड़ा सकता जिसमें ऐसा असद् साहस कम पाया जाता हो। हम यह भी नहीं कह सकते कि मारवाड़ी वर्ग में ऐसे दुस्साहसी हैं ही नहीं। अतः हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि मारवाड़ी शब्द के ऊपर आरोपित कादरता का आक्षेप निराधार है और वह पराभूत आत्माओं की ईर्ष्यामयी भावना का प्रतिबिम्ब मात्र है। व्यष्टि के आधार पर निर्णय करें तो सारे वर्ग 'मारवाड़ी' के ही अन्तर्गत आ जाते हैं!

बुद्धूपन

अपने विस्तार को नियंमित; संयमित और पोषित न रख सकने के भाव को बुद्धूपन कहते हैं। यहां विस्तार का अर्थ शारीरिक, पारिवारिक और प्रतिष्ठान संबंधी, सभी प्रकार की प्रशस्ति से है।

इस प्रश्न पर भी हमारा तर्क है कि बुद्धूपन भी दो प्रकार का हुआ करता है। एक बुद्धूपन वह होता है जिसका साधारण अर्थ होता है बेवकूफी और मूर्खता। दूसरा बुद्धूपन वह है जिसके बदले में कुछ इष्ट विषय सुलभ बनाया जाता है। इतना ही नहीं, एक चरमकोटि का बुद्धूपन भी होता है और वह कवियों, कलाकारों और सिद्ध संत-महात्माओं में हुआ करता है। "निज प्रभुमय देखहिं जगत, कासन करहिं विरोध" के वाक्य से गोस्वामी तुलसीदास ने इस भाव को व्यक्त किया है। चैतन्य महाप्रभु इसी भाव की मस्ती में यमुना की गहर धारा में कूद पड़े थे। आधुनिक युगके कवि भी संवेदना के हेत्वाभास (Pathetic fallacy) के आधार पर अपनी रहस्य वादी कवितायें इसी भाव से ओत प्रोत होकर करते हैं। जब एक

"अयि नभ क्षिति की सहचरि सुन्दरि,
पागल समझो, या दीवाना,
मैं समझूं दीवानी तुमको,
मैं कहूं विश्व ही दीवाना!"

तब वह अपने बुद्धूपन को भूलकर नियति और सारे विश्व को ही बुद्धू समझ लेता है! कौन निर्णय करेगा कि कवि बुद्धू है अथवा संसार!

उपर्युक्त तीनों प्रकार के बुद्धूपन को देखते हुए भी अपने वर्ग विशेष को ही बुद्धूपन की रस्सी से नहीं बांधा जा सकता। व्यष्टि की बात ही व्यर्थ है।

'आंख के अन्धे गांठ के पूरे'

यों कहने को चाहे जो कोई जिस किसी को, कुछ भी कहदे परन्तु वास्तविकता यह है कि उपर्युक्त लोगोक्ति ठगों, धूर्तों और प्रवंचकों की है। अपनी प्रवंचना और ठग विद्या में सफल होकर ठग लोग ठगे हुए आदमी का उपहास करते हुए यह मसल काम में लाते हैं। संसार में उचित अनुचित सभी प्रकार के व्यापार सदासे चले आते रहे हैं इसलिये चोरी, डाका, ठग विद्या भी सदा चला करती है, और यह भी निश्चित है कि जिसके पास कुछ होता है उसीको गंवाना पड़ता है, जिसके पास कुछ है ही नहीं, चोर डकैत और ठग उसके पीछे क्यों लगेंगे अस्तु कोई भी धनी या मालदार हो, यदि उसपर ठग और प्रवंचक का चक्र सफल हो जायगा तो अवश्य ही उसे 'आंख का अन्धा और गांठ का पूरा' कहा जायगा। बम्बई में चौपाटी के पास, कलकत्ता में हवड़ा स्टेशन, हवड़ा ब्रिज, लखनऊके केसरबाग, अमीनाबाद में, कानपुर में नहर के किनारे और परेड पर, आगरा स्टेशन, धर्मशाला और ताजमहल में, दिल्ली के चांदनी चौक में, प्रतिदिन या प्रति महीने जितने आदमियों की गाँठें कट जाया करती हैं, क्या किसीने गिन कर देखा है कि उसमें मारवाड़ी ही ज्यादा शिकार बनते हैं? कदापि नहीं, हमारा अनुभव तो यह है कि मारवाड़ियों की संख्या उनमें नहीं के ही बराबर होगी। ठग और बदमाशों के दायरे में मारवाड़ी अधिक संख्या में आ सकते हैं क्योंकि अधिकांश मारवाड़ी धनवान हैं फिर भी वे अन्य वर्ग वाले धनवानों के मुकाबले बहुत कम ठगे जा सकते हैं। मारवाड़ी को ठग लेना जरा

टेढ़ी खीर है। हां एक बात यह जरूर है कि ठगे जाने पर अथवा लूट लिये जाने पर वे आततायी के पीछे पड़ना कम पसन्द करते हैं जिसका कारण है ब्रिटिश शासन में न्याय की मंहगाई। वे देखते हैं कि आततायी के पीछे पड़ने से जो हैरानी, खर्च और समय की बरबादी सहनी पड़ेगी उससे कहीं अच्छा होगा कि हम अपने उद्योग में लगे रहकर ही अपनी क्षति पूर्ति कर लेंगे। मारवाड़ी को अपनी कमाई का जबर्दस्त भरोसा रहता है इसीलिये वह सारे झंझटों को अलग करके अपनी कमाई की ही ओर अपना ध्यान रखता है।

'लकीर के फकीर'

'जमाने का बदलना और अपनी पुरानी चाल; पुराने रीति रिवाजों से चिपके रहना' यह एक आम शिकायत है, जो हमारे खयाल से भारतवर्ष के सभी वर्गों में सुनी जाती है और देश के उन भागों में, जहां मुस्लिमकालीन आतंक का जोर अधिक रहा है, इस विषय का आन्दोलन अधिक है। सोचने की बात यह है कि जो लोग बदले हुए जमानेमें भी अपनी रूढ़ियों को नहीं छोड़ रहे हैं, क्या असल में वे भूल करते हैं? यह प्रश्न ऐसा है जिस पर बहुत कुछ वाद विवाद चल सकता है फिर भी इस बात पर दो मत नहीं हो सकते कि किसी नवीन श्रेयस्कर मार्ग अथवा प्रचलन पर अपने स्थायित्व का परिचय यही हुआ करता है कि जिस प्राचीन पद्धति पर कोई चल रहा है उसे सहज ही में और जल्दी से ही न छोड़ दिया जाय, यदि आज हम हजारों वर्षों की अपनी पद्धति को तत्काल छोड़ देते हैं तो क्या प्रमाण है कि हम नवीन पद्धति पर बहुत दिन तक क़ायम रह सकेंगे?

एक दूसरा विचारणीय विषय यह भी है कि नये जमाने की बहुत सी बातें, जो अभी श्रेयस्कर मालूम होती हैं, संभव है कि आगे चलकर वही अश्रेयस्कर हो जायं। बौद्ध धर्म के बढ़ते हुए वेग और उस जमाने के प्रवाह के प्रतिकूल जो ब्राह्मण अपनी पद्धति पर ही डटे रहे; इसी प्रकार हज़ारों वर्ष तक चलने वाले मुस्लिम जमाने में हजारों यातनायें सहकर जिन्होंने अपनी पद्धति को नहीं छोड़ा, यदि उन्हें 'लकीर के फकीर' नहीं कहा जा सकता तो अंगरेज़ी जमाने की इस दौड़ में जो लोग इतनी जल्दी अपनी पद्धति का परित्याग नहीं कर रहे हैं तो क्या यह उनका कोई

बहुत बड़ा अपराध है ? हम मानते हैं कि आज का युग विज्ञान का युग है, परन्तु हम यह देखते हैं कि वही विज्ञान २०-२० वर्षों में ही महायुद्ध के रूप में मानवकृत प्रलयकांड प्रस्तुत कर रहा है, दमन, शोषण और उत्पीड़न की पिचाश वृत्ति को चरितार्थ कर रहा है, क्या इस विज्ञान से साधारण ज्ञान श्रेयस्कर नहीं है ?

हमें यह भी देखना है कि किसी देश, जाति, और संस्कृति का प्रतीक, भाषा वेष और रीति रस्मों के ही रूप में होता है और इनके विलोप का अर्थ उस देश, जाति और संस्कृति का विलोप होता है। जो वस्तुतः विज्ञान निष्णात, गंभीर ज्ञान वाले हैं वे इस तथ्य का आदर करते हैं। इस संबंध का एक दिलचस्प उदाहरण यह है कि सन् १९११ ई० में दिल्ली-दरबार के समय भारतवर्ष के अनेक राजा-रईस सम्राट जार्ज पञ्चम की अभ्यर्थना के लिये दिल्ली पहुंचे हुए थे। खैरख्वाही और ख़ुशामदी वृत्ति का बाजार गर्म हो रहा था। अंगरेज़ सम्राट की दृष्टि में उच्च जँचने की अभिलाषा में अनेक नरेशों और रईसों ने अपने निजी सांस्कृतिक तरीक़ों को यातो छोड़ ही दिया था अथवा अंशतः छोड़कर अंगरेजी रंग ढङ्ग अख्तियार किया था। पोशाक से लेकर चाल ढाल और सत्कार विधि तक में भारतीयता का गला घोंटकर अंगरेजीपन प्रतिष्ठित किया गया था। तम्बू और खीमों पर 'God Save The King' आदि खुशामदाना जुमले अङ्कित दिखाई पड़ते थे। सम्राट के पास पहुंचने में भी अङ्गरेज़ी रंग ढङ्ग से काम लिया जा रहा था परन्तु अनेक नरेशों के खीमों में से एक खीमा ऐसा भी था जिसमें केवल एक सीधा सादा वाक्य यही अङ्कित था कि—"भारतवर्ष में शुभागमन" (Welcome to India) यह खीमा था हिन्दूकुल गौरव महाराणा प्रताप सिंह के वंशज उदयपुर नरेश का।

पाठकोंको मालूम होगा कि इस अवसर पर भी उदयपुर नरेश स्वयं सम्राट के पास नहीं गये; वहां गया था महाराज उदयपुर का प्रतिनिधि, भारतीय पोशाक में; भारतीय आन बान और शान के साथ! और सम्राट की ओर से इसी रजवाड़े के प्रति सबसे अधिक सम्मान प्रगट किया गया!

प्राचीन रीति रस्मों पर चिपके रहने की भी एक गौरव पूर्ण कहानी इस प्रकार है। १९ वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में भारतवर्ष में एक ऐसा वायसराय आया

जो अपनी जाति के लिये नेकनाम, नेकवख्त तथा भारतीयों के लिये बदनीयत और बदनाम हो चुका है। देशी रियासतों के निरीक्षण के सिलसिले में यह महानुभाव उदयपुर भी पहुंचे। राजदरबार की ड्योढ़ी में एक बहुत पुराना नगाड़ा रक्खा हुआ है और मेवाड़ नरेश की परंपरा की रूढ़ि के अनुसार उस नगाड़े पर तभी चोभ दी जाती है, जब राज्य पर कोई भारी बिपत्ति आती है। और इसका शब्द सुनते ही राजधानी की प्रजा तत्काल अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर आगत विपत्ति के विरुद्ध प्रहार शुरू कर देती है।

वायसराय महोदय ने उदयपुर नरेश से उस नगाड़े के सम्बन्ध में परिचय प्राप्त किया और अन्त में वे हठ कर बैठे कि नगाड़ा बजाया ही जाय। नरेश ने बहुत कुछ कहा कि पद्धति यही है कि आफत आने पर ही इसे बजाया जाय, परन्तु जिद्दी वायसराय ने एक न सुनी और नगाड़ा बजा ही दिया गया। नगाड़े का शब्द सुनते ही उदयपुर में भूचाल सा आ गया! पल भर में ऐसा मालूम पड़ने लगा कि अनेकों जङ्गली चीते शहर में भर गये हैं। राजपूत, क्षत्री, वैश्य, शुद्र, बालक, वृद्ध, युवा और अधिक संख्या में भील सब के सब भूखे शेरों की तरह राजमहल की ओर झपटे। वायसराय महोदय के होश गुम हो गये, इसी समय कोल भीलों की सेनाने अङ्गरेजी सवारियों पर तीर छोड़ ही दिये। वायसराय महोदय कह रहे थे कि-इन्हें रोकिये-परन्तु उदयपुर नरेश कह रहे थे कि "इन्हें रोकने का काम हमारा नहीं है"। देखते ही देखते एक अङ्गरेज सेक्रेटरी तीर खाकर धराशायी हो गया। बड़ी मुश्किल से, इनाम इक्राम बांटकर स्थिति शान्त की गई। तबसे उक्त वायसराय महोदय उदयपुर से बहुत डरा करते थे।

इन उदाहरणों को ध्यान में रखकर अपने रीति रिवाजों और अपनी पद्धति एवं अपनी संस्कृति के चिन्हों के परित्याग की सलाह देकर समाज की कौन सो भलाई की जा सकती है? सभी वर्ग अपने सामाजिक संस्कारों को अपनाये हुये हैं इसलिये इस दिशा में भी विचार किया जाय तो भारतवर्ष के सभी वर्ग मारवाड़ी ही जैसे पाये जायंगे।

नारी-वेश; परदा

अब नारी-वेश और परदा विषय को लीजिये। धोती, साड़ी, लहँगा और चादर का पहनावा हमारे देश के सभी वर्गों की स्त्रियों में पाया जाता है। पहनने के ढङ्ग तथा वस्त्रों के रंग, नक्काशी और किनारीमें ही कुछ भेद पाया जाता है। अतएव इस विषय पर खास मारवाड़ी या राजस्थानीय नारी के वेश में आलोचना का विषय है 'परदा'।

ऐतिहासिक अन्वेषण से पता चलता है कि भारतवर्ष में मुस्लिम शासन या मुस्लिम आक्रमण के पूर्व परदा नाम की कोई चीज़ नहीं थी। मुसल्मानों की जाति का ही परदे से बहुत पुरातन सम्बन्ध रहा है। मुस्लिम जाति के अन्दर शूर वीरता की शत्रु विलासिता न घुसने पावे, इसी उद्देश्य को लेकर इस्लाम के आचार्यों ने नारी जाति को बुरके के अन्दर इस प्रकार रखने को व्यवस्था को कि उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों और भाव भङ्गियों का नज़ारा पुरुष की दृष्टि में न पड़ सके और इस प्रकार पुरुष के मानसिक भावों में विलासिता का भाव उद्दीप्त न हो। दूसरी ओर पुरुषों को दाढ़ी, मूछ रखवाने का विधान भी इसी उद्देश्य को लेकर बना।

भारतवर्ष पर मुस्लिम आक्रमण होने के बाद से ही इस देश में भी परदे का प्रारम्भ हुआ परन्तु यहां के परदे का तरीका वैसा सुचारु कभी नहीं रहा जैसा कि मुस्लिम समाज में रहा है। भारतवर्ष के जिन-जिन भागों में मुसल्मानी प्रभाव का जोर अधिक रहा है, और जहां जहां मुस्लिम आक्रमणकारियों का चाप अधिक पड़ा, वहां वहां परदे का विशेष प्रचलन पाया जाता है।

यदि हम राजस्थान को परदे के विचार से पहला नम्बर दें तो दूसरे नम्बर पर अवध खंड और संयुक्तप्रान्त आयेगा। तीसरे नम्बर पर विहार, चौथे पर बंगाल, पांचवें पर पंजाब और छठें स्थान पर गुजरात आता है। महाराष्ट्र और मद्रास की संस्कृति पर परदे का कोई प्रभाव नहीं है।

परदे के प्रश्न पर यदि व्यापक दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो अंगरेज, पारसी जाति में भी इसका चिन्ह पाया जाता है और विवाहके समय बधू का मुख-मंडल एक आवरण डाल कर ढक दिया जाता है। इसी प्रकार काम-विज्ञान और

शृंगार की सूक्ष्मताओं के विचार से भी अवगुंठन के कारण सौंदर्य की एक विशिष्ट कला का विकास भले ही माना जा सकता है परन्तु अब इस विषय पर कोई मतभेद नहीं रहा कि नारी के समानाधिकार के युग में न तो परदे की ही कोई जरूरत है और न उसमें हानि छोड़, कोई लाभ ही है। एक मोटी अधेड़ औरत निश्चय ही परदे के अर्थ में पूरी बेपर्दगी और उपहास का साधन प्रस्तुत करती है, जब वह भद्दे ढङ्ग से मुँह को ढक लेती है परन्तु उसका नीचे से ऊपर तक लटकता हुआ सा पेट खुला रहता है। वस्तुतः परदा न तो हमारी किसी संस्कृति की चीज़ है, और न हमारी कोई निज की पद्धति ही है फिर भी केवल राजस्थानीय नारी को ही परदे के कारण लांछित नहीं किया जा सकता। भद्दे ढङ्ग के पहनावे और ऊटपटांग आभूषणों के लिये इस देश के अनेक शिष्ट वर्ग भी लांछित किये जा सकते हैं। जिस प्रकार इस तरह के भद्दे और बेबुनियादी प्रचलनों को दूर करने की आवश्यकता राजस्थानी समाज को है उसी प्रकार देश के कई अन्य वर्गों के लिये भी भद्दे ढङ्गों को दूर करना आवश्यक है। परन्तु किसी बेबुनियादी तत्व को समाज के अन्दर से निकाल फेंकने का तरीक़ा यह नहीं है कि अन्धे होकर एक तरफ से अपनी हरएक रूढ़ि के ऐब ही ऐब दिखाये जायं और उन्हें परित्याग कर देने की भयंकर सलाह लेखों और लेक्चरों द्वारा फैलाई जाय, ऐसे कवि और लेखक वास्तव में समाज के हितैषी नहीं कहे जा सकते जो अपने निराशावाद के गीतों से और अपने सांस्कृतिक चिन्हों के छिद्रान्वेषण से समाज को अपने स्थान से च्युत हो जाने की सलाह तो देते हैं, परन्तु समाज को जिस स्थान पर प्रतिष्ठित करना है उस स्थान का निरूपण नहीं करते। वास्तविकता तो यह है कि समाज को समाज के ही रूप में रखना होता है और इसलिये उसके उत्थान का तरीक़ा भी यही होगा कि प्रचलित रूढ़ियों और चिन्हों को पहले शिक्षित और अशिक्षित सभी स्त्री-पुरुषों द्वारा अपनाना होगा, उनके गुण अव-गुणों तथा उनकी प्राचीनता और नवीनता का पता लगाना होगा, उसके बाद असलियत को क़ायम रखते हुए नकली रूढ़ियों और चिन्हों को हटा देना होगा। इतना कर चुकने के बाद शनैः शनैः अपनी रूढ़ियों और चिन्हों में देश काल के अनुसार किंचित सुधार और हेर-फेर कर लेना होगा और इसका भी ढङ्ग यह है कि शिक्षित और

सम्पन्न व्यक्ति स्वयं वैसा आचरण करते हुए भी वैसा न करने वाले अशिक्षितों से सीधा संघर्ष न खड़ा करें, प्रत्युत प्राचीनता को समादृत करते हुए ही प्रभावान्वित करें।

देशकालानुकुल परिवर्तन की व्यवस्था हिन्दू-धर्म की सभी स्मृतियों ने दी है, फिर भी किसी सिद्धान्त की सैद्धान्तिकता का ही ढोल न पीट कर उसकी व्यवहारिकता का भी खयाल रखना पड़ेगा। अपनी इस बात को और स्पष्ट करते हुए हम उदाहरण यह दे सकते हैं कि मान लीजिये कि कोई उच्च शिक्षा प्राप्त मारवाड़ी नवयुवक आज अपनी पत्नी के साथ इङ्गलैण्ड जाता है जहां उसे अपनी पोशाक छोड़ कर सूट-बूट पहनने की जरूरत होती है क्योंकि देशकाल वैसी ही व्यवस्था देता है, और सिद्धान्त के अनुसार उसके पत्नी को भी अंगरेज़ महिलाओं जैसी पोशाक पहननी चाहिये, परन्तु सोचने की बात है कि क्या यह बात व्यवहारिक हो सकती है?

मारवाड़ी, गैर मारवाड़ी सभी समाजों के लिये समान रूप से आवश्यक तत्वों पर इतने अंश तक प्रकाश डाल चुकने के उपरान्त हम पुनः अपने प्रकृत विषय की ओर आते हैं। जो लोग विद्रूप और अवगुण परायणता के सहारे मारवाड़ी समाज का निरूपण करते हैं, अपने पूर्व वर्णित तथ्यों द्वारा हमने सिद्ध कर दिया है कि उस प्रकार के निरूपण से भारतवर्ष का कोई भी समाज गैर मारवाड़ी हो ही नहीं सकता। और ऐसी दशा में मारवाड़ी शब्द की व्यापकता का कोई सवाल ही नहीं रह जायगा प्रत्युत यह शब्द—चूंकि मारवाड़ी मुसलमान भी होते हैं इसलिये—सार्वभौम अस्तित्व में आ जायगा! परन्तु असल में बात ऐसी नहीं है। मारवाड़ी एक विशिष्ट समाज है जिसका साधारण परिचय इस प्रकार है :—

प्रस्तुत मानचित्र में विशेष सीमा के अन्तर्गत वाले राजस्थानी निवासियों की संज्ञा मारवाड़ी होगी।

इस प्रदेश में बुनियादी निवासी, चाहे वे ब्राह्मण, क्षत्रिय हों, अथवा वैश्य या शूद्र, सब मारवाड़ी हैं। इस प्रदेश के निवासी विभिन्न प्रान्तों और देशों में जाकर बस गये हैं परन्तु कई कई पीढ़ियों तक प्रवासी रहते हुए भी उन्हें मारवाड़ी ही कहा जाता है।

गौड़, चौरासिया, सारस्वत आदि ब्राह्मण वंश मारवाड़ के ही निवासी हैं और जीविका के लिये देश-विदेश के विभिन्न स्थानों में पाये जाते हैं।

क्षत्रिय राजवंश के अतिरिक्त देश के किसी भी भाग में रहने वाले उन सभी राजपूत क्षत्रियों को—जिनका—रोटी-बेटी का सम्बन्ध राजस्थान से है—मारवाड़ी कहा जायगा।

मारवाड़ी शब्द संसार के लिये जिस बर्ग की बदौलत विशेष विख्यात है वह है वैश्यवर्ग। १७॥ गोत्रों वाले अग्रवाल वंशीय प्रायः सभी वैश्यों को मारवाड़ी कहा जा सकता है। बीकानेरी, जोधपुरी, महेश्वरी, झालावाड़ी, उदयपुरी, जैन अग्रवाल, ओसवाल, दस्से, बिस्से, बागड़ी, खण्डेलवाल, भिवानीवाले, हरियाना वाले तथा बियाणी आदि वैश्य सब मारवाड़ी कहे जाते हैं चाहे वे कहीं भी रहते हों।

मीण, बावरिया, जाट, गूजर, माली नाई, धोबी आदि सेवक अथवा शूद्रवर्गीय लोग मारवाड़ी ही हैं। अन्य देशीय लोग जिनकी राष्ट्रीयता भी भिन्न रही है, मारवाड़ में रहकर मारवाड़ी कहलाते हैं। राजस्थान निवासी मुसलमान को भाषा और उसके वेश को देखने से पता चलता है कि वह मुसलमान कम और मारवाड़ी अधिक है।

पिछले कुछ आंकड़ों के आधार पर जाना गया है कि भारतवर्ष की आवादी में क़रीब पांच करोड़ की संख्या में ऐसा जनवर्ग है जिसे मारवाड़ी कहते हैं। इतनी विशाल जन संख्या वाले समुदाय की संस्कृति और उसकी राष्ट्रीयता का परिपुष्ट स्थान किसी भी प्रकार अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

मारवाड़ी का पर्यायवाची शब्द राजस्थानी है। मारवाड़ियों का आदर्श राजस्थान है। राजस्थानी भाषा; राजस्थानी संस्कार और राजस्थानी परम्परा ही मारवाड़ियों का सीधा और निकटतम संबंध है। मारवाड़ियों का दावा है कि हमारे देश का विशुद्ध राष्ट्रीय नाम यदि कोई हो सकता है तो "राजस्थान" ही हो सकता है।

*

*

परिच्छेद २

संक्षिप्त इतिहास और गौरव

राजस्थान अथवा मारवाड़ के संबंध में कुछ लिखने के पूर्व उसके इतिहास और गौरव के संबन्ध में प्रकाश डालना आवश्यक है, अतएव इसी विषय की ओर पहले पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया जाता है :—

यों तो भारतवर्ष और उसके अधिवासी प्रमुख चार वर्णों का इतिहास इतना प्राचीन है कि उसके समय का यथार्थ निरूपण करना अन्वेषकों की शक्ति से बाहर है। अपनी पौराणिक निधि के आधार पर विचार करने से तो यह पता चलता है कि युग युगान्तर और अनेक मन्वंतरों में चारों वर्णों का प्रसंग आता है। इन्द्रादि देवताओं का अस्तित्व भिन्न भिन्न युगों में भिन्न भिन्न प्रकरणों और कथाओं के रूप में मिलता है। चंद्रवंशी और सूर्यबंशी क्षत्रिय राजाओं का इतिहास, ब्राह्मण और ब्रह्म का इतिहास, इसी प्रकार वैश्य एव शूद्र वंश के इतिहास पौराणिक दृष्टि से अलग नहीं हैं, प्रत्युत परब्रह्म परमात्मा की सृष्टि के सनातन आवश्यक अंग हैं। वाराह पुराणमें जिस समाधि नामक वैश्य की कथा, अष्टम मनु राजवंश से संबंधित पाई जाती है और जस से संम्बधित, लोक प्रसिद्ध "दुर्गा सप्तशती" का तांत्रिक ग्रन्थ निर्मित हुआ है, वह भी वैश्य वंश-परंपरा का बहुत पीछे का एक महाजन सिद्ध होता है। तात्पर्य यह है कि "चातुवर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः" के आधार पर भारत वर्ष और उसके चारों वर्णों का इतिहास हम सनातन मानते हैं और पुराण युग उपरांत से जो युग प्रारंभ होता है वहाँ से प्रचलित इतिहास नवीन बुद्धिवादियों को मान्य होता है, इसलिये वहीं से हम राजस्थान के इतिहास का विवेचन करेंगे।

मारवाड़ शब्द माएवार का अपभ्रंश है। यथार्थ में इसका नाम मरुस्थल या मरुदेश है। विदेशी लोगों ने जिन्हें इस देश के शब्दों और उनकी व्युत्पत्ति का ज्ञान नहीं था—इसे मारदेश भी लिखा है। बुद्ध और महावीर स्वामी के समय; सिकन्दर के आक्रमण काल में; भी इस मरुदेश में क्षत्रिय राजाओं का राज्य था, परन्तु इस प्रदेश को दुर्गम तथा 'दुःसाध्य-विजय' समझ कर कोई इस ओर बढ़ने का साहस नहीं करता था। अलाउद्दीन खिलजी के समय तक इस प्रदेश की ओर बढ़ने की किसीको हिम्मत नहीं हुई थी। प्राचीन काल में मरुदेश का बिस्तार समुद्रसे लेकर सतलज तट तक समझा जाता था। इस देश के राजाओं की सूर्यवंशीय (सीसोदिया) परंपरा अनादि काल से अखंड चली आ रही है। आधुनिक अनुसंधान में जहां से राजबंश का पता लगा है वहां से उनका परिचय इस प्रकार हैः—

कन्नौज के राजा जयचन्द जब भारतवर्ष की केंद्रीय सत्ता का विनाश कराकर बाद में पश्चात्ताप के कारण गंगा में डूब मरे तो १८ वर्ष बाद सम्बत् १२६८ सन् १२१२ ई० में उनके पौत्र सियाजी और सेताराम कन्नौज से मारवाड़ चले आये जिनके साथ २०० अन्य साथी भी आये। राव सियाजी ने उस समय के प्रसिद्ध डाकू लाखा फलाणी को परास्त किया। इनकी मृत्यु सं० १३१० ई० में हुई।

सन् १४१७ ई० में मारवाड़ की गद्दीपर रावरीर मल नामक प्रसिद्ध राजा बैठा। सन् १४५३ ई० में जौधाजी राजा हुए जिन्होंने वर्तमान जोधपुर नगर की नींव डाली थी। इसके बाद सन १४९१ ई० से सन् १८९५ ई० तक खास मारवाड़ के राजाओं में—सूजा, उदयसिंह (राज्य नहीं किया), गंगा, मलदेब, उदयसिंह अर्थात् मोटा राजा, राजा सूर्यसिंह, गजसिंह, महाराजा जसबन्त सिंह प्रथम, अजोत सिंह, अभीसिंह, बखतसिंह, विजयसिंह, भीमसिंह, मानसिंह, जसबन्तसिंह द्वितीय, नखत सिंह और सरदार सिंह हैं।

इन राजाओं के विषय में इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि इनके कार्य कलाप शूर वोरता और राजनीति के कारण लोक दृष्टि में अप्रचलित और अपरिचित मरुदेश संसार में प्रसिद्ध हुआ। यदि समस्त मरुदेश के चन्द्रवंशीय एवं सूर्यवंशीय राजाओं और शूर सामन्तों का इतिहास लिखा जाय तो पुस्तक बहुत बड़ी हो जायगी। कर्नल

टाड द्वारा प्रस्तुत इतिहास इस दिशा में सबके आगे है, पाठक उससे अपरिचित नहीं हैं। जहाँ पर हिन्दू जाति के अप्रतिम नर पुङ्गव क्षत्रिय वीर महाराणा प्रताप सिंह का स्वर्णिम इतिहास उपस्थित है वहीं राजस्थान के वैश्य रत्न भामाशाह की कीर्ति पताका अपनी अमर कहानी लिये हुए अलग लहरा रही है तथा "परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्"की, योगेश्वर कृष्ण की वाणी राजस्थानीय भीलों ने चरितार्थ की है।

आजकल मरुदेश का आशय उसी भूभाग तक सीमित समझा जाता है जो राठौर वंश के अधिकार में है।

राजस्थानीय राज्यों में जोधपुर या मारवाड़, बीकानेर, जैसलमेर, जयपुर मेवाड़ बून्दी कोटा आदि विशेष प्रसिद्ध हैं।

मारवाड़ का संक्षिप्त परिचय ऊपर दिया जा चुका है। कर्नल टाड साहब का मत है कि राजपूताने के राजाओं में बीकानेर का स्थान द्वितीय श्रेणी में है जिसके राजा जोधपुर के राजवंश से हैं। आदि राजा मूलराज थे जिन्होंने मारवाड़ की उत्तरी सीमा को जीतकर अपने राज्य की प्रतिष्ठा की थी। मूलराज ने मारवाड़ की नितान्त मरुस्थली में अपना राज्य बनाकर उसकी स्वाधीनता की रक्षा के लिये विशेष व्यवस्था की थी।

इस गद्दी के दूसरे प्रसिद्ध राजा राव बीका हुए हैं जिन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया। आपके प्रताप से वर्तमान बीकानेर नाम चल रहा है। उनके पश्चात २० अन्य राजाओं के बाद राजा गंगा सिंह जी हुए। राजा गंगा सिंह ने आजकल के समय के अनुकूल राज्य तथा प्रजा की सुविधा के लिये ऐसे ऐसे काम किये हैं जिससे इस राज्य का काया कल्प ही हो गया है। जो बीकानेर जलाभाव के कारण दुनियां वालों के लिये एक कौतूहल बना हुआ था, वहाँ राजा गंगा सिंह ने यथा नाम तथा गुण की सूचना देते हुए अनेकों नहरें तैयार करा दी हैं। ऐसे मरुप्रदेश में नहरें निकालना एक ऐसा काम है जिसे किसी भी दशा में साधारण नहीं कहा जा सकता।

तीसरा प्रसिद्ध राज्य जैसलमेर है। यह राजवंश अपने को भगवान श्रीकृष्ण का वंशज मानता है। जैसलमेर नाम आधुनिक है। प्राचीन भूगोल के अनुसार मरुक्षेत्र के मध्य में इसे मरुस्थल कहा जाता था और 'मरु' के नाम से पुकारा जाता

था। रेतीले भूभाग के बीच में जैसलमेर पाषाणमय भूमि पर बसा हुआ है। यहां के प्राकृतिक दृश्य विशेष दर्शनीय हैं। इस देश के स्थानीय आचार विचार, व्यवहार, कृषि स्वभाव, वृक्ष और खेती का विवरण बड़ा विचित्र है। इस वंश के राजाओं ने बाहर के अनेकों देशों पर विजय प्राप्त की थी। राजस्थान के अन्दर जैसलमेर एक श्रेष्ठ नगर माना जाता है। राज्य का प्रारम्भ लगभग १६०० ई० से माना जाता है। भीमसिंह इस राज्य के संस्थापक थे जिनके बाद सांवलसिंह तथा अमरसिंह राजा हुए। इसके पश्चात जसवंतसिंह तथा बुद्धासिंह हुए जिन्होंने कुछ ही दिन राज्य किया।

प्रसिद्ध राजा नल तथा शालिवाहन इसी परम्परा के सम्राट थे। नल की ३३ पीढ़ी बाद सोढ़सिंह के पुत्र दूलेराव पिता के राज्य से निकाल दिये गये थे। उन्होंने संवत् १०२३ में ढूंढाढ़ नाम की राजधानो बनाई। इसके बाद ११ अन्य राजा हुए जिनमें बनबीर और पृथ्वीराज भी हैं। इन राजाओं का विवरण इतिहास में उपलब्ध नहीं है, केवल पृथ्वीराज के शासन के समय में आमेर राज्य का नवीन अनुष्ठान हुआ है। इसके बाद भारमल राजा हुए जिन्होंने सब से पहले राजस्थान की प्रतिष्ठा में कलंक लगाया। इसके बाद भगवान दास राजा हुए और उन्होंने राज्य की उन्नति भी की परन्तु इन्होंने ब्याह शादी आदि का संबन्ध जोड़कर सम्राट अकबर की कृपा भिक्षा के बलपर ही जो कुछ किया सो किया। इनके बाद इनके भतीजे मानसिंह राजा हुए। सम्राट अकबर के सहकारी होकर मानसिंह ने समुद्रतट के समस्त देशों को अपने बाहुबल से जीता और उन्हें मुस्लिम साम्राज्य में शामिल करवा दिया।

राजा मानसिंह मुगल सम्राट के सेनापति बनकर अपनी वीरता से काम लेते थे परन्तु अपनी विजय के सिलसिले में जो साधन इन्हें मिलते थे उनसे वह अपने आमेर राज्य को भी समृद्ध किया करते थे। इसी लिये इनके समय से आमेर राज्य विशेष विख्यात हुआ। मानसिंह के बाद दो राजा ऐसे हुए जिनकी अयोग्यता और विलासिता के कारण कच्छव वंशीय गौरव पर काफी कलङ्क लगा जिसे राजा जयसिंह ने अपने बाहुबल, शौर्य, नीति और कौशल के बलपर धोकर परिष्कृत किया। जयसिंह

राजस्थानी वृद्ध-वयस्कोंका सहज वीर-बाना
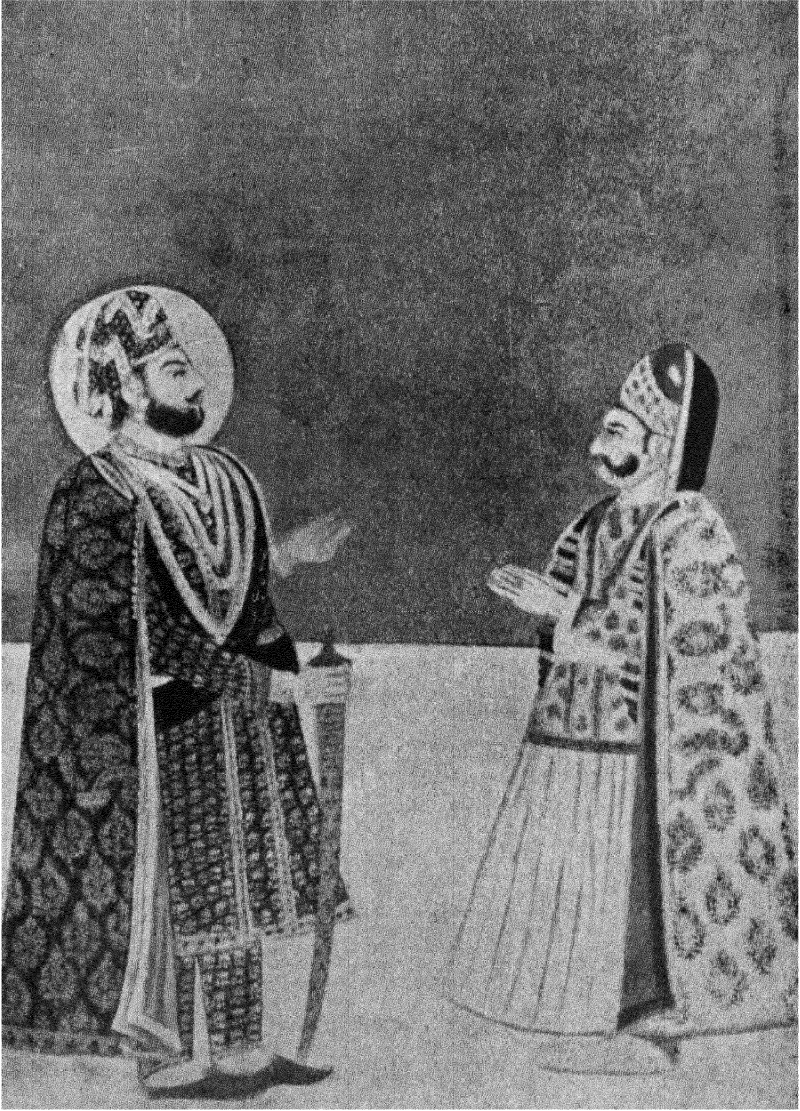
एक राजस्थानी सम्राट अपने मंत्रीसे परामर्श करते हुए।
(प्राचीन राजस्थानी 'दुलाई' के परिधानकी मनोरम छटा)

मिर्जा राजा के नाम से विख्यात हुए। अकबर के साथ रहकर मानसिंह ने जो काम किया, वही काम जयसिंह ने औरंगजेब के साथ रहकर किया। औरंगजेब ने इनसे प्रसन्न होकर इन्हें छः हजारी मनसबदार बनाया। महाराज शिवाजी को औरंगजेब के पास लानेवाले यही आमेरपति जयसिंह थे।

महाराज शिवाजी से जयसिंहने शपथ की थी कि औरंगजेब के दरबार में आपके प्राणों की हानि नहीं होने पायेगी और जब शिवाजी महाराज बंदी हो गये तो उनको औरंगजेब के चंगुल से बाहर करने में जयसिंह ने पूरी सहायता पहुंचा कर अपना वचन पूरा किया। जयसिंह दुर्दमनीय क्षत्रियतेज से परिपूर्ण थे और अन्त में औरंगजेब ने इनके पुत्र कीरतसिंह के द्वारा इन्हें अफीम के साथ बिष दिलाकर मरवा डाला।

इसी वंश में सवाई जयसिंह राजा हुए जिनकी पीढ़ी में वर्तमान राजा मानसिंहजी हैं।

बूंदी, कोटा तथा राजस्थान की छोटी से छोटी रियासत का इतिहास अति विस्तृत और गौरव पूर्ण है और प्रायः सर्व विदित है, अतएव विशेष न लिखकर हम मेवाड़ राज्य पर कुछ प्रकाश डालेंगे :—

सन् ७२८ ई० में गुहू वंशी वाप्पा रावल ने भीलों को संगठित करके चितौड़ पर अपना अधिकार जमाया था। धीरे धीरे चितौड़ समस्त मेवाड़ की राजधानी बन गया। सन् ११५० ई० में विख्यात वीर समर सिंह हुए जिन्होंने पृथ्वीराज की बहन पृथा कुंवरि से विवाह किया था। शहाबुद्दीन गोरी की लड़ाई में पृथ्वीराज के साथ समरसिंह भी मारे गये। समरसिंह के बाद भीमसिंह अथवा रतनसिंह राजा हुए जिनके समय रानी पद्मिनी के प्रश्न को लेकर अलाउद्दीन ने मेवाड़ को श्मशान बना दिया। लगभग १ शताब्दी बाद महाराणा कुंभा ने पुनः मेवाड़ के गौरव को ऊंचा उठाया जिन्होंने गुजरात विजय की और १३४७ ई० में मालवा के सुलतान महमूद खिलजी को परास्त किया। गुजरात और मालवा के सुलतान बहुत दिन तक राना कुंभा पर आक्रमण करते रहे परन्तु बारम्बार महाराना कुंभा द्वारा वे परास्त हुए। इनका बनवाया हुआ चितौड़का "जय स्तंभ" आज भी संसार के यात्रियों के लिये एक दृष्टव्य अमरत्व है।

इस वंश के अनेक महावीर राजाओं में राना संग्राम सिंह या राना सांगा भी थे। बनबीर, पन्ना दाई और उदय सिंह का इतिहास इसी वंश परम्परा का है। उदयसिंह की अयोग्यता से मेवाड़ के गौरव को बड़ी क्षति पहुंची और उसपर अकबर का अधिकार हो गया। अंत में संवत् १६१८ ई० में हिंदूकुल गौरव प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप सिंह मेवाड़ की धन, जन, साधन हीन गद्दी पर बैठे जिनकी कहानी अनंत अनंत लेखनियों को थका चुकी है। महाराणा के उपरांत वैसा कोई योग्य राजा नहीं हुआ परंतु साथ ही यह बात भी रही कि मुसलमानों का उतना चाप भी मेवाड़ पर नहीं पड़ा। जहांगीर ने मेवाड़ को जीत लिया परन्तु उसने मेवाड़ के साथ मित्रता का ही व्यवहार रखा जो मुगल शासन के अंत तक क़ायम रहा। मेवाड़ का राजवंश आज भी अपने उसी गौरव के आदर्श पर क़ायम है। इस घराने की दो एक घटनाओं का परिचय पाठकों को अन्यत्र मिल चुका है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजस्थान की गुरुता संसार भर में अपनी उपमा नहीं रखती।

अपने शूरवीरों में ही क्या, यहां की क्षत्राणियों के रूप, गुण, और साहस को कोन नहीं जानता? राजपूत रमणियों के त्याग और बलिदान की जाज्वल्यमान कीर्ति से आज कौन परिचित नहीं है? महाराणा प्रतापसिंह और उनके भाई शक्ति सिंह के लोम हर्षक संघर्ष के समय ब्राह्मण राजपुरोहित ने अपना बलिदान देकर जैसा आदर्श प्रस्तुत किया है, क्या अन्यत्र ऐसा कोई आदर्श पाया गया है? झाला और मन्ना जैसे आदर्श सेवक और पन्ना जैसी सेवकिनी के आदर्श कहां और कितने मिलते हैं?

परिच्छेद ३

राजस्थान के वर्तमान रजवाड़े ; उनका परिचय

ब्रिटिश शासन व्यवस्था के अन्तर्गत राजस्थानी रजवाड़े ४ श्रेणियों में विभक्त हैं। प्रथम श्रेणी में मेवाड़ है जिसके अन्तर्गत उदयपुर, बंसवाड़ा, डूङ्गरपुर, प्रतापगढ़, खुशालगढ़, ईदर और विजय नगर हैं। द्वितीय श्रेणी जयपुर की है जिसमें अलवर, जयपुर, किशनगढ़, टोंक, शाहपुरा, और लावा की रियासतें हैं। तीसरी श्रेणी पश्चिम राजस्थान की है जिसमें बीकानेर, जोधपुर जैसलमेर, पालनपुर, सिरोही और दंताकी रियासतें शामिल हैं। चौथी श्रेणी पूर्वी राजस्थान की है जिसमें बूंदी, भरतपुर धौलपुर, झालावाड़, करौली और कोटा की रियासतें हैं। इसके अलावा राजस्थान की सभी रियासतों के बीचोंबीच अजमेर मेरवाड़ा के जिले में अंगरेज़ों ने अपनी शासन सत्ता बनाकर रखी है।

आज कल १ लाख ३४ हजार ९५९ वर्ग मील के उस क्षेत्र को जिसके पश्चिम में सिंध प्रांत, उत्तर पश्चिम में पंजाब तथा बहावलपुर की रियासतें हैं; उत्तर तथा उत्तर पूर्व में पंजाब, पूर्व में संयुक्त प्रदेश तथा ग्वालियर तथा जिसकी दक्षिणी सरहद मध्य भारत की टेढ़ी मेढ़ी सीमाबंदी से घिरी हुई है, उस भाग को राजपूताना या राजस्थान कहते हैं। इस क्षेत्र में कुल २३ देशी रियासतें हैं जिनमें २१ रियासतें राजपूतों की तथा धौलपुर और भरतपुर में जाट राजाओं की गद्दी है। पालनपुर और टोंक में मुसलमानों की नवाबी है।

अरवली की पहाड़ियां राजस्थान के मध्य में एक से दूसरे छोरतक चली गई हैं। इन पहाड़ियोंके उत्तर पश्चिमी भाग में पड़ने वाली भूमि में बालू है, जहां किसी प्रकार

को उपज नहीं होती, जलवायु भी अच्छा नहीं है। इस भागमें जो भाग उत्तर पूर्व की ओर है वहां रेगिस्तान का क्रम घटता हुआ है और यह भाग कुछ उपजाऊ भी है परन्तु इसका पश्चिमी भाग बिलकुल ही मरु स्थल है। अरवलो पहाड़ का दक्षिण पूर्वी भाग अधिक उपजाऊ है जिसमें पर्वत श्रेणियां फैली हुई हैं तथा कई नदियां भी बहती हैं।

यातायात

समस्त राजपूताना में ३ हजार २५९ मील लंबी रेलवे लाईनें हैं जिसमें एक हजार मील तक चलने वाली रेलें ब्रिटिश सरकार की हैं। बी-बी एण्ड सी आई-लाइन की सरकारी रेल अहमदाबाद से बांदीकुई तक चलती है जिससे आगरा और दिल्लीकी शाखायें निकलती हैं। राजपूती रियासतों की रेलों में जोधपुर और बीकानेर लाइन मारवाड़ जंक्शन से हैदराबाद (सिंध) तथा बीकानेर तक चलती है। मेवाड़ स्टेट रेलवे चित्तौरगढ़ी से, उदयपुर, मारवाड़ जंक्शन होती हुई माथीतक जाती है। जयपुर स्टेट रेलवे जयपुर से सवाई माधोपुर तथा जयपुर से लोहारू तक जाती है।

निवासी

इस प्रदेश के ५० प्रतिशत से अधिक आदमी किसी न किसी प्रकार की खेती के काम में लगे हुए हैं। लगभग २० प्रतिशत जन संख्या का निर्वाह, जीवन निर्वाह की चीजें तैयार करने तथा बाहर से मंगाकर उनका व्यापार करने से होता है। ५ प्रतिशत आदमी नौकरी चाकरी का काम करते हैं। ढाई प्रतिशत आदमी व्यापार से काम चलाते हैं।

इस भूखण्ड की प्रमुख भाषा राजस्थानी है।

वर्ण और जातियां

ब्राह्मण, जाट, महाजन, चमार, राजपूत, मीण, गूजर, भील, माली और बलाई नामकी प्रमुख जातियां राजपूताने में पाई जाती हैं। समस्त प्रदेश में राजपूतों का ही प्रभाव अधिक है। राजा महाराजाओं से लेकर साधारण राजपूत तक छोटे अथवा बड़े भूखण्ड का स्वामी होता है तथा उसके अन्दर शासक का गुण नैसर्गिक रूप से पाया जाता है। शूर वीरता भी इस जाति का परंपरागत गुण है। प्रत्येक राजपत किसी प्राचीन और प्रसिद्ध वंश-परंपरा से संबद्ध है।

उदयपुर

मेवाड़ की इस रियासत का क्षेत्रफल १३ हज़ार १७० वर्गमील है। सन १९४१ ई० की जनगणनानुसार यहां की जन संख्या १९ लाख, २६ हजार ६९८ है।

इस राज्य की स्थापना सन् ६४६ ई० के लगभग हुई। इसकी राजधानी उदयपुर है जो एक पहाड़ी के ढाल पर बड़े सुन्दर ढंग से बनी हुई है। सबसे ऊँचे भाग पर महाराणा के महल बने हुए हैं। उत्तर और पश्चिम की ओर पिचोला नाम की सुन्दर झील के तट तक मकान बने हुए हैं। इस झील के बीच में दो महल टापू की तरह बने हुए हैं।

आजकल राजपूताने की इस प्रमुख रियासत की गद्दी पर ले० कर्नल हिज़हाइनेस, महाराजाधिराज महाराणा श्री सर भोपाल सिंह जी बहादुर जी० सी० एस० आई० आसीन हैं। आप का जन्म २२ फरवरी सन् १८८४ ई० में हुआ था। आप के पिता महाराणा फतेह सिंह जी, जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई०, जी० सी० वी० ओ० थे।

महाराणा सर भोपाल सिंह को सर्वतोमुखी शिक्षा, शासनकौशल सहित प्राप्त हुई है। युवराज की दशा से ही आप ने अपनी शासन-योजनाओं को कार्यान्वित करना प्रारम्भ कर दिया था। सन् १९३० ई० में आप गद्दी पर बैठे थे। शिक्षा, चिकित्सा तथा म्यूनिसिपल व्यवस्था संबन्धी कई सुधार करके आप ने एक प्रगतिशील शासक के गुणों का परिचय दिया है। आप के शासन काल में शासन संबन्धी सुधार तथा औद्योगिक उन्नति के फलस्वरूप राज्य की आमदनी दूनी हो गई है। मेवाड़ की जिस गौरव-परायणता का परिचय आप के स्वनाम धन्य पिता ने दिया है, उसे ही आप भी आदर्श मानते हैं। शिकार से आप को विशेष रुचि है तथा आप एक कुशल लक्ष्य-भेदी हैं। वर्तमान बीकानेर नरेश की पुत्री के साथ आप का विवाह हुआ है।

आप की स्थायी सलामी में १९ तोपें दागी जाती हैं। अपने राज्य में आप को २१ तोपों की सलामी मिलती है। मेजर महाराज कुमार श्री भगवत सिंह जी युवराज हैं।

भँवर जी वापजी राज महेन्द्र सिंह जी नामक पौत्र रत्न प्राप्त करते हुए वर्तमान उदयपुर नरेश सौभाग्यशाली हैं।

उदयपुर राज्य का राजस्व १ करोड़ २० लाख रु० सालाना है।

फसलें दो होती हैं। मकई, ज्वार, तिल, रूई और गन्ना खरीफ़ में तथा गेहूं, चना, जौ और अफीम रबी की फसल में पैदा होती हैं। सिचाई का काम प्रायः कुओं से होता है जो काफी संख्या में हैं। इस रियासत में बहुत से खनिज पदार्थ पाये जाते हैं परन्तु दुर्भाग्यवश अभी तक यह पदार्थ प्रकाश में नहीं आ सके। शीशा, जस्ता और लोहे की खानें जगह जगह मिल रही हैं। आशा है कि राज्य इन औद्योगिक महत्वपूर्ण पदार्थों को पूर्ण विकसित करेगा। इसके अलावा राजनगर का सफेद संगमरमर और चित्तौड़ का काला संगमरमर प्रसिद्ध है।

बंसवाड़ा स्टेट

यह रियासत राजपूताना के दक्षिण सीमांत पर अवस्थित है जिसका क्षेत्रफल १ हजार ९४६ वर्गमील, तथा जनसंख्या २ लाख ९९ हजार ९१३ है। पहले बंसवाड़ा तथा डूंगरपुर के प्रदेश को बागड़ देश कहा जाता था और हमारी जाति की एक विशेष शाखा का "बागड़ी" उपनाम इसी बागड़ प्रदेश का सूचक है। बागड़ देश का अस्तित्व तेरहवीं शताब्दी से सन् १५२९ ई० तक रहा और इस पर गहलौत या सीसोदिया वंशी क्षत्रियों का राज्य रहा था। १५२९ ई० में बागड़ नरेश महारावल उदय सिंह जी की मृत्यु हुई जिसके उपरांत उनके दो पुत्रों में राज्य का बंटवारा हो गया और तभी से बंसवाड़ा और डूंगरपुर अलग अलग दो रियासतें चली आ रही हैं। इन रजवाड़ों का वंश उदयपुर के सीसोदिया वंश से संबंधित और बड़ा माना जाता है।

आजकल जिस स्थान पर बंसवाड़ा का शहर स्थित है, पहले उस जगह भीलपाल नामक एक राज्य था जिसपर वसना नामक एक शक्तिशाली भील सरदार का राज्य था। महारावल उदय सिंह के पुत्र महारावल जगमल सिंह जी ने सन् १५३० ई० के लगभग इस भील सरदार को परास्त कर के उसे मार डाला। लोगों का कहना है कि बंसवाड़ा का शब्द वसनावाड़ा अर्थात "वसना का देश" का ही अपभ्रंश है। कुछ

लोगों का मत यह भी है कि बांस अधिक पैदा होने के नाते इस देश को बंसवाड़ा कहा जाता है। महारावल जगमल सिंह जी द्वारा प्रस्थापित होने के ३ शताब्दी बाद बंसवाड़ा की गद्दी पर महारावल विजय सिंह जी आसीन हुए। आप इस बात के लिये उत्सुक थे कि मरहठों की सत्ता की आधीनता से छुटकारा मिले, चाहे अंग्रेज सरकार को कर देना पड़े, फलतः आप के पुत्र महारावल उम्मेद सिंह के समय में सन् १८१८ ई० में अंग्रेजों से व्यवस्थित संधि हो गयी।

बंसवाड़ा को समग्र राजपूताना में सब से सुन्दर प्रदेश समझा जाता है। वर्षा समाप्त होने के बाद जो समय आता है उस में बंसवाड़ा की सब से सुन्दर छटा दिखाई पड़ती है। माही, अनास, एरन, चाप, तथा हरन नाम की प्रमुख नदियां इस प्रदेश में बहती हैं।

वर्तमान-नरेश

बंसवाड़ा के वर्तमान शासक, हिज़ हाइनेस रायन राज महाराजाधिराज, महारावलजी साहब श्री चंद्रवीर सिंहजी बहादुर हैं, जिनका जन्म २६ नवंबर सन् १९०९ ई० में हुआ था। अपने पिता हिज़हाइनेस, महारावल सर पिरथीसिंह जी, के० सी० आई० ई० के स्वर्गारोहणके उपरांत ७ अगस्त सन १९४४ ई० को आप गद्दीपर बैठे। आप महारावल जगमलसिंहजी की २२ वीं पीढ़ी के नरेश हैं। आपको मेयो कालेज अजमेर में शिक्षा मिली है। एक प्रधान मंत्री तथा व्यवस्थापिका सभा की सहायता के साथ आप शासन प्रबंध करते हैं। आपकी व्यवस्थापिका परिषद् में सरकारी सदस्यों का बहुमत नहीं है। प्रधान मंत्री ही इस परिषद् का सभापति होता है। सन १९४० ई० से यहां एक हाईकोर्ट भी खुल गया है।

महारावल का प्रथम विवाह सन १९३० ई० में कदना के ठाकुर साहब की पुत्री से तथा दूसरा सन १९३२ ई० में ध्रांगध्रा नरेश की पुत्री के साथ हुआ।

महारावल चंद्रवीर सिंहजी नरेंद्र मंडल के सदस्य हैं। निशाने बाज़ी तथा शारीरिक परिश्रम वाले खेलों पर आपकी रुचि है। महाराजा राजकुमार साहब श्री सूर्यवीर भूपति प्रताप सिंहजी युवराज हैं।

इस राज्य का क्षेत्रफल १ हजार ९४० वर्गमील, जन संख्या २ लाख ९९ हजार तथा राजस्व १० लाख रु० सालाना है।

आपको १५ तोपों की सलामी दी जाती है। राज्य में खनिज पदार्थों की प्रचुरता है। ३ बार रियासत की पैमाइश और बंदोबस्त किया जा चुका है।

राज्यकी राजधानी बंसबाड़ा दोहद से ६५ मील तथा रतलाम से ५३ मीलकी दूरी पर बी० बी० ऐंड सी० आई० आर० लाइनपर अवस्थित है। बंसबाड़ा-दोहद तथा बंसबाड़ा रतलाम के बीच नियमित मोटर सर्विस चालू है।

डूंगरपुर

डूंगरपुर की गद्दीपर सीसौदिया परंपरा के सब से ज्येष्ठ बंशके राजा बैठते आरहे हैं। १२ वीं शताब्दी के अंतिम दिनों में इस राज्य की नींव पड़ी थी। चित्तौड़ के राणा सामन्त सिंहको जब जालोरके कीरतसिंह ने खदेड़ दिया तब सामन्त सिह भागकर बागड़ प्रदेश में आ गये और उन्होंने बड़ौदा के सरदार चौरासीमल को मार डाला और सन ११७९ ई० में डूंगरपुर राज्य की स्थापना की। आजकल इस गद्दीपर राय-रायन, महि महेन्द्र, महाराजाधिराज महारावल श्री सर लक्ष्मण सिंहजी बहादुर के० सी० एस० आई० असीन हैं। आपका जन्म ७ मार्च सन १९०८ ई० में हुआ था। १५ नवंबर सन १९१८ ई० में आपका राज्याभिषेक हुआ। १६ फरवरी १९२८ ई० में आपने शासन प्रबंध का काम शुरू किया

डूंगरपुर राज्यका क्षेत्रफल १ हजार ४६० वर्गमील तथा जन संख्या २ लाख ७४ हजार है। इस रियासतका राजस्व २२ लाख रू० सालाना है।

महारावल सर लक्ष्मण सिंहजी का विवाह भींगा नरेश की राजकुमारी के साथ ८ फरवरी सन १९२० ई० में हुआ। अजमेर के मेयो कालेज से आपने डिप्लोमा परीक्षा पासकी तथा एक वर्ष तक पोस्ट डिप्लोमा कोर्स का भी अध्ययन किया। स्कूली जीवन में महाराजने कई पारितोषिक प्राप्त किये, साथ ही आप को "सोर्ड आफ आनर" का पुरस्कार भी मिला है। कालेज छोड़ने के बाद मई सन १९२७ ई० में आप यूरोप भ्रमण के लिये गये और अक्टूबर १९२७ ई० में वापस आये। मार्च

की राजपुत्री के साथ अपना दूसरा विवाह किया। आपके ३ पुत्र तथा ४ पुत्रियां हैं। महाराज कुमार श्री महिपाल सिंहजी युवराज हैं जिनका जन्म १४ अगस्त सन १९३१ ई० में हुआ। सन् १९३५ ई० में महाराजको के० सी० एस० आई० की पदवी प्राप्त हुई। आपको १५ तोपोंकी सलामी दी जाती है।

प्रतापगढ़

प्रतापगढ़ राज्य की स्थापना १६ वीं शताब्दी में मेवाड़ के राना मोकलके वंशजों द्वारा की गई थी। इस राज्य को कंथल भी कहते हैं। सन१६९८ ई० में महारावत प्रतापसिंह जी ने प्रतापगढ़ नगर की नींव डाली थी। सन १७७५ ई० से १८४४ ई० तक महारावत श्री सावन्त सिह का शासन रहा। इस जमाने में मरहटों ने इस राज्य पर हमला किया परन्तु सावन्तसिंह ने होलकर को प्रतिवर्ष ७२ हजार ७०० सलामशाही सिक्का देने की शर्त पर अपने अनुकूल कर लिया। सलामशाही सिक्का प्रतापगढ़ में ही ढाला जाता था। सन् १८०४ ई० से इस राज्य का सम्बन्ध ब्रिटिश सरकार के साथ स्थापित हुआ। मन्दसोर की सन्धि में होल्कर ने अङ्गरेजों की इस शर्तको स्वीकार किया कि वह राजपूताना की किसी भी रियासत से कर नहीं वसूल कर सकते। तभी से प्रतापगढ़ से ७२ हजार ७०० सलामशाही सिक्कों की वसूली अङ्गरेजों को मिलने लगी। १ सलामशाही सिक्का ब्रिटिश भारत की अठन्नी के बराबर होता है। इस प्रकार ३६ हजार ३५० रु० सालाना की रकम ब्रिटिश सरकार को मिलती रही। सन १९३७-३८ ई० में यह निर्णय किया गया कि प्रतापगढ़ से ली जाने वाली यह रकम बहुत ज्यादा है इसलिये उसे कम करके २७ हजार ५०० ही रखा गया।

वर्तमान नरेश

हिज हाइनेस महारावत सर रामसिंहजी बहादुर के० सी० एस० आई० आजकल प्रतापगढ़ की गद्दी पर विराजमान हैं। आपका जन्म सन् १९०८ ई० में हुआ था। सन् १९२९ ई० में आप गद्दीपर बैठे। आपको १५ तोपों की सलामी दी जाती है।

इस रियासत की राजधानी पहले पहाड़ियों के बीच देवलिया में थी।

वर्तमान प्रतापगढ़ नरेश उन राजाओं में से हैं जिन्हें ब्रिटेन के साथ सन्धि करने का सम्मान प्राप्त है। प्रतापगढ़ राज्य के सबसे उच्च शासन विभाग को "महकमा खास" कहा जाता है। इस राज्य का राजस्व १० लाख १२ हजार रु० सालाना और जन संख्या ६१ हजार ९६७ है।

ईदर

आजसे लगभग २०० वर्ष पूर्व जोधपुर के महाराणा के दो भाइयों ने ईदर खानदान की नींव डाली थी जिनकी दसवीं पीढ़ी में वर्तमान ईदर नरेश हिज़ हाइनेस, महाराजाधिराज श्री हिम्मत सिंह जी साहब बहादुर हैं। आपका जन्म २ सितम्बर सन १८९९ ई० में हुआ था। १४ अप्रेल सन १९३१ ई० को आप गद्दीपर बैठे। थोड़ी ही उमर में आपका विवाह जयपुर राज्य के खण्डेला के राजा की ज्येष्ठ पुत्री श्री जवाहर कुंवरि साहबा के साथ हो गया था। अजमेर के मेयो कालेजमें आपको शिक्षा मिली। डिप्लोमा की परीक्षामें आपको भारतीय राजकुमार कालेजों में सर्व प्रथम स्थान प्राप्त हुआ फलतः आपको वायसराय-पदक प्रदान किया गया। ५ वीं कक्षा से डिप्लोमा तक में आपको प्रत्येक श्रेणी में पारितोषिक प्राप्त होते रहे। इनमें से ५ पारितोषिक तो आपको अङ्गरेजी विषय पर मिले तथा करीब ११ पुरस्कार अन्य विषयों पर मिले। क्रिकेट, फुटबाल और पोलो के आप एक कुशल और शौकीन खिलाड़ी हैं। घोड़ेकी सवारी में भी आप सिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त संगीत, चित्र-कला एवं फोटोग्राफी से भी आपको विशेष प्रेम है।

सन १९२९-३० में आपने समग्र भारतवर्ष का भ्रमण करके क्रियात्मक अनुभव का अर्जन किया। आपके गद्दीपर बैठने के ही समयसे प्रजाकी सामाजिक अवस्था के सुधारके लिये कई एक योजनायें कार्यान्वित होने लगीं। शिक्षा, उद्योग और कृषि के सुधार और उसकी उन्नति की दिशा में राज्य की ओर से पूरी-कार्यवाही की जा रही है। महाराज स्वयं सुधारवादी हैं इस लिये आशा की जाती है कि ईदर राज्य की उन्नति में आपको अवश्य ही सफलता मिलेगी।

आपको १५ तोपों की सलामी दी जाती है। ईदर राज्य का क्षेत्रफल १ हजार ९०५ वर्ग मील तथा राजस्व ५५ लाख रु० सालाना है। महाराज के दो

राजकुमार हैं। युवराज का पद पानेवाले राजकुमार दलजीत सिंह का जन्म सन १९१७ ई० में हुआ था। आपकी शिक्षा दीक्षा भी मेयो कालेज अजमेर में हुई। नवानगर के महाराज जाम साहब के साथ आप सम्राट जार्ज पंचम की सिलवर जुबली के समय सन् १९३५ ई० में विलायत भी गये थे। सन् १९३६ में नवानगर के जाम साहब की बहन श्री व्रजकुंवरि साहबा के साथ आपका विवाह भी हो चुका है। विमान चालन तथा आधुनिक कोटि की समस्त रण-कलाओं में आप पूर्ण प्रवीण हैं।

जयपुर

राजपूताना के अन्दर राजपूतों के गौरव की दृष्टि से यदि उदयपुर का महत्व प्रथम श्रेणी का है तो वैश्य वृत्ति की दृष्टि से जयपुर का महत्व राजपूताने के अन्दर प्रथम श्रेणी में आता है। आकार प्रकार के बिचार से इस राज्य का नम्बर चौथा है। इसका अधिकांश क्षेत्रफल समतल और खुला हुआ है। प्राचीन काल में इसे मत्स्यदेश कहते थे और महाभारतकाल में प्रसिद्ध राजा विराट यहीं राज्य करते थे। जयपुर का राजवंश भगवान रामचन्द्र जी के द्वितीय पुत्र कुशकी परंपरा से सम्बन्धित माना जाता है और इस राजवंश का प्रचलित नाम कछावां वंश है जो अन्य कछावां रियासतों और वंशों में सर्वश्रेष्ठ है। वर्तमान जयपुर राजबंश की प्रथम पीढ़ी का पता ९ वीं शताब्दी ईसवी से लगता है।

सन् १०३७ ई० में उदयपुर राज्य के पूर्व शासक दूल्हाराज ने आमेर में अपनी राजधानी स्थापित की। इसी वंश का परजून नामक एक सरदार दिल्ली सम्राट पृथ्वी-राज का सेनापति था जिसने १२ वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में एकबार खैबर की घाटी में शहाबुद्दीन गोरी को परास्त कर दिया था और ग़ज़नी तक उसका पीछा किया था जिससे प्रसन्न होकर पृथ्वीराज ने अपनी बहिन उसके साथ व्याह दी थी। उसके उपरान्त सम्राट अकबर के समय में राजा मानसिंह ने राजधानी को आमेर से हटा कर जयपुर में कर दी। तब से लेकर आज तक यह नगर राजधानी के रूप में चला आ रहा है।

राज्य का क्षेत्रफ़ल १६ हजार ६८२ वर्गमील, जनसंख्या ३७ लाख ४० हजार

तथा राजस्व १ करोड़ ७७ लाख ५० हजार झाड़शाही (रियासती सिक्का) या १ करोड़ ८८ लाख ६० हजार कलदार सालाना है।

खास जयपुर की जनसंख्या १ लाख ८५ हजार ८१० है। जयपुर नगर राजपूताने का सबसे बड़ा, सुन्दर और संस्कृत नगर है। मसल मशहूर है कि "जो न देखा जयपुरिया, तो कल में आके के करिया"। जयपुर नगर की रचना, उसकी सड़कें तथा गलियां राजस्थान के रेखा विज्ञान का परिचय देती हैं। इस नगर की विशेषता यह है कि सभी मकान और इमारतें एक ही ढङ्ग और एक हो रंग, खूनी रंग से रंगी हुई हैं जिससे वीरता और बलिदान का भाव प्रगट होता है। जयपुर नगर की सुन्दरता और उसके वर्णन की कहानियाँ देश विदेश तक ख्याति प्राप्त किये हुए हैं। आजकल इस नगर में अंगरेज़ीपन का भी समावेश हो गया है और उसका फल यह हुआ है कि इस नगर की दर्शनीयता को हानि पहुंची है। इस नगर की विशेषता यह है कि खास मारवाड़ और मरुभूमि में स्थित होने पर भी यहां पहुंचे हुए मनुष्य को कहीं बालू, रेत या उजाड़पन का आभास भी नहीं मिल सकता। पोखर, तालाब और बाग-बगीचों से भरा हुआ यह नगर अपने ढङ्ग का विचित्र है। बाग-बगीचों का विकास मुस्लिम काल में ही अधिक हुआ। जयपुर में ही सबसे पहले और सबसे अधिक मुसलमानी संस्कृति का प्रभाव पड़ा। इस नगर में बाग-बगीचों की बहुलता इसी बात का प्रमाण है।

जयपुर का ज्योतिष यंत्रालय भारतीय ज्योतिष शास्त्र का सबसे ज्वलन्त प्रतीक है। इस नगर में शिक्षा का प्रबन्ध भी अति उत्तम है। इस नगर का रामनिवास बाग, चिड़ियाघर, म्यूज़ियम, गलताजी, चांगपोलिया हनुमान, एडवर्ड हाल आदि विशेष दर्शनीय हैं। राजस्थानीय नगरों में विजली और नल के पानी की व्यवस्था सबसे पहले इसी नगर में जारी हुई। यहां का प्राचीन, जालीदार हवामहल और आमेर के रास्ते में पड़ने वाला जलक्रीड़ा महल अति विचित्र ढङ्ग से बना हुआ है जिससे राजस्थानीय राजाओं के ललित कला सम्बन्धी प्रेम का अच्छा परिचय मिलता है।

वर्तमान नरेश

आनरेबुल ले० कर्नल हिज़ हाइनेस, हिन्दुस्तान, राजराजेन्द्र श्री महाराजाधिराज सर सवाई मानसिंह बहादुर, जे० सी० आई० ई०, एल० टी० डी० वर्तमान जयपुर नरेश हैं जो संसार प्रसिद्ध जयपुर नरेश स्व० सवाई माधोसिंह के दत्तक पुत्र हैं। आपका जन्म २१ अगस्त सन् १९११ ई० में हुआ था। ७ सितम्बर १९२२ ई० में आपका राज्याभिषेक हुआ। १४ मार्च १९३१ ई० में आपने ब्रिटिश सत्ता की ओर से पूर्ण शासनाधिकार प्राप्त किया।

आपको अजमेर के मेयो कालेज में शिक्षा मिली और रायल मिलिटरी एकेडमी (उलविच) के कोर्स में आपने दक्षता प्राप्त की।

आपकी पहली शादी भी जयपुर की प्राचीन परम्परा के अनुसार जोधपुर की राजकुमारी के साथ ३० जनवरी सन् १९२४ ई० को हुई थी। यह राजकुमारी साहिबा, महाराजाधिराज सर उम्मेदसिंहजी बहादुर (जोधपुर) की बहिन हैं। आपकी दूसरी शादी भी जोधपुर वंश में महाराजाधिराज सर समरसिंह की पुत्री के साथ २४ अप्रैल १९३२ ई० में हुई।

आपने प्रेम-पाश में आबद्ध होकर तीसरा विवाह भी महाराजा कूच बिहार की छोटी बहिन के साथ ९ मई १९४० ई० में किया।

पहली स्त्री से आपके दो सन्तान—एक लड़का तथा एक लड़की—हैं और यही पुत्र युवराज है।

प्राचीन विचार के कुछ आदमियों से यह जनश्रुति भी सुनने को मिलती है कि जयपुर के राजघराने को लखनऊ के नवाब वाजिदअली शाह ने एकबार शाप दिया था कि यहाँके राजाओं के संतान नहीं होगी। इस दन्तकथा में कहा जाता है कि एकबार विपत्तिवश नबाब वाजिदअली शाह भागकर जयपुर पहुँचे तो जयपुर नरेश ने इन्हें अपने यहां शरण देकर निर्भय किया और साथ ही यह आश्वासन भी दिया कि जब कभी आप पर विपत्ति आयेगी तो जयपुर में आपको शरण देकर आपकी रक्षा की जायगी। अन्त में जब १८५७ ई० में नवाब वाजिद अली बागी की हालत

में भागते हुए जयपुर पहुंचे तो वहां उन्हें शरण तो मिली परन्तु बाद में अंगरेज़ों का दबाव पड़ने पर नरेश ने नवाब को अंगरेज़ों के हवाले कर दिया और इसी समय नवाब ने शाप दे दिया।

वर्तमान जयपुर नरेश इस जनश्रुति के अनुसार अपने वंश के राजा भगीरथ सिद्ध होते हैं जिन्होंने अपने वंश को शाप से विमुक्त करा दिया है। आप अन्य राजाओं की भांति ही पोलो के खेल से बड़ी दिलचस्पी रखते हैं। आपको इस दुस्साहसिक खेल में दिग्विजय प्राप्त करने का गौरव मिल चुका है।

वर्तमान जययुर नरेश अपने राज्य के औद्योगिक विकास के लिये विशेष प्रयत्नशील हैं। आपने "अधिक अन्न उपजाओ" के आन्दोलन के सिलसिले में राज्य की बहुत बड़ी ज़मीन देने का एलान किया था। औद्योगिक विकास के लिये कई योजनायें कार्यान्वित की जा रही हैं। जयपुर राज्य की एक विशेषता यह और है कि इसी राज्य ने सबसे पहले उर्दू के स्थान पर हिन्दी को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया है।

जयपुर राज्य शेखावाटी के नाम से प्रसिद्ध है। भारत तथा विदेशों तक फैले हुए मारवाड़ी वैश्य समाज का सदर मुक़ाम यही शेखावाटी है। जयपुर नगर का रत्नों का व्यापार भी उल्लेखनीय है। यहाँ के जौहरी बाज़ार में सभी रत्नों का क्रय विक्रय होता है परन्तु पन्ना अथवा हरित मणि का व्यापार विशेष है।

अलवर

इस राज्य की स्थापना सन् १७७५ ई० में मछेरी के महाराव राजा प्रताप सिंहजी ने की थी और अलवर नगर में अपनी राजधानी बनाई। मछेरी के महाराजा प्रताप सिंह तत्कालीन जयपुर नरेश महाराजा उदय करन सिंहजी के वंशज थे जो महाराज उदय करन सिंह से अलग होकर अलवर चले आये थे। उस समय मुगलसम्राट शाह आलम ने उनको राव राजा और ५ हज़ारी मनसब की उपाधियों से विभूषित किया तथा माहे मुरातब नामक एक मछली के आकार के पदक से सम्मानित किया। इसी पदक के आधार पर इन्होंने मछेरी नाम से अपना राज्य बनाया जिसका नाम बाद में अलवर पड़ा।

प्रतापसिंह के पश्चात महाराव राजा श्री सवाई बख्तियार सिंह जो (१७५१ से लेकर १८१५ तक) हुए जिन्होंने भारत के गवर्नर जनरल लार्ड लेक के पक्ष में होकर मरहठों के विरुद्ध लसवाड़ी के युद्ध में शामिल होकर मरहठों को परास्त किया। इस उपलक्ष में सन् १८०३ ई० में अंग्रेजों के साथ इस राज्य की पारस्परिक आक्रमणात्मक तथा रक्षात्मक सहायता संधि (Treaty Of Offensive And Defensive Alliance) हुई जो इतिहास में बहुत प्रसिद्ध मानी जाती है। इस संधि के उपरान्त अन्य कई संधियां भी अंग्रेजों के साथ हुईं और उनमें (Aitchinson's Treaties) अधिक उल्लेखनीय हैं। इसके बाद महाराव राजा सवाई विनयसिंह जी हुए जिन्होंने १८५७ के गदर में ब्रिटिश सत्ता की जबर्दस्त सहायता कर के बहादुर की पदवी प्राप्त की। इनके पुत्र महाराव राजा श्री सवाई शिवध्न सिंह जी हुए जिन्हें १८७४ ई० में १५ तोपों की सलामी का सम्मान मिला। सन् १८७९ में उनके पुत्र सवाई सर मंगल सिंह को ले० कर्नल और महाराजा तथा जी० सी० आई० ई० की उपाधियां प्राप्त हुईं।

सवाई सर मंगल सिह के उपरांत कर्नल हिज़ हाइनेस भारत धर्म प्रभाकर, राज ऋषि श्री सवाई महाराज सर जयसिंह जी बहादुर जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई ई० हुए। आप बड़े अच्छे वक्ता और स्कालर थे। १९२३ ई० की लंदन इम्पीरियल कान्फरेंस में भारतीय नरेशों का प्रतिनिधित्व आपने किया तथा प्रथम गोलमेज परिषद में भी आपने नरेंद्र मंडल का प्रतिनिधित्व किया। १९२१ ई० में आपकी सलामी १५ के बदले १७ तोपों की कर दी गई।

और राजवाड़ों की अपेक्षा अलवर ने अङ्गरेजी सत्ता के प्रति अधिक राजभक्ति का परिचय दिया है जिसमें निम्नलिखित घटनाओं का प्रकाश करना प्रसंग वश उचित ही है :—

सन् १९०० के अगस्त महीने में चीन की लड़ाई के समय अलवर की फौजों ने ब्रिटेन की ओरसे लड़कर जबर्दस्त राजस्थानी शौर्य का प्रमाण प्रस्तुत किया।

१९१४ के प्रथम जर्मन महासमर में Alwar Imperial Service Infantry (अलवर इम्पीरियल सर्विस इनफेण्ट्री) नामक पैदल सेना और अल्वर लांसर्स (Alwar lancers) नामक रिसाले बड़ीशान के साथ भारत से योरपीय रणभूमि को गये थे।

सन् १९१९ ई० में अफगानिस्तान की लड़ाई में भी अल्वर की फौजें ब्रिटेन की सहायता में बड़े वेग से लड़ीं।

ब्रिटेन को रंगरूट देने में अलवर राज्य अन्य समस्त राज्यों के मुकाबले में प्रथम स्थान रखता है।

द्वितीय जर्मन महासमर के अवसर पर भी अलवर ने "४ इनफेंट्री बटालियन" नामक पैदल सेना तथा "अलवर जे पल्टन" नामक सेना को ब्रिटिशसत्ता के पक्ष में लड़ने के लिये विदेश भेजा। ५९ राजपूताना जी० पी० टी० नामक सैनिक कंपनी के लिये अल्वर से आवश्यक सवारियों सहित सैनिकों का पूरा सेक्शन भेजा गया। कंपनी ५२ का एक पूरा गैरीज़न और भेजा गया। विभिन्न फंडों के रूपमें द्वितीय जर्मन महासमर में अलवर राज्य ने लाखों रुपये की रकम ब्रिटिश सत्ता को समर्पित की।

यद्यपि अलवर राज्य अपनी ब्रिटिश भक्ति में शिर मौर ही बनता गया तथापि दुर्भाग्य का विषय यह है कि कुछ ऐसी परिस्थितियां आईं कि ब्रिटिश सत्ता की ओर से कुछ प्रत्युपहार न मिला, उल्टे एक समकालीन नरेश को प्रताड़ित होना पड़ा।

वर्तमान नरेश

कैप्टेन हिज़हाइनेस श्री सवाई महाराज सर तेज सिंह जी बहादुर के० सी० एस० आई० का जन्म १९ मार्च १९११ ई० में अलवर के श्री चांदपुर नामक स्थान में हुआ। आपकी शादी जोधपुर के अन्तर्गत रावटी के महाराज अखय सिंहजी की पुत्री के साथ हुई जिनसे दो पुत्र और दो पुत्रियां हुईं। युवराज महाराजकुमार प्रतापसिंहजी हैं। आपकी शिक्षा दीक्षा प्रायवेट रूप से हुई और प्रायः प्रत्येक विषय का पूर्ण ज्ञान आप को कराया गया है।

अल्वर राज्य का क्षेत्रफल ३६ हजार १५८ वर्गमील और जन-संख्या ३० लाख ७ हजार ७५८ है।

राज्य की भूमि पहाड़ी है। केवल एक ही नदी है जिसका नाम सावी है।

उपज

जुआर—७३ हजार एकड़ में। जौ—७४ हजार एकड़ में। दाल—१ लाख ६० हजार एकड़ में। गेहूं—४८ हजार ८३६ तथा तेलहन—४९ हजार एकड़ भूमि में होती है। इसके अतिरिक्त शीशम और मसाले, जिसमें खास कर के जीरा तमाम भारतवर्ष और विदेश के लिये यहीं से जाता है। इस राज्य में रुई की रंगाई और बुनाई होती है।

खान और खनिजपदार्थ

१९३६ ई० में अलवर स्टेट ने १ लाख १ हजार ३८१ टन धातु २ लाख ६३ हजार ६५९ रु० मूल्य की प्रस्तुत की। फ्री स्टोन (३५ हजार ३३१ रु० का) की ४५ खानें अब तक मिली हैं जो चिलोरी, डोमली, बंटौली, दिघावड़ा, मांडला और पूठी के इलाकों में पाई जाती है। Flag Stone या चितकबरा पत्थर ५४ हजार ६८ रु० का मिला जिसकी खानें किरवाड़ी, सैदपुर, शाहपुर, औदड़ा, लीली, मामोड़, टोड़ा, दांतला, रामसिंगपुरा, विजयपुर, मुकन्दपुरा, हमीरपुर, ललखाण आदि इलाकों में पाई जाती हैं।

चूने के कंकड़ राज्य भर में पाये जाते हैं। जंगल और खनिज पदार्थों में यह राज्य बड़ा सम्पतिशाली है। जङ्गल का एक प्रसिद्ध पदार्थ खैरसाल (पान में खानेवाले कत्थे की एक किस्म) का एक नया उद्योग हाल ही में इस राज्य में खोला गया है।

यातायात के लिये रेल तथा मोटर दोनों की व्यवस्था है। मोटर के लिये सर्वत्र पक्की सड़कें बनी हुई हैं। अलवर तथा राजगढ़ इस राज्य के प्रमुख रेलवे स्टेशन हैं।

टोंक

राजपूताना तथा मध्यभारत के कुछ अंशों को—जो एक दूसरे से अलग हैं—लेकर ६ परगनों की रियासत का नाम टोंक है। टोंक के नवाबों के वंशज अफगानी सालार हैं।

नवाब मुहम्मद अमीर खान बहादुर होल्कर राज्य के एक सुप्रतिष्ठित मुसाहिब अथवा जनरल थे। आपकी सेवाओंके पुरस्कार स्वरूप यह इलाका आपको इनाम

इक़रार किया गया जिसके फलस्वरूप आज टोंक की रियासत एक सुदृढ़ राज्य के रूप में आ चुकी है।

टोंक का क्षेत्रफल २ हज़ार ५४३ वर्ग मील और जन संख्या ३ लाख ५३ हज़ार ६८७ है। इसकी वार्षिक राजस्व ३३ लाख १६ हज़ार ४८० रु० है।

वर्तमान नवाब

हिज़ हाइनेस सैयदुद्दौला, वज़ीरुलमुल्क नवाब हाफिज़ सर मुहम्मद सूआदत अलीखां बहादुर सोलाते जंग, जी० सी० आ० ई० टोंक के वर्त्तमान नवाब हैं। आपका जन्म सन् १८७९ में हुआ। १३ जून १९३० में आप गद्दी नशीन हुए। आपने प्राइवेट रूप से अरबी और फारसी का अध्ययन किया है। आपको १७ तोपों की सलामी दी जाती है।

किशन-गढ़

यह रियासत मध्य राजस्थान के एक दूसरे से पृथक दो लम्बे भूखण्डों से बनती है जिसका क्षेत्रफल ८५८ वर्गमील और जनसंख्या १ लाख ४ हजार ११५ है। उत्तरी भाग में मरुस्थल है किन्तु दक्षिणी भाग उपजाऊ और समतल है। यहां का राजवंश जोधपुर के महाराज उदयसिंह के द्वितीय पुत्र किशनसिंह से चला आ रहा है जिन्होंने किशनगढ़ को सन् १६११ ई० में बसाया। यहां की वंश परम्परा राठौर कहलाती है।

वर्तमान-नरेश

हिज़ हाईनेस, महाराजाधिराज महाराजा सुमेरुसिंहजी बहादुर हैं। २७ जनवरी सन् १९२९ ई० में आपका जन्म हुआ। पिता की मृत्यु के बाद ३ फरवरी १९३९ ई० में आपका राज्याभिषेक हुआ। इस राज्य की आमदनी १० लाख रु० वार्षिक है तथा खर्च ९ लाख रु० सालाना है।

शाहपुरा

शाहपुरा का राजवंश राजपूतों के सीसौदिया वंश से सम्बन्धित है। इस राज्य

उदयपुर के महाराणा अमरसिंह के पुत्र महाराज सूरजमल के बाद उनके पुत्र महाराज सुजानसिंह को फुलिया का परगना प्रदान किया।

वर्तमान नरेश

राजाधिराज श्री उमेदसिंहजी बहादुर शाहपुरा राज्य के वर्तमान नरेश हैं। इस राज्य को स्थायी रूप से नौ तोपों की सलामी मिलती है। राजा को आन्तरिक शासन प्रबन्ध का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। शाहपुराधीश अपने निजी अधिकार से नरेन्द्र-मंडल के सदस्य हैं।

लावा

राजपूताना के अन्दर किसी भी देशीराज्य से पूर्ण स्वतन्त्र लावा एक सामंतशाही राज्य है, जो ब्रिटिश सरकार के संरक्षण में है। पहले यह राज्य जयपुर का भाग था। इसके पश्चात् इसे टोंक राज्य का एक अंग बनाया गया। सन् १८६७ ई० में टोंक के नवाब ने ठाकुर साहब के चचा और उनके अनुयाइयों को मार डाला। उसी समय से लावा वर्तमान रूप में अपने अलग अस्तित्व के साथ एक राज्य बना। लावा नरेश कछवाहा राजपूतों की नरुका जाति के हैं।

वर्तमान नरेश

ठाकुर वंश प्रदीपसिंह लावा के वर्तमान नरेश हैं। आपका जन्म २४ सितम्बर सन् १९२३ में हुआ था। ३१ दिसम्बर सन् १९२९ ई० से आपने शासन का कार्य सँभाला।

बीकानेर

भारतवर्ष के समस्त देशी रियासतों में क्षेत्रफल के विचार से बीकानेर का छठवाँ स्थान है, तथा राजपूताना की बड़ी से बड़ी रियासतों में इसका स्थान दूसरा है। इसका क्षेत्रफल २३ हजार ३१७ वर्गमील है। जनसंख्या १२ लाख ९२ हजार ९३८ है जिसमें ७० प्रतिशत हिन्दू, १४ प्रतिशत मुसलमान, ६ प्रतिशत सिक्ख और ३ प्रतिशत जैन हैं। बीकानेर नगर आस-पास के इलाके के सहित राजपूताना में तीसरे नम्बर का बड़ा नगर है जिसकी जनसंख्या १ लाख २७ हजार २२६ है।

इस राज्य का उत्तरी भाग समतल और चिकनी तथा उपजाऊ मिट्टीवाला है। शेष भाग मरुस्थल और उजाड़ है। साल भर में वर्षा का औसत १५ इंच है। राज्य के अधिकांश भाग में कुओं का पानी १५० से लेकर ३०० फीट तक की गहराई में पाया जाता है।

बीकानेर का राजवंश राजपूतों की राठौर शाखा का है। मारवाड़ (जोधपुर) के राजा राव जोधाजी के पुत्र राव बीकाजी ने सन् १४६५ ई० में बीकानेर की स्थापना की थी और उन्हीं के नाम पर राजधानी तथा राज्य का नाम बीकानेर चला आ रहा है। इस राज्य के छठें शासक राजा राय सिंह जी हुये और वास्तव में बीकानेर में राजा की उपाधि राय सिंह जी के ही समय से प्राप्त हुई। राजा राय सिंहजी मुगल सम्राट अकबर की सेना के एक लब्ध प्रतिष्ठ जनरल थे और उसी जमाने में सन् १५९३ ई० में बीकानेर का किला बनवाया गया था जो आज तक वर्तमान है। राजा अनूप सिंह ने गोल कुंडा की विजय में मुगल सम्राट औरंगजेब की बहुत बड़ी सहायता की जिस से प्रसन्न होकर औरंगजेब ने इन्हें महाराजा की उपाधि दी। सन् १८५७ ई० के गदर में बीकानेर के तत्कालीन महाराजा सरदार सिंहजी ने अंगरेज़ों को बहुत बड़ी मदद पहुँचाई। गदर शुरू होने के बाद महाराजा सरदार सिंह अँगरेजों की सहायतार्थ अपनी सेना लेकर स्वयं रणभूमि गये जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने पंजाब की सिरसा तहसील से ४१ गावों की तीवी नामक छोटी तहसील बीकानेर रियासत में शामिल कर दी।

हिज़हाईनेस स्वर्गीय महाराजा सर गंगा सिंह जी बहादुर, जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई०, जी० सी० वी० ओ०, जी० बी० ई०, के० सी० बी० ए० डी० सी०, एल-एल० डी० सन् १८८७ से लेकर १९४३ तक बीकानेर की राजगद्दी पर आसीन रहे। बीकानेर के इतिहास में आजतक जितने राजा हुए उनमें तथा आगे होने वालों में भी महाराज गंगा सिंहजी का नाम सब से श्रेष्ठ रहेगा। उनकी सबसे महान कृति है "गंग-नहर"। २६ अक्टूबर सन् १९२७ ई० में भारत के वायसराय लार्ड इरविन द्वारा इस नहर का उद्घाटन हो चुका है। महाराजा गंगासिंह ने सतलज़ नदी से नहर निकालकर उसे पंजाब, बहावलपुर

की रियासत की भूमि से होकर बीकानेर तक लाने में जैसा प्रयास किया है, वह अपने ढंग का अद्वितीय है। सन् १८९९-१९०० ई० में बीकानेर में दुर्भिक्ष पड़ा जिसे देखकर महाराज गंगा सिंह ने अपने देश में नहर निकालने का संकल्प किया। सन् १९२० ई० में महाराज अपने अथक प्रयत्न में सफल हुए और पंजाब, बहावलपुर तथा बीकानेर के बीच नहर के प्रश्न पर एक समझौता हो गया।

इस नहर के द्वारा बीकानेर राज्य के उत्तर पश्चिम के भाग में ७ लाख ३७ हजार ७६५ एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

सिंचाई की इस व्यवस्था का काम अति दुस्साध्य था। मुख्य नहर का ७९.७ मील तथा नहर की शाखाओं का १० मील का मार्ग कंकरीट से बनाया गया जिसमें ८३ लाख रु० खर्च हुए। इसके अतिरिक्त सिंचाई वाले क्षेत्र को विस्तृत करने के लिये १५७ मील रेलवे लाइन भी बनवानी पड़ी जिसमें गहरी रक़म अतिरिक्त रूप से खर्च हुई। कंकरीट की सतह पर बनी हुई यह नहर दुनियां की सब से बड़ी नहर है। इस नहरके बनवाने में कुल ३ करोड़ ९९ लाख रु० खर्च हुए जिसकी सबसे अधिक रक़म बीकानेर राज्य की ही ओर से दी गई।

राज्य की विशेषतायें

बीकानेर एक ऐसी रियासत है जहां चोरी के अपराध में दंड की व्यवस्था बहुत कड़ी है इस लिये इस राज्य में चोरी नहीं होती। लोगों का कहना है कि महाराज गंगा सिंह को दुर्गा देवी की सिद्धि प्राप्त थी। अकाल के समय देवी ने ही महाराज को नहर निकलवाने की प्रेरणा दी।

एक जन श्रुति यह भी है कि एक बार जंगल में शिकार के लिये शेर की तलाश करते हुए महाराज गंगा सिंह शेर की मांद में हो जा घुसे और पीछे से शेर ने आप पर आक्रमण कर दिया परन्तु स्वयं देवी ने तलवार से शेर को मारकर महाराज की रक्षा की।

महाराज गंगा सिंह अपने हाथ से तलवार के द्वारा ही शेर का शिकार करते थे। आप इतने बड़े व्यवस्थापक थे कि आपने एक पुत्र को वेश्या के यहां ठहरा हुआ देख कर उसे मार ही डाला था।

बीकानेर का ही नाम पूंगल है। "पूंगलगढ़ की पदमणी" की कथा इसी देश की है। इस देश की महिलायें परम रूपवती मानी जाती हैं। यहां की एक रीति यह भी है कि कुलवधू एक चूड़ा अपने पति के नाम का तथा दूसरा राजा के नाम का पहनती है।

रेलवे

बीकानेर स्टेट रेलवे लाइन का विस्तार ८८४ मील के लगभग है। बीकानेर स्टेट रेलवे में राज्य की ४ करोड़ २५ लाख रू० की पूंजी लगी हुई है जिसमें २० लाख की पूंजी राज्य के निजी रेलवे वर्कशापों में लगी हुई है।

बीकानेर राजपूताने की ऐसी रियासत है जहां की भूमि अधिकांश मरूस्थल है। मारवाड़ी धनिक वर्ग इसी रियासत में अधिक हैं। राजस्थान के अन्य राज्यों में मारवाड़ियों ने अपने रङ्ग ढङ्ग और रीति रिवाजों को चाहे अंशतः बदल दिया हो, परन्तु बीकानेरवालों ने अपनी वेश भूषा, अपने रीति रस्मों और अपने रङ्ग ढङ्ग को किंचित् मात्र भी नहीं छोड़ा है। यहां के निवासियों में अधिक संख्या जैनों की महेश्वरी तथा ओसवालों की है। यहां की बोली में "मैं" शब्द के लिये "हूं" प्रयुक्त होता है जो ब्रजभाषा के "हौं" का ही रूप है। क्रिया रूप के "हूं" के लिये "इस" का प्रयोग होता है फलतः बीकानेरी भाषा में "मैं खाता हूं" का रूप होगा "हूं खाइस"।

वर्तमान-नरेश

ले० कर्नल, हिज़ हाइनेस, महाराजाधिराज, राजराजेश्वर नरेन्द्र शिरोमणि महाराजा श्री शार्दूल सिंहजी बहादुर वर्तमान बीकानेर नरेश हैं जो राव बीका की २२वीं पीढ़ी में हैं। आपका जन्म ७ सितम्बर सन् १९०२ ई० में हुआ था। २ फरवरी १९४३ ई० में आपका राज्याभिषेक हुआ। आपने सन् १९२० ई० से १९२५ तक अपने पिता के साथ "चीफ मिनिस्टर" का काम किया। १९२१-२२ में जब प्रिंस आफ़ वेल्स भारत में पधारे तब आप उनके साथ में रहे। ब्रिटिश सम्राट जार्ज पञ्चम जब १९११ में भारत आये और दिल्ली दरबार हुआ तो महाराज शार्दूल सिंह को सम्राट जार्ज की सामीप्य सेवाका सम्मान प्राप्त हुआ था। सन्

१९२४ ई० में राष्ट्र संघ की बैठक में आप अपने पिता के सहकारी बन कर शामिल हुए थे।

द्वितीय जर्मन महासमर के अवसर पर आपने अपनी कुशल और सैनिक योग्यता का परिचय दिया। बर्मा के रणक्षेत्र में जाकर आपने सैन्य संचालन भी किया। इस राज्य का राजस्व २ करोड़ ६७ लाख ७९ हजार १३४ रु० सालाना है।

आपका विवाह हिज़ हाइनेस सर गुलाब सिंह (रीवां नरेश) की बहिन के साथ हुआ जिनसे २ लड़के और एक लड़की का जन्म हुआ। बड़े पुत्र मेजर महाराजकुमार श्री करणी सिंह जी बहादुर युवराज हैं। कैप्टेन महाराजकुमार श्री अमर सिंह जी बहादुर उनके छोटे भाई हैं। राजकुमारी की शादी उदयपुर राज्य के युवराज महाराजकुमार श्री भगवती सिंह जी बहादुर के साथ हुई है।

उपज और उद्योग

बाजरा, मोठ, जवार, गेहूं, रुई और गन्ना बीकानेर की मुख्य उपज है। राज्य में रेल की व्यवस्था हो जाने के कारण आयात और निर्यात का व्यापार बढ़ रहा है। यहां से बाहर जानेवाला मुख्य पदार्थ अन्न है जो अंग्रेजी बाजारों में आस्ट्रेलिया की अन्न के मुकाबिले अधिक दामों में बिकती है। राजधानी में अन्नकी गाँठ बाँधने का एक प्रेस, अन्न साफ करने की एक फैक्टरी, कांच और मिट्टी के वर्तनों के कारखाने, खपड़ैल का एक कारखाना बरफ का एक कारखाना, चमड़ा पकाने का एक कारखाना और एक साबुन का कारखाना है। गंगनहर अञ्चल के सदर मुकाम गंगानगर में भी पर्याप्त औद्योगिक विकास हुआ है जहां पर कई एक बिनौला साफ करनेवाली फैक्टरियां, फ्लोर मिलें, दलाई की मिलें और तेल की मिलें काम कर रही हैं। इस राज्य में वर्तन भांडे बनाये जाने योग्य मिट्टी तथा चूने के पत्थर के नये उद्योग खोलने पर विचार किया जा रहा है। डलमेरा का लाल रङ्ग का बलुआ पत्थर बीकानेर में विस्तृत रूप से प्रयोग में लाया जाता है। यह इतने परिमाण में उपलब्ध है कि बाहर की माँग सुविधा के साथ पूरी की जा सकती है। ऐसी आशा की जाती है कि

बहुत जल्द इस रियासत में सीमेंट का बहुत बड़ा उद्योग खुल जायगा क्योंकि सीमेंट प्रस्तुत करनेवाले पदार्थ यहाँ प्रचुरता के साथ मिलते हैं।

श्री गङ्गानगर, करनपुर, रायसिंहनगर, राजसिंहपुर विजयनगर, हिन्दू मल्कोट, साँगड़िया, सदुल शहर, लाखूवाली, नोखा और गोगामेरी यहाँ की प्रसिद्ध गल्ले की मंडियां हैं जो रेलों के द्वारा परस्पर सम्बन्धित हैं।

गंग मेरो और गंगा नगर में मेला लगता है जिसमें ऊँट तथा और जानवरों की खरीद विक्री होती है।

जोधपुर

जोधपुर राज्य का ही दूसरा नाम मारवाड़ है जिसके प्रश्रय से मारवाड़ी शब्द बनता है। यह राज्य राजस्थानी रियासतों में सबसे बड़ा है जिसका क्षेत्रफल ३६ हजार ७१ वर्गमील है। २५ लाख ५५ हजार ९०४ जन संख्या है जिसमें ८६ प्रतिशत हिंदू, ८॥ प्रतिशत मुसलमान, और शेष में जैन और बुद्ध हैं। अधिकांश भूमि कठिन और पथरीली है। इस राज्य का पूर्वी भाग क्रमशः उपजाऊ और समतल होता गया है। वर्षा बहुत कम होती है। सिंचाई के लिये उन नदियों से काम लिया जाता है जो साल में कुछ ही दिन तक बहा करती हैं। जोधपुर का राजवश अयोध्या के रघुवंशी राजा रामचन्द्र की परम्परा से संवंधित माना जाता है। वर्त्तमान वंश के सबसे प्राचीन राजा अभिमन्यु का पता लगता है जो पांचवीं सताव्दी ई० में हुए थे। यह वंश सन १२१२ ई० में कन्नौज से उठकर मारवाड़ में आया था। सन् १४५९ ई० में रावराजा जोधाजी ने वर्तमान जोधपुर नगर की नींव डाली थी। जोधाजी ने हुसेनशाह नामक जौनपुर के नवाब को जिन्होंने गया जानेवाले हिन्दू तीर्थ यात्रियों पर कर लगा दिया था—कर उठा लेने के लिये वाध्य किया था। प्रसिद्ध राव मालदेव जी इन्ही के वंशज थे जिनकी सैन्यशक्ति उस जमाने में सबसे प्रचण्ड मानी जाती थी। सन् १५८२ में जब सम्राट हुमायूं शेरशाह द्वारा परास्त होकर भागे थे तब इन्हीं राव राजा मालदेव ने उन्हें अपनी शरण में रखा था। इसी वंश के सूर सिंह को जो राजा उदय

सिंह के पुत्र थे—सम्राट अकबर ने सवाई राजा, पांच हजारी मनसब, तथा ३ हजार ३०० सवारों की भेंट दी थी।

वर्तमान नरेश

जोधपुर के राजसिंहासन पर आज कल एयर कमाण्डर हिज़ हाईनेस, राज राजेश्वर, सरामद राजाए हिंद, महाराजाधिराज श्री सर उमेद सिंह जी साहब बहादुर, जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई०, के० सी० वी० ओ०, ए० डी० सी०, एल-एल० डी० आसीन हैं।

आपका जन्म १९०३ ई० में तथा राज्याभिषेक सन् १९१८ ई० में हुआ। आपका विवाह सन् १९२१ ई० में राय बहादुर राजा जय सिंह जी भाटी उमेद नगर की राजकन्या के साथ हुआ था जिनसे एक पुत्री तथा ५ पुत्र हुए। महाराजा कुमार श्री हनुवंत सिंह जी साहब जिनका जन्म १९२३ ई० में हुआ—युवराज हैं। आपको १७ तथा स्थानीय रूपसे १९ तोपों की सलामी दी जाती है। इस राज्य का राजस्व (१९४३-४४ में) २ करोड़ २४ लाख ३४ हजार ९८ और खर्च १ करोड़ ५६ लाख ७६ हजार, ५३४ रहा।

महायुद्ध में सहायता

जोधपुर नरेश ने द्वितीय महासमर के समय ब्रिटिश सरकार को उल्लेखनीय सहायता पहुंचाई। "जोधपुर लांसर्स" नामक रिसाला, "सरदार इनफैंट्री" नामक पैदल सेना ब्रिटिश सत्ता को अर्पण की गई। इसके अतिरिक्त स्वयं जोधपुर नरेश ने भी बहुत व्यापक रूप से युद्ध के काम में भागलिया। "द्वीतोय सरदार इनफैण्ट्री" स्वदेश रक्षा के मोर्चे पर भेजी गई। जोधपुर नरेश ने "तृतीय जोधपुर इनफैण्ट्री" का भी निर्माण किया। इसके अलावा महाराज साहब ने अपनी ओर से १ करोड़ ४० लाख २५ हजार की रकम तथा राज्य की प्रजा की ओर से १६ लाख ७५ हज़ार रु० की रक़म महायुद्ध की सहायतार्थ चंदे में प्रदान की। इसके अतिरिक्त ४ मूल्यवान हवाई जहाज भी जोधपुर राज्य की ओर से प्रदान किये गये।

विशेषता

महाराज जोधपुर प्रजातन्त्र बाद के प्रवल समर्थक हैं। अपनी राज्य व्यवस्था के

अन्तर्गत आपका सबसे महान काम यह हुआ है कि आपने ग्राम पंचायतें बनाई हैं तथा उन ग्राम पंचायतों को बृहत्तर अधिकार प्रदान किये गये हैं।

जोधपुर राज्य बहुमूल्य खनिज पदार्थों से भरा पड़ा है। मकराना का सुप्रसिद्ध संगमरमर जोधपुर की ही देन है। इसी रियासत में नागोर का वह प्रदेश है जहां के बैलों की श्रेष्ठ नस्ल सारे देश में विख्यात है। सांभर नमक जो समस्त देश विदेश में प्रचलित है, जोधपुर में ही होता है।

सभ्यता के विचार से जोधपुरी फैशन अपनी निराली शान रखता है। जोधपुरी "ब्रिचेज" या चूड़ीदार सवारशाही पाजामा इतना सुन्दर माना गया है कि अंग्रेजोंने भी उसे अपनाया है। जोधपुरी पगड़ी का फैशन भी बड़ा प्रभावशाली और प्रसिद्ध है। इस रियासत की अपनी रेलवे है जिसे जोधपुर स्टेट रेलवे कहते हैं। यह रेलवे हैदराबाद सिंध से लूणी जंकशन तक और मारवाड़ जंकशन से कुचामन जंकशन तक विस्तृत है। बी० बी० एंड सी० आई० की लाइन दक्षिण-पूर्वी छोर पर स्टेट रेलवे से मिलती है।

जोधपुर के निवासी समस्त राजस्थानी रियासतों के निवासियों में अधिक पढ़े लिखे और सुशील माने जाते हैं। यहां की भाषा बहुत श्रेष्ठ और परिष्कृत मानी जाती है। यहां "जी कारे" की बोली का प्रचलन है। "आप" शब्द को "आप जी" कहा जाता है, भाषा में समादर भाव इतना विशाल है कि कुत्ते को दुतकारते समय भी "दुर, कुत्ता जी" कहा जाता है।

जैसलमेर

यह राज्य भी राजपूताने के बड़े राज्यों में से एक है जिसका क्षेत्रफल १६ हजार ६२ वर्गमील है। इस राज्य का शासक वंश भगवान कृष्ण की परम्परा का यादव वंश है। सन् ११५६ ई० में जैसलमेर नगर की स्थापना हुई थी। सन् १८१८ ई० में ब्रिटिश सरकार के साथ इस राज्य की अनवरत मैत्री संधि हुई। सन् १८४४ ई० में जब अंग्रेजोंने सिंध पर विजय प्राप्त कर ली तो शाहगढ़, गरसिया, और घोटारू के किले जो प्राचीन काल में जैसलमेर के ही थे—पुनः जैसलमेर में शामिल

कर दिये गये। यहां की जन-संख्या ९३ हजार २४६ तथा राजस्व ४ लाख के लगभग है।

वर्तमान नरेश

हिज़ हाईनेश, महाराजाधिराज, राजराजेश्वर, परम भट्टकि, श्री महारावल जी सर जवाहरसिंह जी देव बहादुर यदुकुल चन्द्रभाल, रुकनुद्दौला, मुजफ्फर जंग, विजयमंद के० सी० एस० आई० जैसलमेर के वर्तमान नरेश हैं।

बूंदी

दक्षिण-पूर्वी राजपूताने में यह राज्य एक पहाड़ी भूमि पर बसा हुआ है। प्रसिद्ध चौहान वंश की हारा शाखा से बूंदी का राजवंश चला है। तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस राज्य की स्थापना हुई जिसके बाद बराबर मेवाड़ और मालवा से संघर्ष चलता रहा। बाद में मरहटों तथा पिंडारियों द्वारा बहुत पीड़ित होने पर सन् १८१८ ई० में बूंदी राज्य अंग्रेजों के संरक्षण में आया। यहां का राजवंश हारावत भी कहा जाता है।

वर्तमान नरेश

कैप्टेन, हिज़ हाईनेस, राजेन्द्र शिरोमणि देवसार, बुलन्दराय, महाराजाधिराज, महारावराजा बहादुर सिंह जी साहब बहादुर एम० सी०, बूंदी के वर्तमान नरेश हैं। आप का जन्म १७ मार्च सन् १९२१ ई० में हुआ था। आपका राज्याभिषेक २३ अप्रेल सन् १९४५ ई० में हुआ। आपकी शिक्षा मेयो कालेज अजमेर में तथा १९४० में पुलिस ट्रेनिंग मुरादाबाद में तथा १९४० में इंडियन सिविल सर्विस की शिक्षा देहरादून में हुई। महाराजा साहब द्वितीय महासमर में स्वयं रणक्षेत्र में गये और बर्मा मोर्चे पर २ मार्च सन् १९४५ ई० में घायल भी हुए। एक किले की लड़ाई में आपने बड़ी वीरता दिखाई जिसके पुरस्कार स्वरूप आपको "मिलिटरी क्रास १९४५" का पदक मिला।

आपका विवाह रतलाम के महाराजा की ज्येष्ठ राजकुमारी के साथ अप्रेल सन् १९३८ ई० में हुआ। १३ सितंबर १९३९ में आपको पुत्र रत्न की प्राप्ति भी हुई। महाराज कुमार रणजीतसिंह जी युवराज हैं। आपको १७ तोपों की

सलामी मिलती है। आप ब्रिटिश सरकार को प्रति वर्ष ७० हजार ४०० रु० खजाना देने के लिये बाध्य हैं।

इस राज्य का राजस्व ३३ लाख रु० सालाना है। यह राज्य प्रसिद्ध, ऐतिहासिक, चित्र-विचित्र, पहाड़ी प्रदेश है। इसका क्षेत्रफल २ हजार २०० वर्गमील तथा जनसंख्या २ लाख ४९ हजार ३७४ है। यहां की राजभाषा हिन्दी है।

भरतपुर

भरतपुर के राज्य की अधिकांश भूमि बहुत ही उपजाऊ और समतल है जो क्षेत्रफल में लगभग दो हजार वर्गमील और जो बानगंगा तथा अन्य बरसाती नदियों द्वारा सींची जाती है। यहां का राजवंश जाटों की सिनसिनवार शाखा से निकला है। ग्यारहवीं शताब्दी से इस राजवंश के राजाओं का पता मिलता है। इस राजवंश का प्राचीन गाँव सिनसिनी था जिसके आधार पर इनकी जाति का नाम सिनसिनवार पड़ा। ब्रिटिश सरकार के साथ सन् १८०२ ई० में राजपूताने की रियासतों में भरतपुर की सन्धि सबसे पहले हुई। लार्ड लेक की आगरा विजय और लासवाड़ी की लड़ाई में अपने पांच हजार घुड़सवारों के साथ भरतपुर नरेश ने अंग्रेजों को बड़ी सहायता की। इस लड़ाई में मरहठों की शक्ति बिल्कुल छिन्न-भिन्न हो गई और भरतपुर को पुरस्कार में पाँच जिले मिले। यद्यपि भरतपुर ने जसवन्तराव होल्कर तथा अंग्रेजों के बीच होनेवाली लड़ाई में होल्कर का पक्ष लिया जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों से बड़ा विकट युद्ध हुआ परन्तु सन् १८०५ ई० में फिर अंग्रेजों से सन्धि हो गई जो आजतक चली आती है।

सन् १८२५ ई० में दुर्जनसाल ने कपट पूर्वक भरतपुर की गद्दी पर अधिकार जमा लिया। ब्रिटिश सरकार ने भरतपुर के वास्तविक अधिकारी महाराजा बलवन्त सिंह साहब का पक्ष लेकर लड़ाई छेड़ दी। लार्ड कम्बर मियर ने भरतपुर पर घेरा डाल दिया और चूँकि भरतपुर की प्रजा ने भी न्याय के अनुसार महाराजा बलवंत सिंह का ही पक्ष लिया इसलिये दुर्जनसाल बहुत जल्दी परास्त कर दिया गया तथा बलवंतसिंह को राजगद्दी मिल गई। सन् १८५७ के गदर में इस राज्य ने भी अंग्रेजों को बहुत बड़ी मदद दी। प्रथम जर्मन महासमर के समय भरतपुर राज्य की

ओर से चुनी हुई फौजों तथा साधनों द्वारा ब्रिटेन को सहायता पहुंचाई गई थी। इस राज्य का क्षेत्रफल १ हजार ९७२ वर्गमील, जनसंख्या ५ लाख १५ हजार ६२५ है। वार्षिक राजस्व का औसत ४२ लाख १० हजार ५०० रु० है।

वर्तमान नरेश

हिज़ हाईनेस, महाराजा, कैप्टेन श्री ब्रिजेन्द्र सवाई, श्री ब्रिजेन्द्रसिंह बहादुर, बहादुरजंग, भरतपुर के वर्तमान नरेश हैं। आपका जन्म १ दिसम्बर सन् १९१२ ई० में हुआ था। सन् १९२८ ई० में आप पिता के स्थान पर राजगद्दी पर बैठे। २२ अक्तूबर सन् १९३९ में आपको शासन के अधिकार प्राप्त हुये। १८ जून सन् १९४१ ई० में महाराजा मैसूर की सबसे छोटी बहिन के साथ आपका विवाह हुआ।

द्वितीय जर्मन महायुद्ध के अवसर पर आपने ब्रिटिश सरकार को बहुमूल्य सहायता प्रदान की है। दिसम्बर सन् १९४४ तक इस राज्य की ओर से महायुद्ध की सहायतार्थ ३ लाख ६२ हजार ५२५ रु० का चन्दा दिया गया। महायुद्ध छिड़ने के समय से लेकर उसके अन्त तक राज्य की ओर से प्रतिमास १ हजार रु० का चंदा वाइसराय के वारफण्ड को दिया जाता रहा। दूसरे महायुद्ध में ८ हजार से अधिक रंगरूट भारतीय सेनायें भेजे गये। इसके अलावा बहुत से कारीगर भी दिये गये। आसाम लेबरकोर के लिये ६५० मजदूर भेजे गये। लड़ाई के इसी जमाने में इस रियासत की ओर से २८ हजार टन अनाज अवशिष्ट भारत के लिये दिया गया। कई एक पल्टनें तैय्यार करके विदेशों में लड़ने के लिये भेजी गईं। स्वयं महाराज का एक भाई द्वितीय "रायल लांसर्स" में जाकर कैप्टेन बना तथा दूसरा भाई भारतीय गगन सेनामें फ्लाइट कैप्टेन बना।

इस राज्य को १९ तोपों की सलामी दी जाती है।

वर्तमान भरतपुर नरेश को इङ्गलैंड में शिक्षा मिली। राज्य का शासन-प्रबन्ध एक कौंसिल की सहायता से होता है जिसके अध्यक्ष स्वयं भरतपुर नरेश हैं।

१ अगस्त सन् १९४२ ई० में यहां एक हाईकोर्ट आफ जुडीकेचर बनी जिसमें दो जज हैं।

उद्योग और उत्पादन

इस राज्य में बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे की शाखा पूर्व से पश्चिम को गई है। यह रियासत सफेद और लाल पत्थर की खानों के लिये प्रसिद्ध है। यहां से लाल पत्थर की पट्टियां मकानों की छत आदि बनाने के काम में आती हैं। इस पत्थर को सहज ही में काटा छांटा जा सकता है। इसका रंग स्वभाविक और सुन्दर होता है। आगरा और दिल्ली के किलों के बनवाने में अधिकांश पत्थर भरतपुर ही से लिया गया था। आजकल की नई दिल्ली के निर्माण में भी अधिकांश पत्थर भरतपुर से ही लिया गया है। यहां का सफेद पत्थर वास्तव में कुछ बादामी रंग लिये हुये होता है और वह लाल पत्थर की अपेक्षा अधिक कड़ा होता है। इस पत्थर का उपयोग अधिकांश रूप में सजावट और नक्काशी के कामों में होता है। आगरा और दिल्ली के किलों में तथा नई दिल्ली के निर्माण में इस पत्थर का भी प्रयोग किया गया है। इससे भी छत बनाने की पट्टियाँ तैय्यार हो सकती हैं। इसके अलावा आटा पीसने की चक्कियाँ इसी राज्य से बनकर देशके विभिन्न भागों में भेजी जाती हैं।

भरतपुर में दरी बनाने का काम तथा सूती और रेशमी कपड़ों की बुनाई का काम भी बहुत होता है। बल्लभगढ़ और भुसावर का उत्पादन (सूती और रेशमी कपड़ा) उच्च कोटि का होता है।

यह राज्य पशुओं की मेवात नस्ल के लिये प्रसिद्ध है। पशुओं के क्रय विक्रय के लिये साल भर में आठ जगहों में मेले लगते हैं जिनमें भरतपुर का मेला अखिल भारतीय महत्व रखता है। इस मेले से संयुक्त प्रदेश के सुदुरवर्ती स्थानों में जानवर खरीदकर ले जाये जाते हैं। कभी २ इससे भी दूरके आदमी जानवर खरीदने आते हैं। भरतपुर रिआसत से एक बड़े परिमाण में घी भी बाहर भेजा जाता है।

यहां की मुख्य उपज बाजरा है जो एक लाख ४९ हजार ९३ एकड़ भूमि में पैदा होता है। इसके अलावा चना १ लाख ३४ हजार ७११ एकड़ में, जवार ७८ हजार ३६ एकड़ में, गेहूँ ५६ हजार १२४ एकड़ में, जौ ४१ हजार ९४ एकड़ में, तिल २२ हजार ३० एकड़ में, अन्य तेलहन और सरसों ३० हजार ८८६ एकड़

में, सफेद जीरा १८ हजार ५९१ एकड़ में, तम्बाकू २ हजार २४० एकड़ में पैदा होती है। इसके अतिरिक्त इस राज्य में जानवरों के खाने के घास प्रचुरता से होती है।

इस राज्य से मुख्यत: तेलहन, जीरा, चना, मूंग, तथा अन्य दालें बाहर भेजी जाती हैं।

झालावाड़

राजपूताना के दक्षिण पूर्व में दो भूखन्डों में यह रियासत अवस्थित है जिसका क्षेत्रफल ८१ वर्ग मील है। जनसंख्या १ लाख २२ हजार २९९ है। यहाँ का राजवंश राजपूतों की झाला शाखा से निस्सृत है। महाराणा प्रताप सिंह की, इसी वंश के झाला नामक सरदार ने अपने प्राणों की भेंट देकर रक्षा की थी। इतिहास कार 'टाड' ने सरदार झाला को महाराणा प्रताप सिंह से भी अधिक सम्मानित और गौरवपूर्ण पदपर प्रतिष्ठित किया है।

वर्तमान नरेश

हिज़ हाईनेस, महाराजा हरिश्चन्द्र सिंह जी वर्तमान नरेश हैं। आपका जन्म २७ सितम्बर १९२१ ई० में हुआ। आपका राज्याभिषेक २ सितम्बर सन् १९४३ ई० में हुआ। आपका विवाह ९ मई १९४० ई० को जुवल (शिमला पहाड़ी) के महाराज की पुत्री राजकुमारी इलादेवी के साथ हुआ। १२ जून १९४४ को युव-राज कुमार इन्द्रजीत सिंह का जन्म हुआ। वर्तमान झालावाड़ नरेश की शिक्षा पहले राजकुमार कालेज राजकोट में, फिर इंगलैंड के एल्डेनहम स्कूल में हुई। इसके पश्चात आपने देहरादून में आई० सी० एस० का कोर्स पूर्ण किया। मुरादाबाद में पुलिस ट्रेनिंग का कोर्स भी आपने पूरा किया।

यद्यपि झालावाड़ एक छोटा सा राज्य है फिर भी शिक्षित प्रजा के विचार से समस्त राजस्थान में इसका स्थान प्रथम है। हाल ही में इस नवयुवक नरेश ने प्रजा के अभ्युत्थान के लिये बड़ी से बड़ी सुविधायें दी हैं और बहुत अधिक परि-श्रम उठाया है। आपने सन् १९४६ ई० में "अधिक अन्न उपजाओ" आन्दोलन के सिलसिले में ५ सालतक बिना लगान के भूमि देने का एलान किया है।

झालावाड़ नरेश विद्वानों का आदर करते हैं। आप अपने राज्य में नये नयें उद्योग खोलने के लिये उत्सुक रहते हैं। पत्रव्यवहार के सिलसिले में इस पुस्तक के लेखक को भी एकबार आप उद्योग खोलने के लिये आमन्त्रित कर चुके हैं। इस राज्य में सिमेंट का बहुत उपयुक्त पत्थर पाया जाता है और आशा की जाती है कि शीघ्र ही यहाँ सिमेंट का बहुत बड़ा उद्योग खुल जायगा। शक्कर और रूई के उद्योग के लिये भी यह राज्य बहुत उपयुक्त है। इस राज्य की राजधानी "ब्रज-नगर" है। राज्य का राजस्व १० लाख रु० सालाना है। यहाँ के नरेश को १३ तोपों की सलामी दी जाती है।

धौलपुर

धौलपुर का राजवंश बमरौलिया जाट परम्परा से निस्सृत है। सन् १५०५ ई० में इसी वंश के सुरजन सिंह ने राणा की उपाधि प्राप्त की। इस वंश को मर-हठों से टक्कर लेनी पड़ी। इसलिये १७७९ ई० में इस राज्य ने वारेन हेस्टिंग्ज़से संधि कर ली। १३ अक्तूवर १७८१ ई० में जो सन्धि ब्रिटिश सरकार की ग्वालियर के सिंधिया नरेश के साथ हुई, उसमें भी इस बात का उल्लेख है कि सिंधिया नरेश राना की भूमि पर कोई हस्तक्षेप न करें। इस वंश के राणा भीमसिंह पहले गोहाद के राणा कहलाते थे परन्तु सन् १८०५ ई० में ब्रिटिश गवर्नर जनरल ने ग्वालियर और गोहाद को सिंधिया नरेश को देकर गोहाद के बदले राणा कीरत सिंह जी को धौलपुर, बारी, सेपाऊ, राजखेड़ा का इलाका दिया, तभी से वर्तमान धौलपुर का राज्य बना।

सन् १८३६ ई० में कीरत सिंह जी का स्वर्गवास हुआ जिसके पश्चात उनके पुत्र भगवत सिंह जी धौलपुर के राजा हुए। सन् १८७० ई० में उनके स्वर्गवास के उपरांत उनके पौत्र राणा निहाल सिह जी गद्दी पर बैठे। उसके बाद उनके पुत्र राना राम सिंह जी धौलपुर नरेश हुए परन्तु थोड़े ही समय बाद आपका भी स्वर्गवास हो गया।

वर्तमान नरेश

ले॰ कर्नल, हिज़ हाई नेस, रईसुद्दौला, सिपहदारुल्मुल्क, सरावद राजाए हिंद, महाराजाधिराज, सर सवाई महाराज राणा सर उदय भान सिंह जी, लोकेन्द्र बहादुर, दिलेरेजङ्ग, जयदेव, जी॰ सी॰ आई॰ ई॰, के॰ सी॰ एस॰ आई॰, के॰ सी॰ वी॰ ओ॰ वर्तमान धौलपुर नरेश हैं जो स्व॰ राणा रामसिंहजी के छोटे भाई हैं। आपका जन्म १२ फरवरी १८९३ ई॰ में तथा राज्याभिषेक मार्च १९१८ ई॰ में हुआ।

सन् १९३० तथा ३१ की दोनों गोलमेज़ परिषदों में आप सदस्य बनकर शामिल हुए। आपको १५ तोपों की स्थायी तथा १७ तोपों की स्थानीय सलामी दी जाती है।

इस राज्य का क्षेत्रफल १ हजार २२१ वर्गमील तथा जनसंख्या २ लाख ८६ हज़ार ९०१ है। वार्षिक राजस्व १९ लाख ७४ हज़ार है।

कोटा

बूंदी के निकट स्थित होने के कारण साधारण बोलचाल में कोटा बूंदी एक ही साथ आ जाते हैं परन्तु वास्तव में कोटा बूंदी से अलग एक राज्य है। फिर भी सन् १६६५ ई॰ तक कोटा का अस्तित्व बूंदी में ही लुप्त था। बूंदी के महाराज रावरतन सिंहजी के द्वितीय पुत्र माधोसिंहजी ने अलग होकर कोटा की नींव डाली। इसका क्षेत्रफल ५ हजार ६८४ वर्गमील और जनसंख्या ७ लाख ७७ हजार ३९८ है। वार्षिक राजस्व ५२ लाख है।

वर्तमान नरेश

आनरेबुल मेजर, हिज़ हाईनेस, महाराजाधिराज, महाराज, महि-महेन्द्र, महाराव राजा श्री भीमसिंहजी साहब बहादुर कोटा के वर्तमान नरेश हैं। आपका जन्म १९०९ में, और राज्याभिषेक १९४० ई॰ में हुआ। आपका विवाह बीकानेर नरेश स्व॰ महाराज गंगासिंहजी की पुत्री तथा वर्तमान बीकानेर नरेश की बहिन के साथ सन् १९३० ई में हुआ। २१ फरवरी १९३४ ई॰ में युवराज महाराज कुमार व्रजराज सिंहजी साहब का जन्म हुआ।

विशेषता

कोटा बहुत प्राचीन काल से ही अपने कला-कौशल और कारीगरी के लिये विख्यात है। कोटे की मलमल और पगड़ी से शायद ही कोई अपरिचित हो। कोटा, बारण और रामगज यहां की प्रसिद्ध व्यापारिक मंडियां हैं। नवीन अर्थविज्ञान (Science of Economics) जिन Co-operative Societies (संगठित व्यापारिक प्रतिष्ठान) की महत्ता पर इतना अधिक जोर डाल रहा है और कितनी ही कोशिशें किये जाने के बावजूद भी कलकत्ता, बंबई और दिल्ली जैसे महानगरों एवं बहुत से देशी राज्यों में भी जिन Co-operative Societies की स्थापना न हो सकी—जिसके लिये भारत सरकार प्रतिवर्ष लाखों रुपये भी फूंक देती है - उन्हीं सोसाइटियों की संख्या कोटा की इस छोटी सी रियासत में ४६९ है।

कोटा की दूसरी विचित्रता यह है कि इतने छोटे से क्षेत्रफल के राज्य में १७४ स्कूल हैं।

करौली

इस राज्य को चम्बल नदी ग्वालियर से पृथक करती है। इसका क्षेत्रफल १ हजार २८२ वर्गमील और जनसंख्या १ लाख ५२ हजार ४१३ है। करौली की भौगोलिक विशेषता यह है कि उसकी स्थिति से इसके चारों ओर स्थित ३ बड़ी-बड़ी रियासतें पृथक हो जाती हैं। करौली के उत्तर में भरतपुर, दक्षिण तथा पश्चिम में जयपुर तथा पूर्व में रियासत धौलपुर स्थित है।

यद्यपि करौली में राजवंश प्रतिष्ठित है तो भी यहां का शासन-प्रबन्ध अंगरेज़ रेज़ीडेण्ट के ही हाथ में है।

वर्तमान नरेश

हिज़ हाइनेस, महाराजाधिराज, महाराजा सर भौमपालदेव बहादुर, यदुकुल चंद्र-भाल, के० सी० एस० आई० करौली के वर्तमान नरेश तथा कुंवर गणेशपालजी युवराज हैं।

अजमेर-मेरवाड़ा

यद्यपि यह प्रान्त आज राजस्थानी रियासतों के बीच में स्थित है जिसका क्षेत्र-फल २ हजार ४०० वर्गमील तथा जनसंख्या ५ लाख ८२ हज़ार ६९३ है और यद्यपि यह राजस्थानी राजाओं की ही भूमि है तो भी अब उस पर अंगरेज़ों का राज्य है। पिंडारी की लड़ाई के बाद जब सिंधिया ने सन् १९१८ ई० में अङ्ग-रेज़ों से सन्धि की तो उसने इस प्रदेश को अङ्गरेज़ों को अर्पित कर दिया था। यहाँ की भाषा, रीति-रिवाज और वेश-भूषा तथा संस्कृति सब राज़स्थानी, या मार-वाड़ी ही है।

मारवाड़ का वास्तविक विस्तार

ऊपर जितने राजस्थानी रजवाड़ों का परिचय दिया जा चुका है, वह भारतवर्ष में अङ्गरेज़ों की सत्ता स्थापित हो जाने के फलस्वरूप ब्रिटिश व्यवस्था का ही वर्गी-करण और क्षेत्रनिर्धारण है। जहां तक राजस्थान या मारवाड़ के विस्तार का प्रश्न है, अङ्गरेज़ी व्यवस्था के अन्तर्गत किये गये क्षेत्रनिर्धारण से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारतवर्ष की केन्द्रीय सत्ता का सदर मुकाम दिल्ली प्रारम्भिक इतिहास से ही राजस्थान के इतने अधिक संपर्क में रहा है कि उसे राजस्थान का ही एक भाग कहा जा सकता है। भारतवर्ष में हिन्दू सत्ता के अन्तिम दिनों में दिल्ली और राजस्थान अलग नहीं थे। मुसलमान शासकों ने भारतवर्ष का अर्थ राजस्थान से ही लगाया क्योंकि राजस्थानी सत्ता की विजय के बिना इस देश पर किसी भी विदेशी शक्ति के पैर जमने मुश्किल थे और इसी तथ्य के आधार पर शहाबुद्दीन गोरी के बाद गुलाम वंश, तुग़लक, खिलज़ी, लोदी तथा मुग़ल वंशीय सभी मुस्लिम सम्राटों को राजस्थान के साथ संघर्ष अथवा मैत्री के किसी न किसी रूप से संपर्क रखना पड़ा। इसका भी फल यही हुआ कि मुसल-मानी काल में भी दिल्ली नगर राजस्थानी संस्कृति से परिवेष्टित ही रहा।

वर्तमान पंजाब प्रदेश में भिवानी, हरियाना, मारवाड़ियोंकाही विशिष्ट जनपद है। अग्रोहा भी उसी कोटि में आता है। इसके अतिरिक्त, रोहतक, हिसार, भटिण्डा

और सिरसा भी—जो पञ्जाब में शामिल हैं, वस्तुतः राजस्थानीय जनपद ही हैं। वर्तमान राजस्थान के उत्तर पूर्व की ओर प्राचीन राजस्थान का क्षेत्र मेरठ तक था। इस जिले के आधे भाग में आज भी राजस्थानीय भाषा और संस्कृति का प्रभाव प्रत्यक्ष देखने में आता है। वर्तमान राजस्थान के पश्चिम में भावनगर गोंडाल, नवा-नगर, पोरबंदर, राधनपुर, विजयनगर, राजकोट, बालासिनोर और ध्रङ्गध्रा की रियासतें आज भले ही किसी अन्य राजवंशों द्वारा शासित हों, परन्तु ऐतिहासिक तथ्य यही कहता है कि वे सभी राजपूताने के भाग थे और आज भी उनकी जनता में मारवाड़ के ही संस्कार वर्तमान हैं।

पञ्जाब की पटियाला रियासत के आधे भाग तक तथा अंबाला तक राजस्थानी अथवा मारवाड़ी प्रदेश रहा है। महेन्द्र गढ़ अथवा कानोड़ देश तथा नारनौल इसी क्षेत्र के मारवाड़ी जनपद हैं। आज कल जिस "कानोड़िया" नाम से मारवाड़ियों का एक वर्ग विख्यात है वह पटियाला के कानोड़ प्रदेश के निवासी होने के ही कारण प्रचलित हुआ है। जींद, नाभा, लोहारू, दुजाणा, बाघड़ और खैरपुर आदि स्थान राजस्थानीय संबंध का ही परिचय देते हैं। वर्तमान पञ्जाब प्रदेश प्राचीन भारत में केन्द्रीय सत्ता का सिहद्वार था और दिल्ली में राजस्थानीय प्रभुत्व के प्रभाव की प्रतिक्रिया में समस्त पञ्जाब में भी राजस्थानी शूर सामन्तों को डटे रहना पड़ता था। आजकल पञ्जाब के सिख धर्मानुयायियों में अधिक संख्या राजपूत क्षत्रियों की है तथा कुछ संख्या जाट और गूजरों की है।

पश्चिम की ओर गुजरात प्रान्त में गुजराती और मारवाड़ी संस्कृति में बहुत कुछ सामंजस्य है। गुजरात की जूनागढ़ रियासत में ही भक्तशिरोमणि नरसी मेहता की लड़की व्याही हुई थी। नरसी मेहता की हुण्डी चुकाने के लिये, जनश्रुति के अनुसार जब भगवान कृष्ण ने स्वयं "सांवल शाह" का रूप धारण किया था तो भगवान का वह स्वरूप ठेठ मारवाड़ी वैश्य के ही वेश में रहा था। तात्पर्य यह कि जूनागढ़ भी मारवाड़ की ही सीमा के अन्तर्गत था। मध्य भारतीय रियासतों में रीवां, भोपाल, जवरा रतलाम, दतिया, ओरछा आदि में राजस्थानी राजाओं का रोटी बेटी का संबंध है ही। नवाबों की सत्ता राजस्थानीय महाराजाओं के

दान का फल है। ग्वालियर बड़ौदा और इंदौर के मरहठा राज्य पहले राज-स्थानी राजाओं के ही भूखण्ड थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन ऐतिहासिक अनुसंधान के आधार पर मारवाड़ का क्षेत्र आज कल के राजपूताना क्षेत्र से कई गुना अधिक विस्तृत है। इस प्रकरण में अब और अधिक कुछ न लिख कर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि देश के अन्दर जहां भी पगड़ी और घाघरा (नारी परिधान) का चिन्ह पाया जाय, वहां उन सभी जातियों और वर्गों को राजस्थानी अथवा मारवाड़ी समझना चाहिये।

परिच्छेद ४

कलाकौशल और स्थापत्य

अन्य और विषयों के साथ ही साथ राजस्थानी कलाकौशल और स्थापत्य के सम्बन्ध में भी कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

यह वह जाति है जिसने अर्वाचीन और प्राचीन भारत में इतना नाम पैदा किया; जिसने हज़ारों वर्ष तक समस्त भारतवर्ष पर राज्य किया—और जो—आज जब दो तिहाई भारत पर ब्रिटिश शासन चल रहा है, तब भी देश के एक तिहाई भाग पर अपने राज्य क़ायम किये हुए है।

जहां आज दो तिहाई भारतवर्ष पर विदेशी शासन चल रहा है और जिसके प्रश्न पर हमारे देश और संसार के अनेक प्रमुख व्यक्ति परेशान हो रहे हैं वहीं आज एक तिहाई भारत ऐसा है जहां की संस्कृति हज़ारों वर्ष पहले राजस्थानी थी; आज भी राजस्थानी ही है।

अतएव,

भारतीय गौरव की स्वतंत्रता यदि कहीं अक्षुण्ण है—भले ही वह नीति अथवा संस्कार से ही प्राप्त होकर क़ायम हो; भले ही उसका किसी हद तक अपभ्रंश हो चुका हो—तो वह है राजस्थान; मारवाड़ियों की जन्म भूमि राजस्थान! और आज हमें ऐसा कहने में गौरव की अनुभूति होती है चाहे हम अपने तथा अपने समाज के अंदर कितने ही गुण अथवा अवगुण देखें।

राजस्थान में आज भी राजस्थानियों का अपना राज्य है—राजस्थानी भारतीय

राज्य हैं। ब्रिटिश शासन के पहले भारतवर्ष के समस्त प्रांतों में स्वाधीन और छोटे छोटे राजा थे, जो हिंदू भारतीय कहलाने का उतना ही दावा करते थे जितना कि मारवाड़ी राजा लोग कर सकते थे परन्तु आज, हज़ारों वर्षों की मुसलमानी सल्तनत और उसके उपरांत सैकड़ों वर्षों की बृटिश राजनीति और हुकूमत के बाद, एक नेपाल को छोड़कर क्या कोई ऐसा भारतीय राज्य होगा जो राजस्थानीय राजसत्ता की प्राचीनता और उसकी परंपरा के मुक़ाबिले टिक सके ?

वह मरुभूमि राजस्थान, बंजर राजस्थान, जहां न कुछ उपज है न उपज के साधन, जहां की जलवायु समग्र देश से गर्म और शुष्क है, मुस्लिम और ब्रिटिश नीति से लोहा लेते हुए आज भी अपने राजतत्व पर टिका हुआ है। यह एक विशेषता है, आत्मबल की प्रचंडता का परिचय है कि जहां अन्य प्रांत अपने राजकीय स्वत्व की रक्षा न कर सके वहीं मारवाड़ ने अपने स्वत्व के श्रोत को अजस्र बना दिया परन्तु आज जब राष्ट्रीयता का प्रश्न प्रांतीय रूप से आता है तो हम मारवाड़ी लोग क्यों दबी हुई आवाज़ निकालते हैं, समझ में नहीं आता।

राजस्थान जैसी वीरभूमि के निर्माता और उसके अदम्य रक्षक आज डरपोक क्यों बने हुए हैं, एक विडम्बना है। हमारे भाई जब यह कहते हैं कि हम अपनी परिपाटी पर अंध विश्वास के साथ चलना ही अपना धर्म और कर्तव्य समझते हैं, तो मारवाड़ियों की परिपाटी तो वीरता है; उन्हें वीर बनना पड़ेगा, सीधे नहीं तो समाज के लिये ; भारतीय राष्ट्र के लिये वाध्य होकर वीर बनना पड़ेगा।

अपने तथा अपने भाइयों के अस्तित्व की रक्षा के लिये अपना बलिदान देकर भी भारत के राष्ट्रीय संग्राम में आगे आना ही पड़ेगा—भारतीयता के नाते, अपनी सेवाओं के कारण हमें हक़ है कि हम बीर बनें और पुरस्कृत हों। यदि ऐसा न कर सकें तो हम सच्चे मारवाड़ी नहीं ; राजस्थानी नहीं, राजपूत नहीं, मारवाड़ी कहलाने के नाते ही हम कम मारवाड़ी नहीं, वरन् हम भारत के कलंक हैं !

इस परिच्छेद में हम यह दिखाना चाहते हैं कि जहां मारवाड़ या राजस्थान ने अपने राजकीय स्वत्व को इस हद तक सुरक्षित रखा है वहीं उसकी सभ्यता, उसके आदर्श, उसकी कला और उसके स्थापत्य का क्या हाल है ? इतिहास के अंदर बिना

साहित्य, कला और भाषा के राज्य, राष्ट्रीयता और अस्तित्व भी बेकार हुआ करता है।

राजस्थानी साहित्य संसार में क्या स्थान रखता है, उसकी महत्ता कितनी है, उसका भंडार कितना है, इस पर तथा इसके प्रदर्शन पर हम क्यों मूक हैं? यह हमारे अन्दर के धनिक वर्ग का दोष है; राजाओं का दोष नहीं है, दोष है रत्न पारखी जौहरियों का।

भाषा-साहित्य विषय के अंतर्गत प्रायः सभी कलाओं का सन्निवेश रहता है भाषा-साहित्य का सारा भण्डार साहित्य सेवियों की कृति हुआ करती है और उसका यथा समय परिमार्जन एवं देशकालानुसार उसे सुलभ बनाना तथा प्राचीन एवं नवीन तथ्यों को विकीर्णित करते हुए समाज का उचित पथ-प्रदर्शन करना साहित्यिक का ही काम हुआ करता है। साहित्य सेवा का गुण भी नैसर्गिक वरदान है और प्रायः देखा जाता है कि सच्चे अर्थवाले साहित्यिकों को यदि धनिक वर्ग प्रश्रय न दे तो समाज और दुनियां के सामने अनमोल रत्न राशियां बिखेरनेवाले यह अल्मस्त जीव अपनी सुकृति रूपी रत्न राशि को चुपचाप किसी कोने में डाल कर स्वयं भी चुपचाप तिरोहित हो जाया करते हैं। यह लोग फ़ाक़ेकशी करते हुए भी किसी के पास जाकर हाथ पसारना पसंद नहीं करते; अपनी भावना और उमंगों में यह इतने डूबे रहते हैं कि संसार के स्थूल व्यापार से ये नितांत परे रहते हैं और यदि उनके निजी तर्कों की ओर कोई अपना ध्यान न दे तो बड़ी सरलता से उन्हें निष्चेष्ट और अहदी कहा जा सकता है परन्तु अपने स्वाभिमान पर वे ज़रा सी भी चोट बर्दाश्त नहीं कर सकते अतएव ऐसे लोग प्रायः निर्धन हुआ करते हैं। यदि धनिक वर्ग इस प्रकार के लोगों की परख न कर सकें या जानबूझ कर भी ऐसे लोगों को प्रश्रय न दें तो समाज के भाषा और साहित्य के द्वारा समाज में प्राण-भरने का एक अत्यावश्यक विभाग शिथिल पड़ जाय। आज यदि राजस्थानी भाषा और साहित्य की प्रगति रुकी हुई पड़ी है तो उपर्युक्त कारणों से उसका दोष समाज के धनिक वर्ग पर ही आता है।

ईश्वर का कुछ-ऐसा विचित्र विधान है कि स्थल-स्थल पर उसकी सर्व शक्ति मत्ता का प्रमाण मौजूद है। जब हम देखते हैं कि अपने आन्तरिक गुणों और विशेषताओं सहित राजस्थान हजारों वर्ष पूर्व से लेकर अबतक विशिष्ट ही बना रहा और आज

समाज के पुरुष रूपी जिन अवयवों ने अपनी लापरवाही से अपनी भाषा; साहित्य और कलाकौशल की गौरव गरिमा को तिमिराच्छन्न कर दिया वहाँ हमारी उन गृहदेवियों ने—जिन्हों ने समय समय पर अगणित शूर वीरों को जन्म देकर राजस्थान की कीर्ति कहानी को अमरत्व प्रदान किया है—हमारे साहित्य और भाषा की-भी निधिको सुरक्षित रखा है। मारवाड़ अथवा राजस्थान के इतिहास, उसके आदर्श और उसकी संस्कृति की अभिव्यक्ति एवं प्रशंसा में जिन प्राचीन साहित्यिक और कवियों ने अपनी प्रतिभा का सदुपयोग किया उनकी कृतियों को आजभी हमारी गृह देवियां अपने सामाजिक रीतिरस्मो के रूप में अपने गायनों के रूप में सुरक्षित बनाये हुए हैं, जबकि हम लोगों ने, आधुनिकतम भौतिक साधनों से भरपूर होकर भी, इस दिशा में कुछ भी नहीं किया है, हां किया भी है तो यह कि उन गीतों के प्रति अपनी घृणा प्रगट की, उनकी उपेक्षा ही की और इस प्रकार से अपनी साहित्यिक निधि के विनाश की कुचेष्टा का और भी अधिक जघन्य उद्योग किया।

कला और कारीगरी भी देश और समाज विशेष के साहित्य का एक प्रमुख अङ्ग है अतएव इस परिच्छेद में हम केवल राजस्थानीय कला कौशल और स्थापत्य पर ही प्रकाश डालते हुए अगले परिच्छेद में भाषा और साहित्यका विवेचन करेंगे।

जयपुर की चित्रकला

तूलिका, रंग तथा अपने हाथ के ही सहारे से जयपुर के चित्रकार जो चित्र अंकित करते हैं उनकी उपमा आज भी संसार के किसी अन्य भाग में नहीं मिलती। यहाँ के इस विद्या के कलाकारों का क्षेत्र इतना विशाल है कि कागज पत्थर और मिट्टी के खिलौने भी अद्भुत सौष्ठव और निराली कल्पना एवं सुंदर कवित्व का परिचय देते हैं। देव प्रतिमाओं के निर्माण में यहां के अपढ़ कारीगर कमाल कर दिखाते हैं। कांसा और पीतल के सादे एवं नकाशीदार वर्तन बड़े अनूठे रूप में तैयार किये जाते हैं। लाख की चूड़ियां, सोने चांदी के जड़ाऊ और मीनाकारी के आभूषण देखकर तबियत फड़क उठती है। जयपुर के हथियार भी अपनी अलग ख्याति रखते हैं। गोटा किनारी, कलाबत्तू और सलमा-सितारे का काम विशेष आकर्षक होता है। खास जयपुर में

ही नहीं, उस राज्य के भिन्न-भिन्न स्थानों में भी नाना प्रकार की वस्तुयें प्रस्तुत की जाती हैं। फर्शीपंखे, लकड़ी के डिब्बे डिबिया बनाने वाले कारीगरों की कृति देखते ही बनती है। यहां के तलवार के क़ब्जे और कंघे प्रसिद्ध हैं। पन्ना और जवाहरात की कटाई का काम बहुत पुराने जमाने से जयपुर में होता आरहा है। हमारे देशमें और कहीं यहकाम नहीं होता।

पगड़ी, उसकी रंगाई और उसकी बंधाई का काम यहां इतना विशिष्ट है कि समस्त देशमें जयपुर के साफ़ा (पगड़ी) की मांग होती है और इसी काम की बदौलत यहां की देशी छींट भी विख्यात है।

नावां की सोजनी और गोंद की मिठाई तथा पंचपदरा के हाथी दांत के फौव्वारे, बागवाड़ी, भरत के वर्तन और खिलौने, पंखों की डंडी और सुरमेदानी प्रसिद्ध है। सांगानेर की पक्की छपाई के कपड़े, रुमाल, साड़ी, दुपट्टे, धोती, चादर, काग़ज, और छीट प्रसिद्ध है। मालपुरा में ऊन के कपड़े, आसन, और जीन, टोडाभीम के रेजी के थान, झुंझुनू की चिलमें और हुक्क प्रसिद्ध हैं। 'कीटाकासम' की रेजी और दाहर, बगरू के छपे चादरे और दुपट्टे, खण्डेला के लकड़ी के सिंगार दान, डिब्बे, पलंग के पाये, जूते सुन्दर और मजबूत होते हैं। वैराठ में लकड़ी के क़लम दान, संदूकचे और खद्दर के थान, दादू पंथियों के प्रसिद्ध स्थान 'दोसा' में मूर्तियां और 'कायमखानी' नामका एक किस्मका कपड़ा, खंडार में खस के पंखे, पलंगके पाये और पारे के काम के कंघे बनते हैं।

जोरावरगढ़ में भरत के हुक्के, ताले और चाकू, बसवा में मिट्टी के खिलौने और वर्तन और दतेभा में दांतों का काम सुन्दर होता है। बोली का लोहे का काम और रंगाई, पिंढाणा का खस का अतर और हिंडौन का बादशाही का कपड़ा प्रसिद्ध है। सवाई माधोपुर भी अपनी कारीगरी के लिये विख्यात है। वहां पत्थर के ऐसे खिलौने बनते हैं जो पानी पर मजे में तैर सकते हैं, कागज, कलमदान और गंजीफे प्रसिद्ध हैं। लकड़ी की खरादी का काम, रंगे और छपे हुए कपड़े भी निहायत उमदा होते हैं। सिंहाना में जूते और चमड़े का काम बनता है।

करौली की छीट और लकड़ी तथा पत्थर का काम, किशनगढ़ की छीट,

सेलखड़ी के प्याले, पंखे, गिलास और सुराहियां, डूंगरपुर में लकड़ी की खराद का काम, काले पत्थर की मूर्तियां, वर्तन, प्रतापगढ़ में मीना के काम के आभूषण, बूंदी की गुले अनार रंगत और कटारी, सिरोही की तलवार, छुरी, कटारी, चाकू और सरौते प्रसिद्ध हैं।

बीकानेर मिश्री, भुजियाँ, खटाई चूरन, हाथी दाँत का चूड़ा, कालीन, गलीचा, और पट्टू के लिये प्रसिद्ध है। यहां की लोई बड़ी मुलायम, सुन्दर और गर्म होती है। भरतपुर के लकड़ी और पत्थर के प्याले, बर्तन, मिट्टी के बर्तन और खिलौने, सीकरी की मिठाई प्रसिद्ध है, धौलपुर में लकड़ी और लोहे का काम और खजूर के पंखे बनाये जाते हैं।

अलवर राज्य भी अपनी कारीगरी के लिये प्रसिद्ध है। यहां के चीरे और लहरिये बहादुर गढ़ के हुक्के के नेचे, किशनगढ़ त्रिपालपुर और गड़बसई अपनी छींट के लिये प्रसिद्ध है। मादले के पत्थर के प्याले, राजगढ़ की रंगीन दरी, हरसोरा के तोसक और जाजिम प्रसिद्ध हैं। कोटा रियासत की कारीगरी किसी से पीछे नहीं है जहां की मखमल, महमूंदी डोरिया, दुपट्टे, पगड़ी और धोती अति सुन्दर हाती हैं। इन्द्रगढ़ के लकड़ी के रंगीन खिलौने, किशनगञ्ज के सागौन के पाये, बारां की चून्दड़ी, इटावा के हाथी दाँत के खिलौने कलमदान सुन्दर होते हैं। इसी प्रकार उदयपुर रियासत में एक से एक कला मर्मज्ञ पड़े हुए हैं, जिनकी कृतियां वहां की कीर्ति फैलाती रहती हैं। खास उदयपुर में लकड़ी की खरादी का काम, सुनहरी छपाई, और मिट्टी की गणेश मूर्तियां बनाई जाती हैं। ऋषभदेव जी के काले पत्थर की रकाबी और प्याले प्रसिद्ध हैं। भीलवाड़ा में तांबे पीतल और कलई के बर्तन, हुक्के की कली, कटोरे, गिलास, आदि तथा जाजपुर में लकड़ी की खराद का काम बनता है।

जोधपुर रियासत

यह रियासत अपने शिल्पियों और कलाविदों के कारण जयपुर से भी बढ़ा चढ़ा स्थान रखती है। इस रियासत के अनेकानेक स्थानों में उच्च कोटि की कारीगरी तैयार करने वाले आदमी पाये जाते हैं। टुकड़ी, काजलिया और समन्दरी लहर

की रंगत का काम, पाये का काम, हाथी दांत के चूड़े, पत्थर की खुदाई का काम, कंघे, चांदी सोने के बर्तन, आभूषण, तुर्रे, किलङ्गे, हुक्के, पगड़ी, चुन्दड़ी, बटन बनाने की कारीगरी प्रशंसनीय होती है। ओसियां के ऊनी कम्बल, खेस, जालोर की टुकड़ी, खेतासर की जूट अर्थात् ऊंट के बालों की दरी और फर्श, तथा डीडवाना के पीतल के बर्तन और पिचकारी, बड़ागांव की तलवार की मूंठ, बाली बांसकी टोकरी, कुचामन के बंदूक, तमञ्चा, घड़ी, यंत्रराज, ताले, पिचकारी, पानी चढ़ाने के बम्बे, चक्करदार फर्शी पंखे आदि प्रसिद्ध हैं।

मूंडवा में जाटनियों के बनाये कसीदे के काम, ओढ़ने दामन और घाबला बड़े ही सुन्दर होते हैं। विदेशी लोग भी इन्हें बड़े चाव से खरीदते हैं। इसी महायुद्ध के समय में भारतस्थित अमेरिकन लाखों रुपये मूल्य के यह क़सीदे के काम खरीद कर अपने देश ले गये हैं। पक्के रङ्ग की चून्दड़ी, ओढ़नी, छींट, रामदेव नामी छपी धोती और पगड़ी के लिये पोकरण प्रसिद्ध है। बूसी में जाजम तोसक, रजाई और बोराबड़ में सोने का हल्का पतला काम, सुन्दर होता है। सांभर में नमक के खिलौने, और पीतल, कांसी के बर्तन आदि बनते हैं।

टोंक यद्यपि छोटी सी रियासत है परन्तु खास टोंक में बनाती जूते, जीन और खोगोर बनते हैं तथा पिण्डवा में सोने चांदी की लैस या गोटा और सिरोज में जरी के मन्दील सेलें और साड़ी सुन्दर होती है।

झालावाड़ रियासत के आवर नामक स्थान के काले रङ्ग के दुपट्टे गंगार का आल की रंगाई का काम डिग के सरौते, बर्छे, कटारी, कैंची और चाकू प्रसिद्ध हैं।

राजस्थानीय स्थापत्य

आधुनिक स्थापत्य विज्ञान जिस राजस्थानीय स्थापत्य कला को अत्यंत उच्चासन देता है उसके संबन्ध में हम देखते हैं कि पुस्तकों या समाचार पत्रों के द्वारा कभ भी कोई प्रकाश नहीं डाला जाता है। हमारा दावा तो यहां तक है कि Gothic (गालदेशीय) Semitic (पाश्चात्य) Syrian (सीरियन) Persian (फारसी) और यूनानी आदि प्राचीन स्थापत्य कलाओं को मात देने वाली यदि
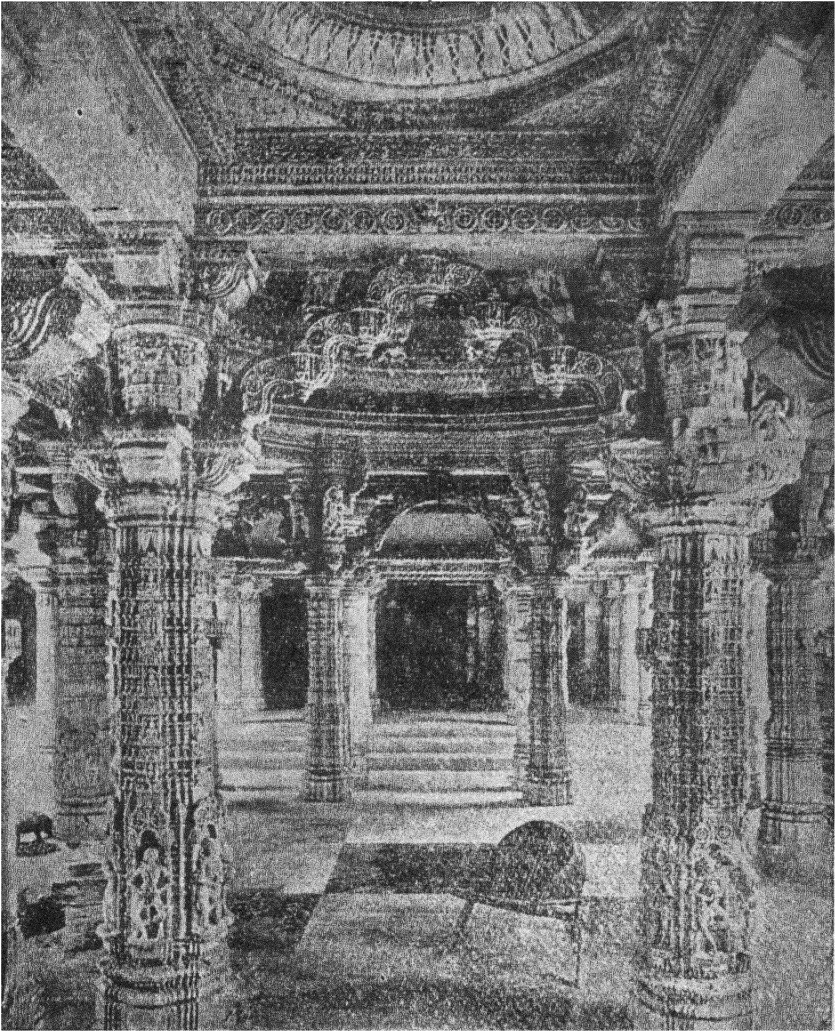
आबूके जैन मन्दिरमें पत्थरकी नक्काशी

विमल शाह नामक एक महाजनने सन १०३० ई० में इस मन्दिरको बनवाया था। कहा जाता है कि विमल शाहने इसकी ज़मीन भरमें चाँदीके सिक्के बिछाकर उसको ख़रीदा था। मन्दिरके बननेमें १६ साल लगे। इसकी ज़मीन बराबर करनेमें ५६ लाख रु० तथा मन्दिर निर्माण में १ करोड़ ८० लाख रु० का खर्च बैठा। मन्दिरकी छत, दीवाल और स्तूपपर जो नक्काशी बनी हुई है, संसारमें वह अपने ढंगको अद्वितीय मानी जाती है।
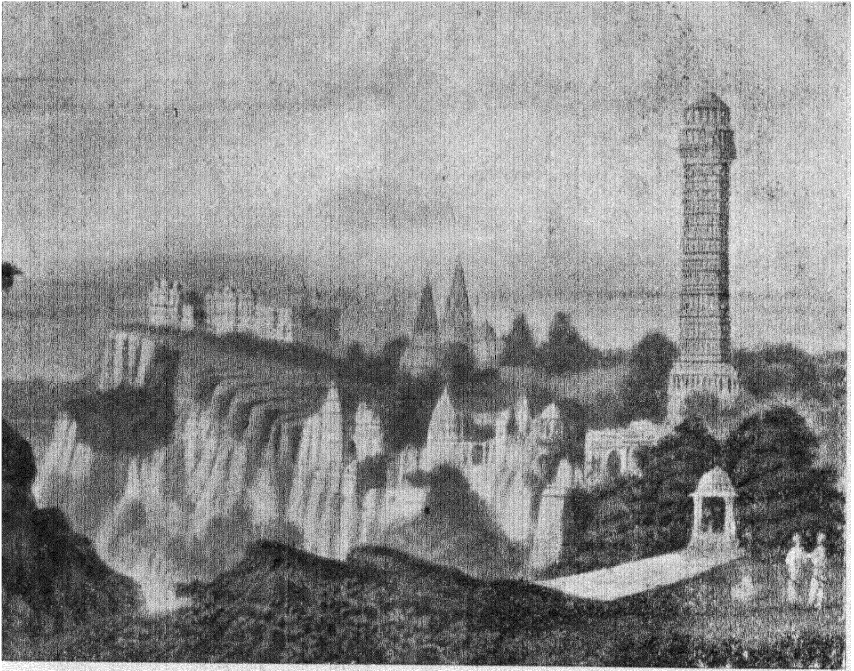
चित्तोड़ दुर्गका आन्तरिक दृश्य और जयस्तम्भ
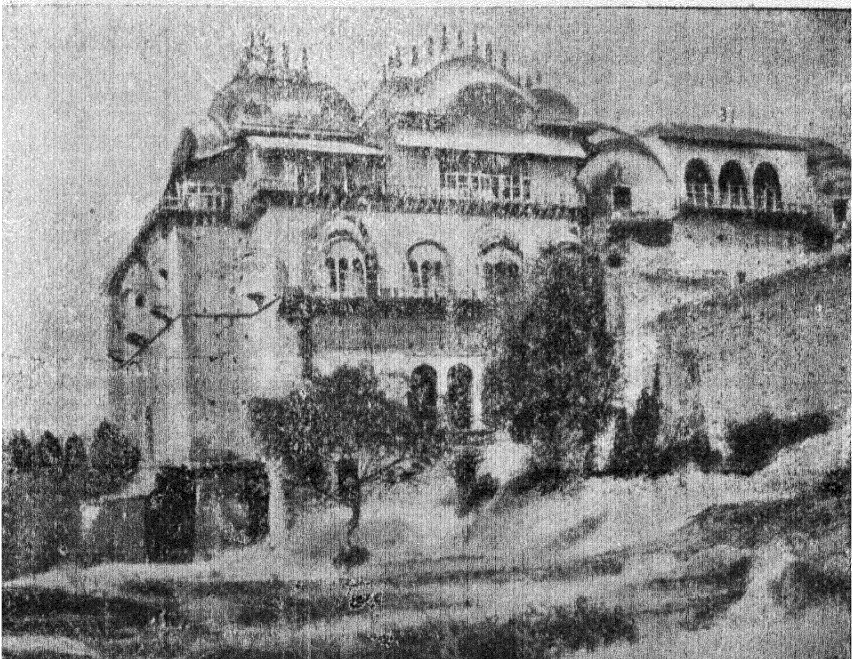
संसार में कहीं की स्थापत्य कला है, तो वह राजस्थान की है। संसार के सप्ताश्चर्यों के नाते जब हम देखते हैं कि भारतवर्ष को उच्च स्थान नहीं मिलता तो हमारी समझ में यह बात नहीं आती कि इस देश का इस प्रकार का तिरष्कार यहां के कला विज्ञान की दृष्टि से होता है अथवा स्वतंत्र या परतंत्र रहने के विचार से होता है। सप्ताश्चर्यों का महत्व अधिकतर उनकी उस विशालता के कारण है जो जमीन के ऊपर ही ऊपर दिखाई देती हैं परन्तु भारतवर्ष में ज़मीन के भीतर ही भीतर इतनी विशाल कलायें छिपी पड़ी हैं जो संसार के अन्य देशों की पृथ्वी के ऊपर बनी हुई कलात्मक विशालता से भी बड़ी हैं। इसका सीधा सा उदाहरण यह है कि आज यंत्रों के इस युग में इंगलैंड, यंत्रों की ही सहायता से सुरंग रेलवे निकाल कर फूला नहीं समाता परन्तु हमारे देश में आज से हजारों वर्ष पहले पृथ्वी के नीचे ही नीचे इतनी विशाल इमारतें बनाई गई हैं कि उनके सामने इंगलैंड की सुरंग रेलवे तैयार करने वाले इञ्जीनियरों की अक्ल गुम हो जाती है। जयपुर का जल-क्रीड़ा महल, जितना पृथ्वी के ऊपरी भाग में विशाल दिखाई देता है, उसका सुरंग वाला भाग उससे कम विशाल नहीं है।

यों तो महाभारत काल में हमारे देश की स्थापत्य कला का उदाहरण उस विचित्र शीश महल से मिलता है जिसमें प्रवेश करने पर दुर्योधन को स्थल में जल तथा जल में स्थल की भ्रांति हो गई थी, इसके अतिरिक्त बालमीकीय रामायण, रघुवंश, नैषध, श्रीमद्भागवत जैसे प्राचीन ग्रंथों में विभिन्न नगरों की रचना का वर्णन पढ़कर दंग रह जाना पड़ता है, तो भी आज हम अपने यहां हजारों मील लंबी सुरंगों की कहानी भी सुनते हैं और यत्र तत्र कहीं उन्हें आंखों से भी देख लेते हैं तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। इस देश में जितने भी प्राचीन दुर्ग हैं, उन सबके अन्दर गुप्त मार्ग बने हुए हैं परन्तु सत्ता के हस्तांतरित होने के समय उन गुप्त मार्गों का पता किसी को भी नहीं दिया गया फलतः वे गुप्त के गुप्त ही पड़े हैं। पता तो यहां तक चलता है कि गुप्त मार्गों द्वारा कन्नोज, दिल्ली, अयोध्या और अवन्तिका भी परस्पर संबद्ध रहे हैं। दिल्ली में पृथ्वीराज के किले की एक ऐसी ही सुरंग को देखने और उसका ओर छोर जानने के उद्देश्य से बहुत दिन
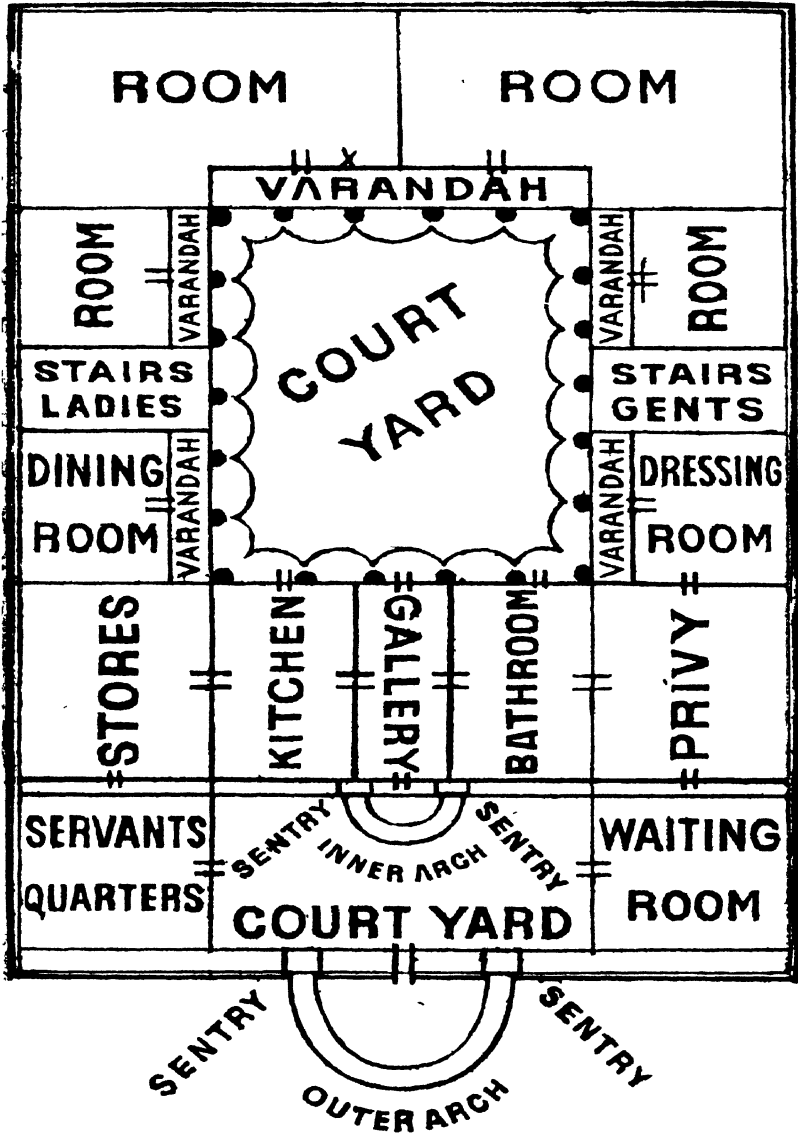
प्राचीन राजस्थानी स्थापत्य कला के अनुसार एक साधारण गृहस्थ के मकान की रूपरेखा ।

हले कुछ अंगरेज़ घुसे, उनके वापस न आने पर और भी घुसे, अंत में अनेकों
ुड़सवार भी घुसे परंतु वे बाहर नहीं लौट सके। दुर्घटनाओं के कारण ऐसी सुरंगें
ंद करा दी जाती हैं। कालिंजर के किले की रचना—जो मुसलमानी जमाने से पहले
ी है—देखकर आधुनिक इञ्जीनियर दांतों तले उंगली दबाकर रह जाता है। इस
केले की जितनी इमारत बाहर से देखने में आती है उतनी ही ज़मीन के अन्दर भी
बनी हुई है।

चित्रकोट से १८-२० मील की दूरी पर एक सप्त मंजिला महल ऐसा विचित्र
बना हुआ है जिसे देखकर आश्चर्य चकित होकर रह जाना पड़ता है। यह महल एक
बावड़ी के अन्दर निर्मित है जो बावड़ी की काफ़ी गहराई तक ७ मंजिलों में बना हुआ
है। इसके कमरों और दीवारों को देखने से प्रतीत होता है मानो वे आज ही बनाई गई
हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न स्थानों में अनेकों ऐसी ही अति गंभीर और प्राचीन
बावड़ियां देखने में आती हैं। चित्तौड़ का दुर्ग और उसका जय-स्तंभ भी भारतीय
स्थापत्य कला की एक शान है।

राजस्थानीय भवन निर्माण कला अपना एक सरल एवं विशिष्ट मानचित्र रखती है
और जितने भी प्राचीन भवन अथवा दुर्ग देखने में आते हैं, उनका प्रकाश्य भाग एक
ही मानचित्र लिये हुए होता है।

क़ुतुब मीनार और आमेर का किला राजस्थानी स्थापत्य कला के ही प्रतीक हैं।

आधुनिक काल में देश के कलकत्ता, बंबई, दिल्ली, कानपुर आदि प्रमुख नगरों में
जितनी नवीन इमारतें बनती जा रही हैं, उनमें अधिकांश मारवाड़ियों द्वारा ही बनवाई
जा रही हैं, इसलिये आज भी इस वर्ग का स्थापत्य कला के साथ बहुत बड़ा सपर्क
है और उस कला में भिन्न भिन्न आधुनिक रंग, रूप और डिजाइनों के मकान बनते
जा रहे हैं।

राजस्थानी कला कौशल के इस प्रकरण में हमारा ध्यान इस बात की ओर भी
जाना चाहिए कि आजकल यंत्रों के युग में हमारी बहुत सी कलाओं का विकास या
तो छिप गया है, अथवा अवरुद्ध हो गया है और हमारा कर्तव्य है कि हम उसे
प्रकाश में लाकर प्रस्फुटित करें। इस कार्य के लिये हमें यह जानना आवश्यक है
कि वास्तव में कला-कौशल का विस्तार कहां तक है।

बहुत प्राचीन काल से हमारे देश में १४ विद्या और ६४ कलाओं का महत्व समझा जाता रहा है। श्रुति-स्मृति और पुराणों में हिंदू धर्माचार्यों ने इन सबका निरूपण किया है, परन्तु आज हम उनसे नितांत अनभिज्ञ से हो गये हैं। परिचय के रूप में यहां इस संबन्ध के कतिपय ज्ञातव्य प्रस्तुत किये जाते हैं।*

विद्या का आशय है कि वस्तुतः जो कुछ भूत, भविष्यत् और वर्तमान के अस्तित्व में आया अथवा आयेगा या होगा, उसके कार्य और कारण का ज्ञान रहे। ४ वेद, ६ दर्शन और ६ वेदांगों अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण, ऋक्, यजुः, साम और अथर्व में ही सारी विद्यायें आ जाती हैं, अतएव मुख्य विद्या यही हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्व और स्थापत्य, वेदों के उपांग ही हैं। फिर भी कुछ आचार्य उससे निम्न स्तर पर आकर १४ विद्याओं का निरूपण इस प्रकार करते हैं—

१—ब्रह्म-विद्या

प्रथम ब्रह्मविद्या है, जिसकी व्याख्या के अन्तर्गत आधुनिक समय में प्रचलित Metaphisics अर्थात् निराकार ब्रह्म-ज्ञान, Philosophy अर्थात् वेदान्त-दर्शन, Psychology अर्थात् मनोविज्ञान, Ethics अर्थात् नैतिक-विज्ञान, Mythology पुराण विज्ञान, Mystical Theology अर्थात् तंत्र-मंत्र योग, Spiritual Theology अर्थात् जीवात्म विज्ञान, Theosophy अर्थात् सर्वात्मबोध, Theogony अर्थात् देव-कोटि-विज्ञान, शामिल हैं। ब्रह्म-विद्या के ही एक उपाङ्ग के रूप में Phenomenology अर्थात् संस्कार विज्ञान तथा Physiology अर्थात् प्रकृति विज्ञान भी हैं।

२—नृपगति-विद्या

इस विद्या के अन्तर्गत आधुनिक Sociology अर्थात् समाज विज्ञान, राजनीति अर्थात् Politics, नागरिक विज्ञान या Civics, लोकप्रीतिं विज्ञान या Philanthropy, आदि विद्यायें सन्निहित हैं।

३—राग-विद्या

इस विद्या के अन्तर्गत Phonology अर्थात् स्वर विज्ञान, Harmolo-

gy अर्थात् समध्वनि विज्ञान, Music अर्थात् गांधर्व विज्ञान, Oratory अर्थात् उच्चार विज्ञान, Poetics या पिंगल सम्मिलित हैं।

४—व्याकृति-पठन-विद्या

इस विद्या के अन्तर्गत Philology अर्थात् शब्द विज्ञान, Bibliology अर्थात् प्रकरण विज्ञान, Grammar अर्थात् व्याकरण, Literature अर्थात् साहित्य, Engineering अर्थात् संयोजन विज्ञान, History अर्थात् इतिहास, तथा Logic अर्थात् तर्कशास्त्र आदि शामिल हैं।

५—नट-विद्या

इस विद्या के अन्तर्गत Dramaturgy अर्थात् अभिनय शास्त्र, Acting अर्थात् नाट्य शास्त्र हैं।

६—गृह-संचालन विद्या

इस विद्या के अन्दर आधुनिक Economics अर्थात् अर्थशास्त्र, Sexuology अर्थात् काम विज्ञान की विद्यायें शामिल हैं।

७—तुरग-विद्या

इस विद्या के अन्तर्गत आधुनिक Riding अर्थात् अश्वारोहण विद्या, Speedology अर्थात् गति विज्ञान, तथा समय-स्थान और श्रम के मितव्यय की विद्या अर्थात् Economy of Time, Space and Physical Exertion आदि शामिल हैं।

८—ज्योतिष-विद्या

इस विद्या के अन्तर्गत आधुनिक Astrology अर्थात् फलित ज्योतिष विज्ञान, Astronomy अर्थात् ग्रहोपग्रह विज्ञान, Palmistry अर्थात् हस्तरेखा विज्ञान आदि शामिल हैं।

९—यान-संचालन विद्या

इसके अन्तर्गत Driving आदि यान संचालन की सभी विद्यायें आ जाती हैं।

१०—धनुर्विद्या

इस विद्या के अन्तर्गत आधुनिक समय में प्रचलित Sciences of Destruction अर्थात् सभी प्रकार के विनाश विज्ञान, Military Training अर्थात् सैन्य शिक्षण तथा अस्त्र-शस्त्र विद्यायें आ जाती हैं।

११—रसायन-विद्या

इस विद्या के अन्तर्गत आधुनिक समय की Chemistry अर्थात् रसायन शास्त्र, Mineralogy अर्थात् धातु-विज्ञान, Geology अर्थात् भूगर्भशास्त्र, Physics अर्थात् परमाणु विज्ञान, Electrobiology अर्थात् शक्ति विज्ञान आदि विद्यायें सन्निहित हैं।

१२—धैर्य धारण विद्या

इस विद्या के अन्तर्गत Science of Environments अर्थात प्रभाव-निक्षेप, Science of Intellect and Melancholy अर्थात आह्लादावसाद विज्ञान की विद्याओं का समावेश है।

१३—चौर विद्या

इस विद्या के अन्तर्गत Knowledge of Persistency अर्थात अनिग्राह्य बोध की सारी छल-प्रवंचनायें आ जाती हैं।

१४—वैद्यक

इस विद्या के अन्तर्गत शारीरिक मृत्यु विज्ञान संबन्धी सभी विद्यायें सम्मिलित हैं और आधुनिक आयुर्वेद, Allopathy (एलोपैथी) Surgiology अर्थात शल्यशास्त्र, होमियोपैथी, यूनानी और Naturalogy अर्थात प्रकृतिचिकित्सा शास्त्र, उसी विज्ञान के विभिन्न अंग हैं।

हिन्दू दर्शन और शास्त्र तथा स्मृतियों में वर्णित यही १४ विद्यायें हमारे देश से ईसा के ३२७ वर्ष पूर्व निकल गई। सिकंदर महान जब भारत पर आक्रमण करने के वाद वापस गया तो उसकी सबसे भयंकर नीति यह रही कि वह यहां के अगणित ग्रंथ-संग्रहों और विद्वानों को अपने साथ ले गया। महमूद ग़ज़नवी भी

यहां से सोना चांदी और रत्नों के साथ यहां के ग्रंथ और विद्वान भी अपने देश को लेगया। हमारी वही चीजें पाश्चात्य देशोंमें विकसित हुईं और हमारा देश अविद्या के अन्धकार से आच्छादित होता गया।

उपर्युक्त १४ विद्याओं में से पहली अर्थात Metaphisics या निर्गुण ब्रह्म विद्या तथा अन्तिम वैद्यक अथवा Medical Science ऐसी विद्यायें हैं जिनके संबंध में मनुष्य को यह नहीं ज्ञात हो सकता कि इनका आदि और अन्त कहां से कहां तक है। इन १४ विद्याओं तथा उनके अङ्ग उपाङ्गों के विचार से यदि राजस्थान, देश में आगे नहीं है तो उसे सबसे पीछे भी नहीं कहा जा सकता।

धैर्य-धारण, धनु, यान संचालन, तुरग, व्याकृति तथा नृपगति की विद्याओं में आज भी राजस्थान सबसे आगे है।

६४—कलायें

(१) गान (२) वाद्य (३) नृत्य (४) नाट्य (५) आलेख्य अर्थात् चित्रकला (६) विशेषकच्छेद अर्थात् बेंदी आदि लगाना (७) तण्डुल कुसुमावलि विकार अर्थात् अक्षत (बिनाटूटे) चावलों से बेलबूटे आदि बनाना (८) पुष्पास्तरण अर्थात् पुष्प शय्या निर्माण (९) दशन वसनाङ्गराग अर्थात् दांत, वस्त्र और अंग में रङ्गीनता, स्वच्छता और सुगन्धि का व्यवहार (१०) मणि भूमिनिर्माण अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में अंग शीतल रखने के हेतु गृहाङ्गण में मरकतमणि आदि की चौकें पूरना। (११) उदक वाद्य अर्थात जलतरङ्ग वादन (१२) उदकाघात अर्थात् जल संतरण (१३) चित्रांग योग—अपनी अनिच्छा और पति की रति-इच्छा के समय शैथिल्य प्रदर्शन (१४) माल्य-ग्रंथन अर्थात् पुष्प माला गूंथना (१५) शेखरापीड़ योजन—केश चूड़ा शृंगार (१६) नेपथ्य योग अर्थात् वेश बदलना (१७) कर्ण-पत्र भंग अर्थात् कान में पहनने के लिये हाथी दांत, शंख, माणिक तथा अन्य वस्तुओं के उपकरण बनाना (१८) गन्धादि युक्ति अर्थात् सुगन्धि लेप (१९) भूषण उक्ति अर्थात् यथास्थान आभूषण पहिनना (२०) इन्द्रजाल (२१) कौचुमाराख्य योग अर्थात् पुरुष को आसक्त करने के लिये कृत्रिम

प्रसाधन भावभंगिमा (२२) हस्तलाघव अर्थात् किसी काम के करने में हाथ की सहज सुहावन गति (२३) विचित्र शाक भक्ष्य योग अर्थात् पाक शास्त्र की निपुणता (२४) पानक रस रागासव योग अर्थात् चटनी, पने और आसव आदि बनाना (२५) सूचीवान कर्म अर्थात् सीना पिरोना (२६) सूत्रक्रीड़ा अर्थात् सुई तागे से कसीदा काढ़ना (२७) प्रहेलिका अर्थात पहेली बुझाना (२८) प्रतिमाला अर्थात तत्काल उपयुक्त उत्तर देने की दक्षता, अंताक्षरी आदि कहना (२९) दुर्वचन अर्थात् वाक्चातुर्य्य (३०) पुस्तक वाचन (३१) नाटकाख्यायिका कथन (३२) समस्या पूर्ति (३३) पट्टिकावेत्र-वाणविकल्प अर्थात् कुर्सी आदि बुनना (३४) तक्षकमणि अथवा तर्कूकर्म अर्थात् एक में से दूसरे को खींचना जिसमें धात्री कर्म आता है। (३५) तक्षण अर्थात् घर की चीज़ों को संवार कर रखना (३६) वास्तु विद्या अर्थात् घर के पदार्थों का संग्रह और उनकी रक्षा (३७) रूप्य तत्व परीक्षा अर्थात् चांदी सोने के खरे और खोटेपन की जानकारी (३८) धातुवाद या वर्तन आदि की धातुओं के गुण अवगुण का ज्ञान (३९) मणिराग ज्ञान अर्थात् मणियों और रत्नों को यथास्थान बैठाकर अधिक शोभित करना (४०) आकर ज्ञान में हीरे आदि की परख की दक्षता होती है (४१) वृक्षायुर्वेद पौधों की साधारण कृषि तथा रोपन वपन आदि का काल-ज्ञान (४२) मेष कुक्कुट, लावक युद्ध विधि—मेढ़ा, मुर्गा, बटेर, तीतर आदि की लड़ाई का ज्ञान (४३) शुकसारिकालापन—तोता मैना पढ़ाना (४४) उत्सादन—हाथपैर आदि दबाना, उंगली चटकाना तथा केशों में खिजाब आदि लगाना। (४५) केश मार्जन—केशों में सुगंधि आदि लगाना (४६) अक्षर मुष्टिका कथन—थोड़े अक्षरों या थोड़े शब्दों में अधिक अर्थ प्रकट करना (४७) म्लेच्छ भाषा-अन्य देशीय भाषाओं का ज्ञान (४८) देश-भाषा—देशी भाषा की प्रवीणता (४९) पुष्प शकटिका—पुष्प को कारण बनाकर पतिको वश में करना या पति के वश में होना (५०) धारणमातृका-धारणा शक्ति प्रबल रखना (५१) यंत्र मातृका-यंत्रों के व्यवहार की दक्षता। (५२) संवाद्य कर्म—मिलकर गीतगान करना (५३) मानस काव्य-मन में सोचे हुए विषय पर काव्य कर लेना (५४) कोष छन्दो विज्ञान—कोष और छन्दों का ज्ञान (५५) क्रिया विकल्प-

सिद्ध किये हुए पदार्थों में विषादि मिश्रण के लक्षणों का ज्ञान (५६) छलित योग-छल की युक्तियों को जानना (५७) वस्तु गोपन (५८) द्यूत- चौसर, गंजीफा, शतरंज तथा अन्य जुआ संबंधी खेलों के दांव पेच समझना। (५९) आकर्ष क्रीड़ा-कसरत कुश्ती आदि के दावपेच जानना तथा नाज़ नखरा और अदा दिखाकर पति को आकृष्ट करना (६०) बाल क्रीड़न—गुड़िया आदि खेलों के द्वारा वास्तविक जीवन का ज्ञान करना। (६१) वैनायकी विद्या—विनय प्रदर्शन, बाजीगरी आदि की सफाई का ज्ञान (६२) बैजयिकी विद्या-विजय प्राप्त करने की दक्षता (६३) व्यायाम (६४) विद्या ज्ञान अर्थात् साधारण चातुर्य (General Knowledge)।

कला-कौशल के प्रकरण में ६४ कलाओं से राजस्थान के सम्बन्ध का पर्याप्त परिचय मिलता है। अधिकांश कलायें शृङ्गार तथा कामसूत्र से सम्बन्धित हैं और राजस्थान में उन्हीं कलाओं का विकसित रूप नहीं देख पड़ता जिसका सबसे बड़ा कारण यही है कि राजस्थान को रण-विद्या और बलिदान से कभी भी इतना अवकाश नहीं रहा कि वह शृङ्गार की ओर झुक सके। वहां के पुरुष को रण-भूमि में जाकर "मारो या मर जाओ" का आदर्श पूरा करना होता था और वहां की नारी को "अस्मत" की रक्षार्थ धधकती हुई चिताओंमें कूदनेके लिये तैयार रहना पड़ता था।

१४ विद्याओं और ६४ कलाओं का साधारण परिचय देने का दूसरा आशय यह है कि सुधार के पीछे अन्धे होकर तथा नैतिकता का असीम अर्थ लगाकर हम अनेक ऐसी बातों के आमूल विनाश पर जोर देने लग जाते हैं जो वास्तव में किसी विद्या-विज्ञान और कला के अङ्ग हुआ करती हैं, अतएव ऐसा न होना चाहिए।

राजस्थानी रीति-रस्मों में, लोक, कुल और वेद तीनों ही प्रकार की रीतियों में तथा कौशल में कला और विद्या से सम्बन्धित अनेक प्रचलन पाये जाते हैं। आवश्यकता इतनी ही है कि उनका परिमार्जन करके सर्वसाधारण को उनके विषय का पुष्ट ज्ञान कराया जाय। समाज के धनीमानी लोग यदि इस विषय की सम्यक् जानकारी प्राप्त कर लें तो वे सहर्ष स्वदेशी कलाकारों और विद्वानों का आदर करेंगे, उन्हें प्रोत्साहन देंगे जिससे राजस्थानी कलाविद् और विद्वान भी आधुनिक पाश्चात्य कलाविदों और विद्वानों की कोटि में उनसे भी उच्च स्थान प्राप्त कर सकेंगे।

परिच्छेद ५

भाषा-साहित्य और काव्य

चाणक्य ने लिखा है—"आचारः कुलमाख्याति, देशमाख्याति भाषणम्"। आशय यह है कि आचरण के द्वारा किसी कुल का भाषण अथवा भाषा से देश का परिचय प्राप्त होता है। भाषा और देश का संबंध अभिन्न है। जिस प्रकार विचार का ही साकार स्वरूप भाषा हुआ करती है, उसी प्रकार देश विशेष के भावों का साकार स्वरूप, अथवा उसका प्रतिबिम्ब होता है उसका साहित्य।

राजस्थान की भाषा के संबंध में ऐतिहासिक तथ्यों का आधार इतना ही है कि प्राकृत भाषा की उत्पत्ति के बाद से देश कालानुसार उच्चारण और लिपि भेद आदि जिस प्रकार पैदा हुए उसी प्रकार राजस्थान देश में जाकर संस्कृत और प्राकृत भाषाओं को उच्चारण-भेद की कुछ विशेषता प्राप्त हुई। लिपि संबंधी कोई भेद या विकार यहां की भाषा में नहीं आया और उसका प्रत्यक्ष कारण यही है कि उत्तर भारत और भारत की केंद्रीय सत्ता से राजस्थान का सीधा संबन्ध सदैव से रहा है तथा वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पाली और प्राकृत आदि सभी भाषाओं के विकास का क्षेत्र उत्तर भारत कन्नोज, इन्द्रप्रस्थ और ब्रह्मावर्त वाले अंचलों में ही रहा है।

राजस्थान की साहित्यिक संस्कृति में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि वहां की संस्कृति वैदिक धर्म से भिन्न नहीं है। संस्कृत के आचार्यों तथा उपनिषद्कारों ने शब्द ब्रह्म की व्याख्या में प्रणव अर्थात् "ॐ" को ही, भाषा, ध्वनि और वेद का सार माना है जिसके अंदर "अक्षराणामकारोऽस्मि" के भगवान कृष्ण के वाक्य का "अ" कार भी सम्मिलित है। राजस्थानीय साहित्यकारों ने कालांतर में जब अपनी

सुविधा के लिये वह लिपि तैयार की जिसमें मात्रायें नहीं लगाई जातीं और जिसे मुड़िया या महाजनी कहते हैं, तो उन्हों ने उसके भी पठन पाठन के समय उसी वैदिक संस्कृति का परिचय दिया है। "बड़े बाबू अजमेर गये, बड़ी बही भेज दो" को "बड़े बाबू आज मर गये, बड़ी बहू भेज दो" जिस भाषा में पढ़ा जा सकता है; खातापत्र में व्यवहृत होने वाली उसी मुड़िया भाषा को आज भी जब कोई गुरु किसी शिष्य को पढ़ाता है तो उसका प्रथम पाठ इस प्रकार होता है :—

"आऊं आऊं चोटियो
माथे मोटियो
हाथ में डांगड़ी
...................।"

अध्यापक "आऊं आऊं चोटियो" के पद से "उ" कार का अक्षर लिखाता है। माथे मोटियो के पद से "उ" कार पर चंद्र बिन्दु रखवाया जाता है तथा "हाथ में डांगड़ी" के द्वारा "उँ" का रूप "ॐ" कार अथवा प्रणव बनवा दिया जाता है।

राजस्थान का इतिहास आर्यगौरव की रक्षाका इतिहास है; हिंदू सभ्यता की रक्षा का घटनापूर्ण इतिहास है। राजस्थानियों की परम्परा इन लाखों करोड़ों घटनाओं के संस्कारों से परिवेष्टित है अतएव राजस्थान की हर एक रीति, हर एक काम और प्रत्येक श्वासोच्छ्वास, साहित्य का मर्म है; एक परमपुनीत काव्य है। राजस्थान की साहित्यिक निधि भी अंधकार में ही छिपी हुई पड़ी है, समाज का धनिक वर्ग उससे उदासीन है। कलकत्ता की "राजस्थान रिसर्च सोसाइटी" ने इस दिशा में क़दम बढ़ाने का कुछ दिनों तक प्रयास किया है, "मारवाड़ी भजन सागर" का संकलन करने में श्री रघुनाथ प्रसाद सिंहानियां का प्रयास सराहनीय है परन्तु केवल इतने शब्दों से ही काम नहीं चलता, ऐसे आदमी जब इस प्रकार के सद्प्रयास में प्रवृत्त होते हैं तो उससे जाति-वर्ग और देश को गर्व होना चाहिए, कम से कम उनको इतना प्रश्रय तो देना ही चाहिए कि वे आर्थिक चिंताओं से मुक्त रहकर अपनी प्रतिभा का निश्चित प्रयोग कर सकें।

हां, हम फिर अपने प्रकृत विषय पर आते हैं तो हम देखते हैं कि राजस्थान की

भाषा हमारे देश की सबसे प्रथम, संस्कृत और प्राकृत की अपभ्रंश भाषा है। "राजस्थानी भाषा" नाम आधुनिक है जिसमें डिंगल, मारवाड़ी, राजपूतानी आदि राजपूताने में बोली जाने वाली सभी भाषायें शामिल हैं।

वस्तुस्थिति तो यह है कि हमारी राष्ट्र भाषा हिंदी का श्री गणेश भी राजस्थानी से ही प्रारंभ होता है। हिंदी की ब्रजभाषा राजस्थानी भाषा से मिलती जुलती है। हिंदी का इतिहास ही राजस्थान के महाकवि चंदवरदाई के "पृथ्वीराज रासो" के डिंगल काव्य से प्रारंभ होता है। 'डिगल' नाम ब्रजभाषा और राजस्थानी में अंतर बताने के ही लिये रखा गया है। आधुनिक समय में बूंदी के चारण मिसर सूर्यमल ने भी "वंश भास्कर" नामक एक महाकाव्य डिंगल में ही लिखा है। महाराज पृथ्वी राज के ही समय के प्राप्त कुछ पत्रों से — जो राजस्थानी भाषा में हैं और जिनका संबंध भी राजस्थान से ही है—हिन्दी का अस्तित्व शुरू होता है। इनमें एक पत्र महाराज पृथ्वीराज की बहिन तथा चित्तौड़ के रावल समर सिंह की पत्नी द्वारा लिखा गया है। दूसरा पत्र मेवाड़ के महाराजाधिराज रावल समर सिंह की एक सनद है जिसमें आचार्य ऋषीकेश को—जिन्हें दहेज में दिल्ली से लाया गया था—मेवाड़ के दरबार में प्रतिष्ठित करने का लिखित अभिवचन है।

राजस्थानी का विकास विक्रम की दसवीं शताब्दी के लगभग हुआ जब कि भारत की राजनीतिक अवस्था में भीषण क्रांति मची हुई थी। अनेक सत्तायें बन बिगड़ रही थीं। राजस्थान में इसी समय से वीर रस प्रधान काव्य भी रचे जाने लगे और इन रचनाओं तथा जागरण का साराश्रेय वहां के चारणों, भाटों और बारहठों को ही है।

ढोला-मरवण काव्य

"पूगलगढ़ की पदमणी" नाम से राजस्थान में जो कहानी प्रचलित है, उस से राजस्थानी साहित्य के सौष्ठव का बहुत बड़ा संबंध है। राजस्थान के उत्तरी भाग में टीबों के बीच में पूंगल स्थित है। आज कल इसका राजनीतिक महत्व बीकानेर में मिल गया है। आज से एक हजार वर्ष पूर्व पूगलगढ़ का स्वतन्त्र अस्तित्व था जिस की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। इस समय इस राज्य का राज

पूंगलराय था। इसी पूंगलराय की अनिंद्य सुंदरी पुत्री का नाम था मरवण, जिसका विवाह नरवल के राजा नल के पुत्र "ढोले" के साथ हुआ था। ढोले और मरवण की कथा राजस्थान-वासियों के लिये इतनी प्रिय है कि उस पर कई एक काव्य ग्रंथ बन चुके हैं। चित्र-कला द्वारा भी इस कथा का चित्रण बहुत विशाल हो चुका है और होता जा रहा है। घर की दीवारों तक में "ढोले और मरवण" के कथा चित्र अंकित किये जाते हैं।

इस प्रेम कथा का जो अभिनय "ख्याल" (गेय पद्युक्त कथोपकथन वाला सीधा सादा नाटक) के द्वारा किया जाता है उससे सर्वसाधारण बहुत ज्यादा प्रभावित होते हैं।

"ढोला मारू रा दूहा" नामक प्राचीन काव्य को नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने कुशल विद्वानों द्वारा संशोधित कराकर प्रकाशित कराया है। यह काव्यरस का भंडार है। मरवण के चित्रण में इस काव्य-ग्रंथ के कुछ अंश इस प्रकार हैं :—

"गति गंगा मति सरसती, सीता सील सुभाइ।
महिला सरहर मारुई, अवर न दूजी काइ॥"

मरवण जाति में गंगा, बुद्धि में सरस्वती, और शील स्वभाव में सीता है। महिलाओं में उसकी समता करने वाली कोई नहीं है।

"नमणी खमणो बहुगुणी, सुकोमली जु सुकच्छ।
गोरी गंगानीर ज्यूं, मन गरवी तन अच्छ॥"

वह विनयशीला, क्षमाशीला, अनेक गुणों वाली, सुकोमल, सुन्दर कक्ष वाली, गंगाजल के सदृश गौरवर्ण, और सुंदर शरीरवाली है।

'रूप अनूपम मारवी, सुगुणी नयन सुचंग।
साधण इणपरि राखिजइ, जिय सिव मस्तक-गंग॥"

मरवण रूप में अनुपम और सदगुणों वाली है, उसके नयन अत्यंत सुंदर हैं। उस प्रियतमा को वैसे ही रखा जाना चाहिये जिस प्रकार शिवजी अपने मस्तक में गंगा जी को रखते हैं।

"मारू देस उपन्नियां, तांहका दन्त सुसेत।
कूंभ बचां गोरंगियां, खंजर जेहां नेत॥"

जिन्होंने मारू देश में जन्म लिया है, उनके दांत अत्यन्त उज्ज्वल होते हैं, वे कुंभ कलभों की भांति गौरांगिनी होती हैं और उनके नेत्र खंजन के से होते हैं।

इस प्रकार मरवण के सौंदर्य की स्वाभाविकता, पवित्रता और उसके महत्व का वर्णन पाठक के हृदय पर गहरी छाप अंकित करता है और एक परम पुनीत आदर्श का भाव जाग्रत करता है। "मेड़तणी राणी" के द्वारा जिस प्रकार "मीरा" का नाम धन्य हुआ, उसी प्रकार "पूंगलगढ़ की पदमणी" के द्वारा "मरवण" का नाम धन्य हुआ।

चारण गीत

राजस्थानी साहित्य का सब से बड़ा और महत्वपूर्ण अंग चारण-गीत अथवा चारणों का सिंहनाद है। चारण शक्ति और सरस्वती दोनों के उपासक थे। वे सत्य के लिये मर मिटने की उत्कण्ठा रखते थे। वे वीर थे और वीर निर्माता थे। उनके दो शब्दों में वह ताक़त थी कि मुर्दे में भी जान आ जाती थी। शहीदों के जीवन उनके गेय इतिहास थे। इस प्रकार के चारणों के ज्वलंत काव्य का महत्व असाधारण है। इनकी महत्ता के साथ साथ इनकी संख्या भी अपरिमेय है। राजस्थान में चारणों के अगणित गांव हैं। उन सब चारण-कुलों में पूर्वजों की संपत्ति पुराने बस्तों में लिपटी हुई, जन-साधारण की दृष्टि से छिपी हुई पड़ी है। चारणों के गीत में एक ऐसी बिजली है जिसने राजस्थान का जीवन-मय इतिहास तैयार करवा दिया है। आज कल की चारण काव्य की शिथिलता का कारण यह है कि चारणों की सरस्वती की ओर से राजपूतों ने अपना ध्यान हटा लिया है।

एकवार कुछेक राजस्थानी सज्जनों ने शान्तिनिकेतन में कवि सम्राट श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर को राजस्थान के चारण गीत सुनाये थे। महाकवि उन गीतों की महत्ता पर मुग्ध हो गये थे और उन्होंने कहा था कि इन गीतों को प्रकाशित कराना चाहिए क्योंकि इनसे संसार का पूरा पूरा उपकार हो सकता है। उन्होंने यह भी इच्छा प्रकट की थी कि यदि हो सका तो उनका प्रकाशन विश्व-भारती से ही कराया जायगा। इसी प्रकार महामना मालवीय जी ने राजस्थानी गीतों की महत्ता को परमोपयोगी बतलाया था। मालवीय जी ने यहां तक कहा है कि इस साहित्य को हमारे विश्वविद्यालयों के छात्रों को पढ़ाया जाना चाहिये।

भाषा विज्ञान के अनुसार राजस्थानी भाषा संस्कृत से उत्पन्न आर्य भाषाओं की श्रेणी में आती है। यह भाषा पश्चिमी हिन्दी का सबसे बड़ा विभाग है जिसे लगभग ५ करोड़ आदमी बोलते हैं। इस भाषा का विकास काल ३ भागों में बाँटा जा सकता है :—

(१) प्राचीन राजस्थानी—विक्रम की १६ वीं शताब्दी तक।

(२) माध्यमिक राजस्थानी—विक्रमीय १९ वीं शताब्दी तक।

(३) आधुनिक राजस्थानी—१९ वीं शताब्दी विक्रमीय से अब तक।

राजस्थानी भाषा की ५ प्रमुख शाखायें निम्न प्रकार हैं :—

(१) मारवाड़ी—राजस्थानी भाषा की यह शाखा सबसे बड़ी है जो पश्चिमोत्तर, दक्षिण तथा मध्य राजस्थान में सर्वत्र व्यवहृत है। इसमें साहित्य समृद्ध १८ उपशाखायें हैं।

(२) जयपुरी—यह जयपुर, लावा, किशनगढ़, झालावाड़ और टोंक के कुछ भागों में बोली जाती है। इसमें भी अच्छा साहित्य वर्तमान है और वर्तमान राजस्थानी का प्रायः समस्त गद्य-साहित्य इसीमें है। इसकी कुल ९ उपशाखायें हैं।

(३) मेवाती—यह अलवर, भरतपुर के पश्चिमोत्तर प्रदेश में और पंजाव के दक्षिण-पूर्व में गुड़गाँव और हिसार आदि जिलों में बोली जाती है। इसका साहित्यिक भण्डार अज्ञात है। इसका विस्तार लगभग ५ उपशाखाओं में है।

(४) मालवी—यह दक्षिण राजस्थान एवं मालवा प्रान्त की बोली है। मालवी और सोंडवी नामकी इसकी केवल दो उपशाखायें हैं।

(५) नीमाड़ी—मध्यभारत के नीमाड़ और भोपवार आदि जिलों में ही यह राजस्थानी भाषा प्रचलित है। इसके व्यवहार करनेवालों की संख्या भी काफी है।

लिपियाँ

राजस्थानी भाषा मुख्यतया ३ लिपियों में लिखी जाती है :—

(१) महाजनी—इसे व्यापारी लोग काम में लाते हैं, इसका दूसरा नाम "मुड़िया," "वाणीका" या "वाणियावाटी" भी है। यह भाषा "शार्ट हैण्ड" का भी काम देती है। इसमें मात्रायें तथा संयुक्ताक्षर नहीं होते।

(२) कामदारी—यह सरकारी दफ्तरों में व्यवहृत होती है।

(३) शास्त्री—यह देवनागरी लिपि का राजस्थानी रूप है। यह साहित्य में प्रयुक्त होती है।

संस्कृत, प्राकृत और पाली के बाद अपभ्रंशभाषा के नागर उपनागर और व्राचड़ नामक ३ उपयोग प्रचलित हुएथे जिनमें नागर उपयोग से ही राजस्थानी का विकास हुआ था। राजस्थान की अन्य सब भाषाओं से अधिक संपत्तिशाली डिंगल-भाषा ही है। राजस्थानी गौरव की साहित्यिक निधि इसी भाषामें है। उसके इतिहास को ३ प्रमुख कालों में बांटा जा सकता है। पहला आरंभ काल है जो विक्रमीय संवत् १००० से १४००तक, दूसरा मध्यकाल संवत् १४०० से १८०० तक तथा उत्तर काल संवत् १८०० से १९७५ तक है। वर्तमान काल के राजस्थानी कवि और साहित्यिकों ने राष्ट्रभाषा उर्दू अंगरेज़ी मिश्रित हिन्दी की ही सेवा स्वीकार की है।

आरम्भ काल के प्रमुख कवियों में दलपतविजय, साइंदान, नरपतिनाल्ह, चंद-वरदाई, जल्हन तथा नल्लसिंह भाट के नाम आते हैं।

मध्यकाल डिंगल साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है, इस काल में डिंगल भाषा पूर्ण विकास को प्राप्त हुई। काव्य के अतिरिक्त गद्य में भी इस काल में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। मीरावाई, वादर, श्रीधर, शिवदास, सूजो, पृथ्वीराज, ईस्वरदास, दयालदास, जग्गाजी, बीरभाणु, हरिदास और करणीदान इस काल के प्रमुख कवि माने जाते हैं।

उत्तर काल में भाषा तथा उसके विषय के क्षेत्र में बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस काल के लेखकों और कवियों में महाराजा मानसिंह, बाकीदास, कृपाराम, सूर्यमल, गणेशपुरी, मुरारिदान, अमरदान, बालावख्श के नाम प्रसिद्ध हैं। जयपुरी में दादू-दयाल और उनके शिष्यों की वाणियाँ भी इसी काल में रची गईं।

राजस्थानी भाषा के अनुसंधान में डा० ग्रियर्सन साहब का परिश्रम भी उसी प्रकार स्तुत्य है जिस प्रकार राजस्थानी इतिहास के अनुसंधान में कर्नल जेम्स टाड का परिश्रम है। डा० ग्रियर्सन साहब ने राजस्थान की विभिन्न भाषाओं के जो उदाहरण संकलित किये हैं उनका आंशिक परिचय यहां दिया जाता है:—

ढूंढाड़ी

"एक जणां कें दो टाबरा हा। बां-में-सूं छोटक्ये आपका बापनें कयो कें बाबा-जो मारे पांतीं में आवें जको माल मनें द्यो। जब्यां बीं आपकी घर विकरी वां नैं बांट दीनी। थोड़ा सा दिनां पछें छोटक्यो डाबड़ो आपकी सगली पूंजी भेली कर परदेश गयो। बठें आपकी सारी पूंजी कुफण्डा में उड़ा दी। सगली निबड़ियां पछें बीं देशमें जबरो काल पड़ियो। तो बो कसालो भुगतवा लाग्यो। पछें बीं देश का रैंबा वाला कने रयो। बीं आपका खेतां में सूरां की डार चरावा मेल्यो। तो बीं सूराके चराबा को खाखलो छो जी सूं आप को पेट भरबा को मतो कर्यो। पण खाखलो ही कोई इ-नें दियो कोनी।"

गोरावाटी (अजमेर)

इस भाषा के उदाहरण में ग्रियर्सन साहब को केवल एक गीत ही मिल सका है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है।

"अमलांमें आछा लागो म्हारा राज। पीवो नी दारूड़ी॥
सुरज थानैं पूजस्यां जी, भर मोत्यां रो थाल।
घड़ेक मोड़ा उगजो जी, पिया जी म्हारे पास॥
पीवो नी दारूड़ी॥
अमलां में आछा लागो म्हारो राज। पीवो नी दारूड़ी॥
जाये दासी बाग में और सुण राजनरी बात।
कदेक महल पधारसी तो मतवालो घणराज॥
पीवो नी दारूड़ी"

..................................।"

मेवाड़ी (उदयपुर)

"कुणी मनख के दोय बेटा हा। बाँ-माँ-हूं ल्होड़क्यो आप का नाम ने कह्यो हे बाप पूंजी माँ हूं जो म्हारी पांती होवै म्हने द्यो। जद वाँ वाँ ने आप की पूंजी बाँट दी दी। थोड़ा दन नहीं हुआ हा कै ल्होड़क्यो बेटो सगलो धन भेलो कर हर परदेश परो गयो अर उठै लुचापण माँ दन गमावताँ हुआँ आपको सगलो धन उड़ाय दी दो। जद ऊं सगलो धन उड़ा चुक्यो तदवीं देस माँ भारी काल पड़्यो। हर ऊ टोटायलो हो गयो। हर ऊ जाय नै बा देस का रहबा वालाँ माँ हूं एक कै नखै रहबा लाग्यो। वाँ वाँने आप का खेत माँ सूर चराबाने मेल्यो। हर ऊ वाँ छूंतरा हूं ज्याँने सूर खावा हा आपको पेट बाने मेल्यो। हर ऊ वाँ छूंतरा हूं ज्याँ नै सूर खावा हा आप को पेट भरबो चाहो हो।........."

मेवाड़ी (अजमेर)

"रस्यो राणे राव हिंदुपत रस्यो राणे राव।
म्हारे बस्यो हिवड़ा मांय, बिलालो रस्यो राणे राव॥
जोख करै जगमंद्र पधारै, नोख बिराजै नाव।
सोलाँ उमरावां साथ हिन्दुपत, रस्यो राणे राव॥
म्हारे बस्यो हिवड़ा मांय, बिलालो रस्यो राणे राव।
निछरावल प्रथीनाथ री, क्रोड़ मोहर कुरबान॥
आया रा करूँ ओछावड़ा, पल पल वारूं प्राण।
बिलालो रस्यो राणे राव, हिन्दुपत रस्यो राणे राव॥
म्हारे बस्यो हिवड़ा मांय, बिलालो रस्यो राणे राव।"

सिरोही

"एक संदणपूर नाँम सरे तु। वण में एक धनवालो हाऊकार तो वणेरी बु हाई ती। वण बुने होनार के वा लागो के थे दुरमोती पेरिआँ नी जको दुरमोती मँग-वाने परे। होनार तो अतरूं केने परो गो। जरिं पछे हाउकार गरे आयो। जरिं

हाउकार रे बुए कीऊं के मने दुरमोती पेराबो। जरिं वणे हाउकारे कीऊं के मूं परदेश में लेवा जाऊं हूं ने लावे ने पेराबूं। तरिं वो हाउकार अतरूं के ने देसावर गो। जातां जातां अल्गो दरिआ कनारे गो। जायने वणे दरिआ ऊपर तीन धरणां की दां। तरिं बणने सोइणु (सुपना) आयुं के अठे दुरमोती नीं हे। जरिं वौ उठे ने बीर बुओ ने पासो आवतो तो। जतरे मारग में एक महादेव रूं देरूं (मन्दिर) देखिउं। जरिं वो हाउकार वण देरा में जायने बैठो। जतरा में महादेव जी रो पूजारी एक बांमण आयो ने बणे बांमणे पूसियुं के थूं कूण हे। जरिं वो केवा लागो के मूं हाउकार हूं तरिं बण बांमणे कीयूं के थूं क्यूं आयो जरिं वो हाउकार बोलिओ के दुरमोती लेवा हारू आयो हूं। ....।"

मारवाड़ी (सैथको)

"एक राजा उजेणी नगरी रो धणी थो। वो राजा रातरा बजार में गीओने बदाएत आवती थी। वणने राजाए पुचीयु के थू कुण है। अवणारे कीयु के मु बदायत हुं (बे माता) एक भरांमण रे आँट लखवारे वास्ते जाऊ-चु। राजा ए पुचीउ के सु आँट लखिओ। ते बदायत कीयु के जेवा आँट, लखीस तेवा बलतां के ही जाउ। वराएताए वो आँट लखिओ के ऐ भरांमण रे नव में मेहीने एक दीकरो आवे। दीकरो जनम तो शंवारे तो बाप मर जाए। वो दीकरो परणवारे वास्ते जाए तो चवरीआंमे बागमारे। एबु केही ने बदाएत राजा पागती थी गरे गई। ....।"

थली (जैसलमेर)

"आई आई ढोला बणजारे री पोठ।
तमाकू लायो रे मांजा गाढ़ा मारु सोरठी॥
रे म्हारा राज॥
आण उतारी बडले रे हेठ।
बडलो छायो रे मांजा गाढ़ा मारु जाणे मोतिए।
रे म्हारा राज॥

लेशे लेशे सिर दारां रो साथ ।
कायेक लेशे गाढ़े मारु रा बामण बाणिया ॥
रे म्हांरा राज ॥
कहे रे बाणीड़ा तमाकू रो मोल ।
कयेरे पारे मांजा गाढ़ा मारु तमाकू चोखी ॥
रे म्हांरा राज ॥
रुपये री दीनी अध टांक रे ।
म्होर री दीनी म्हांरी साची सुन्दर पा-भरी ॥
रे म्हांरा राज ॥
...............।"

इसी प्रकार डा० ग्रियर्सन महोदय ने शेखावाटी वागड़ी (बीकानेर) तोरावाटी (जयपुर), कठैरा (जयपुर), किशनगड़ी (अजमेर), हाड़ोती (कोटा), सौंदवारी (झालावाड़) आदि की भाषाओं के अवतरण संकलित किये हैं । डाक्टर साहब के अवतरणों के अतिरिक्त जोधपुर की मारवाड़ी तथा हरियाणा (रोहतकी या भिवाणी) के दो अवतरण यहां दिये जाते हैं :—

जोधपुर मारवाड़ी

एक जणा रे दो टावर हा । उण में सूं छोटक्ये आपरे बाप न कह्यो के बाबा जी म्हारे पांती में आवे जी को माल म्हने दे द्यौ । जरे वो आपरी बिकरी वां नें बांट दीवी । थोड़ा दिन पछे छोटोक्यों आप री सारी पूंजी भेली कर परदेश गयो परो । उठे आप री सारीं पूंजी कुफण्डा में उड़ा दिवी । सारी निवड़ियां पछे उण देश में जबरी अकाल पडियो तो वो कसालो भुगतवा लाग्यो । पछे वो उण देशरे रेवाणावाला कने रयो । वो आपरे खेतां में सूरां की डार चरावण मेल्यो ।"

हरियाणा (भिवानी)

"एक जणे के दो बेटे थे । छोटला एक दिन अपण बाप से बोल्या, क, बापू, ईब हम न न्यारा कर दे—और जो मेरी पाती में आवे सो मने दे दे । यद बाप न अपनी पूंजी दोनुआं में बांद दी । थोड़े दिना पिछे लोड़िया, अपना न्यारा घर बसा के रहन लाग्या । जब स भ्याणी के दो टुक होगे और उस लोड़िये का बसायड़ा लोहड़ और बड़लै का हाल्ल नाम पड़ ग्या ।"

राजस्थानी भाषा का गद्य साहित्य भी शुरू से ही लिखा जाता रहा है। माध्यमिक काल में तो गद्य साहित्य ने बड़ी उन्नति की। प्रत्येक राज्य अपनी-अपनी ख्यातें लिखवाया करता था जो गद्य में ही हुआ करती थीं। "मूता नैणसी" की लिखी हुई राजस्थानी की एक प्रसिद्ध ख्यात है। राजस्थानी का कथा साहित्य भी अगाध है। राजस्थान में कहानियों की हजारों पुस्तकें पाई जायंगी।

साहित्यकी दृष्टि से राजस्थानी के दोही मुख्य भेद हैं। १ प्रधान साहित्यिक भाषा जिसे डिंगल कहते हैं और दूसरी बोलचाल की भाषा।

छन्द ग्रन्थ—डिंगल भाषा का प्राचीन कोष तो नजर नहीं आता पर छन्द ग्रन्थ अभी तक ३ उपलब्ध हो चुके हैं। १ रघुनाथ रूपक, २ लखपत पिंगल, ३ रघुवर यश प्रकाश।

ऐतिहासिक काव्य—पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो, अजीतसिंह चरित्र, राजरूपक राव जैतसी २३ छन्द; सुजानसिंह रासो, सूरज प्रकाश, बिड़द सिंगार, गजसिंह रूपक, भीम विलास, जसरतनाकर, रतन विलास, राणा रासो, रणबल्मछद, रतन रूपक आदि।

भक्ति काव्य—कृष्ण रुक्मिणी चरित्र, रामरासो, नरसीमाहरो, रुक्मिणी मंगल, अवतार चरित्र आदि।

प्रेम काव्य—ढोला मारूरी दूहा, माधवानल चौपई, सदैवच्छ चौपई आदि।

वर्षा विज्ञान के काव्य—भड्डली, सवत्सार।

राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा डिंगल भाषा की व्याकरण आदि के विषय में 'डिंगल में वीररस' नामक प० मेनारिया द्वारा सपादित ग्रन्थ में बहुत कुछ वणन एकत्र किया गया है।

बचनिकाएं—गद्य मिश्रित पद्य बाहुल्य कृतिको वचनिका कहते हैं। इसके गद्य में भी वाक्यों में तुक मिला हुआ रहता है। ऐसी वचनिकायें खींची अचलदास की (सं० १४७० के लगभग की रचित) और रतन महेसदा सोत की ये २ उपलब्ध हैं। बचनिका के गद्य की तरह गद्य-मय कई फुटकर जैन रचनायें भी मिलती हैं। फुटकर काव्य:—ऐतिहासिक गीत साहित्य राजस्थानी भाषा का बड़ा गौरवशाली है

जिन महान व्यक्तियों का इतिहास में कहीं नामोनिशान नहीं मिलता, ऐसे ज्योतिधर पुरुषों के सैकड़ों गीत मिलते हैं। इन गीतों में उनका यश वर्णन बहुत ही मनोहर है। इनमें कईएक गीतों का प्रकाशन हो चुका है। संग्रह करने पर उनकी संख्या हजारों पर पहुंचेगी तथा उनके प्रकाशन से कतिपय नवीन ऐतिहासिक तथ्य प्रकट होंगे। डूंगर जी जवारजी के गीत, हेडाऊ महरी के गीत तो काफी लोक-प्रसिद्ध गीत हैं। अमर सिह जी के श्लोक, अजमल, कुशलसिह श्लोक और देवियों के छंद आदि विविध फुटकर रचनायें महत्वपूर्ण हैं।

दोहा साहित्य—राजस्थानी भाषा का सब से अधिक महत्त्वपूर्ण साहित्य है। नपे तुले शब्दों में चुभते हुए ढङ्ग से दोहों में जो बातें पाई जाती हैं वे हृदय को बहु त जल्दी प्रभावित कर देती हैं। अन्य भाषाओं के दोहों से राजस्थानी दोहों में छन्द शास्त्र की दृष्ठि से भी अनेक रोचक विशेषतायें हैं। दोहे सभी विषयों के हैं। ये जनसाधारण के हृदय-हार हो रहे हैं और लोकोक्ति के समान बात बात में उनका प्रयोग होता है।

राजस्थानी दोहों की संख्या हजारों के ऊपर है। दो तीन हजार दोहों का संग्रह स्वामी नरोत्तमदास जी ने किया है। जिनमें केवल "राजस्थानरादूहा" का एक भाग प्रकाशित हुआ है। ऐसे जितने भाग प्रकाशित होंगे, राजस्थानी साहित्य का महत्व उतना ही अधिक प्रकाश में आयेगा।

जैन कवियों के रचित दोहे भी सैकड़ों हैं, जिनमें उदयराज नामक एक ही कवि के ४०० से अधिक दोहे उपलब्ध हैं। जयराज, नारण, राज आदि के दोहे भी बहुत सुन्दर हैं। जैन कवियों के रचित सवैया, छप्पय कुण्डलिया, और बावनी भी बहुत अधिक मिलती हैं। उनमें भी नीति आदि विषय कूट कूट कर भरे हैं।

मनोरञ्जन एवं बुद्धिवर्द्धक फुटकर साहित्य आड़ी पहेलियां आदि मनोरंजन साहित्य का राजस्थानी भाषा में अच्छा परिमाण है। गोधारासो, जतीजग, पशुओं की लड़ाई आदि के कई एक छन्द गीतादि फुटकर पद्य मिलते हैं जो बहुत ही मनोरंजक हैं। राजस्थानी भाषा के लिये यह गौरव की बात है कि हिन्दीके

वीरगाथा काल विभाग की प्रायः सभी रचनायें इसी भाषा की हैं। इसी नाते से राजस्थानी प्राचीन काल हिन्दी साहित्य का जन्मदाता माना गया है।

जैन राजस्थानी साहित्य—राजस्थानी साहित्य का अधिकांश जैन-साहित्य बोल-चाल की भाषा में है और यह साहित्य भी बहुत विशाल है। सैकड़ों रास चौपाइयां, बोल-चाल की सीधी एवं सरल भाषा में बनाई हुई जैन रचनायें उपलब्ध हैं। कई जैन कवि तो बहुत प्रतिभा-शाली हुए हैं जिनके रचित बहुत से राजस्थानी ग्रन्थ मिलते हैं। कई कवियों ने तो अपनी सारी रचनायें ही मारवाड़ी भाषा में की हैं। जैन कवियों का गुजरात में परिभ्रमण होने के कारण कई कृतियों में गुजराती भाषा का भी सम्मिश्रण नजर आता है। राजस्थानी भाषा के जैन कवियों के सम्बन्ध में अभीतक बहुत ही कम लिखा गया है। जैन राजस्थानी साहित्य में दोहे, छप्पय, सवैया बावनियां आदि सार्वजनिक साहित्य भी काफी है। रास चौपाई आदि आदि रचनायें भी कथा चरित्र रूप होने से सार्वजनिक हैं।

बातें या पर्वों की कहानियाँ—ये हजारों की संख्या में विद्यमान हैं। इस साहित्य का बहुत बड़ा भाग अब भी मौखिक रूप से बूढ़ी ब्राह्मणियों तथा चारण भाट आदि लोगों की जबानों पर है। इनमें उपासना, भक्ति, इतिहास, नीति, प्रेम आदि बिविध विषयों की बातें हैं। इनके मौखिक रूप से कहने का ढंग हमारी वृद्धा गृहदेवियों का बहुत मनोहर है। इनके सुनने या पढ़ने से काफी मनोरंजन होता है। धर्म, नीति, वीरता आदि सद्‌गुणों की महान शिक्षा मिलती है।

ख्यातें—इनका उद्देश्य इतिवृत्त लेख है जिसे आजकल इतिहास कहते हैं। राजस्थान के इतिहास में इनका बहुत भारी महत्व है। १७ वीं शताब्दी से राजा लोग अपने अपने वंशों का इतिहास लिखाने लगे। १८ वीं शताब्दी में इतिहास संग्रह का सबसे महत्वपूर्ण कार्य मुहरपोत नैणसी ने किया। अन्य ख्यातें तो एक-एक राजवंश से ही सम्बन्ध रखती हैं, पर इनकी बहुत अधिक व्यापकता है। राजस्थान के प्रायः सभी प्रसिद्ध राज्य-घरानों का यावत् राजाओं के अतिरिक्त अन्य साधारण व्यक्तियों का भी इसमें इतिहास संग्रहीत किया जाता है। नैणसी की ख्यात

उपयोगिता में अपनी सानी नहीं रखती। इसका हिन्दी अनुवाद भी नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया है।

इसके बाद—दयालदास की ख्याति का नम्बर आता है। इसमें बीकानेर के राजाओं के वंश का इतिहास सम्रहीत है। जैन विद्वानों के लिखित राठौर वंशावली, जैसलमेर वंशावली, अमरसिंह आदि भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। ख्यातों का महत्व भाषा की दृष्टि से भी बहुत अधिक है। नैणसी की ख्यातों की भाषा बड़ी प्रौढ़ एवं प्रांजल है। राजाओं के अतिरिक्त प्रत्येक मारवाड़ी वंश की एक एक ख्यात होती है जिसे पीढ़ी कहते हैं और जो लड़का लड़की के विवाह के समय अनिवार्यतः पढ़ी जाती है।

अनूदित गद्य साहित्य—भागवत के कई अनुवाद हैं, गीता आदि धार्मिक एवं सिंहासनबत्तीसी, बैताल पचीसी ; दंपति विनोद आदि लोकप्रिय अनेक ग्रन्थों का राजस्थानी में अनुवाद मिलता है। जैन विद्वानों ने भी भर्तृहरि शतक, कृष्ण-रुक्मिणी बेलि आदि जैनेतर ग्रन्थों एवं अनेक जैन ग्रन्थों का अनुवाद किया है जो सर्वसाधारण के समझने के लिये उपयोगी हैं।

इस दृष्टि से राजस्थानी साहित्य वीर और भक्ति रस प्रधान है। साधारण दोहों से लगाकर काव्यों तक में वीर और भक्ति-रस कूट कूट कर भरा है। वीर-साहित्य अपने ढङ्ग का निराला एवं संसार भर में बेजोड़ है। अन्य रस के साहित्य का भी राजस्थानी भाषा में अभाव नहीं है।

मौखिक साहित्य—ऊपर केवल लिखित रूप में उपलब्ध साहित्य का ही परिचय दिया गया है, पर उनके अतिरिक्त मौखिक रूप से उपलब्ध राजस्थानी साहित्य की भी कमी नहीं है। यह साहित्य बहुत लोकप्रिय है, लोकगीत उनमें से मुख्य हैं। लोकगीतों के भाव बहुत ही कोमल करुण और वात्सल्य वासित हैं। इनके अनुपम रस का आनन्द तो सुनने या पढ़ने पर ही विदित हो सकता है। सौभाग्यवश इनके तीन चार ग्रन्थ प्रकाशित भी हो गये हैं।

पहले कहा जा चुका है कि बातों का भी बहुत बड़ा भाग मौखिक रूप से पड़ा है, पर इन मौखिक बातों के संग्रह का अभी कोई प्रयत्न नहीं देखा गया है।

इसके अतिरिक्त और भी दोहा छन्दादि अनेक तत्व स्थान स्थान पर मौखिक रूप से मिलते हैं।

कहावतें एवं मुहावरों की संख्या भी बहुत विशाल है। इस दिशा में प्रयत्न हो रहा है। इस विविध विषयक मौखिक साहित्य को संग्रह करने की बड़ी आवश्यकता है।

उन्नति का सरल मार्ग

काव्य साहित्य का सार भाग है। कवि त्रिकालदर्शी हुआ करते हैं। उनका व्यापार परोपकार तथा गिरे हुए को उठाना ही हुआ करता है। कवि अपना काव्य दूसरों के लिये ही रचता है। कवि की रचना की एक पंक्ति में हज़ारों वक्ताओं के हज़ारों वर्षों के प्रयत्न का प्रभाव रह सकता है। कविता सृष्टि का जीवन-प्राण है ; कवि की महत्ता में :—

"जानाते यन्न चन्द्रार्कों जानन्ते यन्न योगिनः।
जानीते यन्न भर्गोऽपि तज्जानाति कविः स्वयम्॥

तथा :—

धन्यास्ते सुकृतिनः रस सिद्धाः कवीश्वराः
नास्ति येषां यशः काये जरा मरणजं भयम्।"

जैसी सूक्तियाँ महापुरुषों द्वारा कही जा चुकी हैं। चाणक्य ने भी कहा है कि "कवयः किं न पश्यन्ति"। अपने कवियों की वाणी से जो देश या जाति जितनी अधिक परिचित रहती है, उतना ही अधिक वह सजीव हुआ करती है इसलिये यदि कोई अधः पतित समाज उत्थान चाहता है, प्रगति और प्राण चाहता है तो उसके लिये सबसे सरल मार्ग यही है कि वह अपने कवियों की अमर वाणी के संपर्क में आवे, उन्हें पढ़े, उनमें अपनी रुचि पैदा करे और उनसे अनुप्राणित हो। हमारे देश में ऐसे आदमी हज़ारों की संख्या में आज भी पाये जाते हैं जिनको स्कूली ज्ञान कुछ भी नहीं है, यहां तक कि वे अपना नाम भी नहीं लिख सकते फिर भी अपने कवियों के हज़ारों छन्द उन्हें कण्ठस्थ हैं और उन्हीं छन्दों की बदौलत वे नीति, समाज-शास्त्र और लोकाचार के अपने ज्ञान से बड़े बड़े पढ़े

लिये आदमियों से भीषण टक्कर ले सकते हैं ; उनके अन्दर जागरूकता भी इतनी होती है कि उन्हें अपमानित या लांछित करने की हिम्मत भी किसी को नहीं हो सकती। ऐसा ही चमत्कार होता है कवियों की वाणी में।

हमारे लिये अपनी सामाजिक अवस्था को सुधारने का भी सबसे सीधा और सरल मार्ग यही है कि हम अपने कवियों की रचनाओं के प्रति आकृष्ट हों, उनमें हमें अपनी इच्छानुकूल प्रत्येक विषय ऐसा मिलेगा जो रोचक भी होगा और वह हमें प्रगति और शक्ति की प्रेरणा भी देगा। हर एक बालक वृद्ध, युवा, नर-नारी का पहला कर्तव्य यही होना चाहिए कि वह प्राचीन और आधुनिक कवियों की रचनाओं को ढूंढ़े, उन्हें सुने, सुनावे, पढ़े और पढ़ावे। अपने सामाजिक काव्य भडार को प्रकाश और प्रचार में लाकर हम देखेंगे कि हमारे अंदर अनेकों ऐसे नैतिक गुण अकस्मात् ही आ गये हैं, अन्य उपायों से जिनके आने में बहुत समय लग सकता है।

इस प्रसंग में राजस्थानी कवि तथा उनकी कविताओं का कुछ परिचय यहां दिया जायगा।

चंद बरदाई

हिन्दी साहित्य में 'चन्द' को महाकवि का स्थान प्राप्त है, साथ ही वे हिन्दी के आदि कवि माने जाते हैं। राजस्थानी में भी उनका वही स्थान आता है। आप भारतवर्ष के अंतिम हिंदू सम्राट महाराज पृथ्वीराज चौहान के राजकवि, मित्र, और सामन्त थे। आपके पूर्वज पंजाब के रहने वाले थे जिनकी यजमानी अजमेर के चौहानों के यहाँ थी। यह भट्ट जाति के जगात (वर्तमान राव) नामक गोत्र के थे। जन्म संवत् १२०५ और मृत्यु संवत् १२४८ बि०। महाराज पृथ्वीराज का जन्म और मरण इनके साथ ही बताया जाता है। आप व्याकरण, काव्य, साहित्य, ज्योतिष, वैद्यक, मंत्रशास्त्र, पुराण, नाटक और गान आदि विद्याओं के धुरंधर विद्वान थे और जालंधरी या जालपा देवी के उपासक थे। ऐसे साहित्यावतार महाकवि के घटनापूर्ण जीवन के विषय में बहुत कुछ लिखा जा सकता है परन्तु यहां उनके महाकाव्य "रासो" के कुछ छंद ही देकर हम अपना प्रकरण आगे बढ़ायेंगे।

पद्मावती समय

दूहा—पूरब दिसि गढ़ गढ़न पति, समुद शिखर अति दुग्ग।
तहं सु विजय सुरराज पति, जादू कुलह अभग्ग॥
हसम हयग्गय देस अति, पति सायर म्रज्जाद।
पबल भूप सेवहिं सकल, धुनि निसान बहु साद॥

कवित्त—धुनि निसान बहुसाद, नाद सुर पञ्च बजत दिन।
दस हजार हय चढ़त, हेम नग जटित साज तिन॥
गज असंख गज पतिय, मुहर सेना तिय संखह।
इन नायक कर धरी पिनाक घर भर रज रख्खह॥
दस पुत्र-पुत्रिय एक सम, रथ सुरङ्ग उम्मर डमर।
भंडार लछिय अगनित पदम, सो पदम सेन कूंवर सुघर॥

महाकवि चंद की भुजंग प्रयात छंद का एक नमूना देखिये :—

गही तेग चहवान, हिंदवान रानं,
गजं जूथ परि कोप केहरि समानं।
करे रुण्ड-मुण्डं करी कुम्भ फारे,
वरं सूर सामन्त हुकि गर्ज भारे॥

शहाबुद्दीन गोरी की कैद में नेत्र विहीन महाराज पृथ्वीराज को शब्दवेधी वाण छोड़ने के लिये उनके अनन्यसखा महाकवि चंद ने यह छप्पय पढ़ कर सुनाया था :—

"एक बान चहुआन राम रावन्न उथप्पै।
एक बान चहुआन करन सिर अरजुन कप्पै॥
एक बान चहुआन त्रिपुर सुर संकर बिद्धिय।
एक बान चहुआन भ्रमर लक्खन परिद्धिय॥
सो एक बान संभर धनिय, बियाव्यान तहं मुक्किये।
घरियार एक इक मुग्गरिय, एक बान न नृप चुक्किये॥

दोहा—च्यार बाँस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमान।
ता ऊपर सुलतान है, अब न चूकु चौहान॥"

प्राचीन काल का राजस्थानी काव्य हमारी दृष्टि से ओझल ही पड़ा हुआ है। हुत से दोहे, ख्याल और चारण गीत हमारे व्यवहार में भी आते हैं परन्तु हमें पता हीं है कि उनकी रचना का ठीक ठीक समय कौन था तथा उनके रचयिता कौन थे। स कालके जल्हन, दलपत विजय, साईंदान, नरपति नाल्ह, तथा नल्ल सिह भाट की विताओं के विषय में अनुसंधान की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

धर्मदास

राजस्थान के प्राचीन कवियों में धर्मदास की कविताओं का भी बहुत बड़ा महत्व है। आपके जन्म-मरण की ठीक ठीक तिथि मालूम नहीं हुई परन्तु इतना पता मिलता है कि ये कबीर साहब के समकालीन कवि थे। कबीर साहब का समय संवत् १४५५ से १५७५ तक माना गया है। धर्मदास जी वांधव गढ़ के एक बड़े भारी महाजन तथा जाति के कसौंधन बनिये थे। आप कबीरपंथ के दूसरे गद्दीश्वर थे। आपकी रचनाओं का एक दार्शनिक तत्वपूर्ण पद इस प्रकार है :—

"झरि लागे महलिया गगन घहराय।
खन गरजै खन बिजुरी चमकै, लहर उठै शोभा बरनि न जाय॥
सुन्न महल ते अमृत बरसै, प्रेम अनन्द ह्वै साधु नहाय।
खुली किवरिया मिटी अंधियरिया, धन सतगुरु जिन दिया लखाय।
धरम दास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरनमें रहत समाय।

नरसी मेहता

भक्त नरसी मेहता से आजकल की जनता भलीभांति परिचित है। आप का जन्म संवत् १४७१ वि. में जूनागढ़ के एक गरीब किंतु प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। भगवान कृष्ण आपकी भक्ति से वशीभूत हो गये थे। आप राजस्थानी कवि होते हुए भी गुजरात के आदि कवि माने जाते हैं। "वैष्णव जन तो तेणे कहिये जे पीर पराई जाणे रे" का आप का भजन लोक विख्यात है। "धरम-चूनड़ी" शीर्षक आप का एक स्त्री शिक्षा पूर्ण भजन इस प्रकार है :—

"ओढ़ो ओढ़ो ये पति भरता नार, धरम की चूनड़ी।
थारे ठाकुर जी भेजी है सियावर सत की चूनड़ी॥

रमल विद्या की रङ्गवाई, बूंटी बुद्धि की छपवाई।
गोटा गोखरू ज्ञान लगाना ॥
यातो सतसंग्रत में सार इस बिधि ओढ़ो चूनड़ी।
लहंगो ललताई को पहरो, चोली चित धर्म में हेरो ॥
म्हारो मन मालामें लाग्यो, थे तो रल मिल करो बसेरो।
पति की सेवा करो हर बखत, इस बिधि ओढ़ो चूनड़ी ॥
बाजूबंद दया का पहरो, हिरदय हार ज्ञान को पहरो।
थारो मन माला में हेरो प्यारी, झूठ कभी मत बोलो।
इस बिधि ओढ़ो चूनड़ी ॥
गंगा जमुना को नीर मंगावो, ताजा तुलसी दल तुड़वाओ।
सेवा सालगराम की सुहावे, सब सन्तों के मन भावे ॥
ये पद नरसीलो नित गावे, म्हाने भवसागर से तारो।
इस बिधि ओढ़ो चूनड़ी ॥

झीमा चारणी

यह जांगल देश (वर्तमान बीकानेर राज्य) के चारण बीठू की बहन थी। उसका स्वभाव चंचल था। पीपाजो के बड़े भाई अचलदासजी के पास गगणागरोढ़ में अपनी सुमधुर कवितायें सुनाने के लिये वह गई। उसने सुन्दर सुन्दर पदों में अपने स्वामी खीमसीजी की पुत्री ऊंमादे सांखली का रूप वर्णन करके एक पन्थ दो काज वाली कहावत को चरितार्थ किया। अचलदास उस संगीतमय सौन्दर्यपर मोहित हो गये और अपने प्रधानामात्य को उसे हस्तगत करने के लिये प्रेषित कर दिया। विवाह धूम-धाम से सम्पन्न हुआ और झीमा भी अपनी सखी ऊंमादे के समीप रहने लगी। झीमा चारणी की कविता का नमूना इस प्रकार है :—

ओढ़न झीना अम्बरा, सूतो खूंटी ताण।
ना तो जाग्या बालमो, नाधन मूक्यो माण ॥
तिलकन भागो तरुणिको, मुखे न बोल्यो बैन।
माण कपट छूटी नहीं, अजसे काजल नैन ॥

खीचीवे चांहे सखी, कोई खीची देहु।
काल पचासा में लियो, आज पचीसा देहु॥
हार दियां छंदो कियो, मूक्यो माण मरम्म।
ऊंमा पीरन चक्खियों, आड़ो लेखकरम्म॥

मीराबाई

जोधपुर मेड़ता के राठौर रतन सिंहजी की इस एकलौती पुत्री से आज पाश्चात्य देश भी अपरिचित नहीं हैं। इस भारतीय नारी रत्न का जन्म संवत् १५५५-६० वि० के बीच माना जाता है। इतिहास में यह देवी एक महती तपस्विनी तथा देदीप्यमान कवयित्री दोनों ही रूपों में अमर है। इस देवी के पदों में लालित्य और माधुर्य का भाव इतना विशाल है कि आधुनिक संगीत मर्मज्ञ के लिये "मीरा" का पद एक अपरिहार्य विषय बन जाता है। दो एक पद यहां उपस्थित किये जाते हैं :—

(१)

मैं तो सांवर के रंग राती॥
जिन के पिया परदेस बसत हैं लिखि लिखि भेजत पाती,
मोर पिया मोरे हिये बसत हैं कछू कही ना जाती।
झूठ सुहाग जगत का सजनी होय होय मिट जासी,
मैं तो एक अविनाश करूंगी जाहि काल नहिं खासी।
और तो प्याला पी पी माती मैं बिन पिये हि माती,
यह प्याला है प्रेम हरी का छकी रहूं दिनराती।
कोऊ कहे खरी कै खोटी प्रीति कि रीति सुहाती,
मीरा के प्रभु गिरधर नागर खोल मिली मैं छाती।

(२)

मन रे परस हरि के चरन।
सुभग सीतल कमल कोमल त्रिविध ज्वाला हरन,
जे चरन प्रहलाद परसे इन्द्र पदवी धरन।
जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हों राखि अपनो सरन,

जिन चरन ब्रह्माण्ड भेंट्यो नख सिखौ श्री भरन।
जिन चरन प्रभु परसि लीन्हें तरी गौतम घरन,
जिन चरन कालीहि नाथ्यो, गोप लीला करन,
जिन चरन धार्यो गोवर्धन, गरब मघवा हरन,
दास मीरा लाल गिरधर, अगम तारन तरन।

*   *   *

काढ़ि कलेजा मैं धरूँ रे कौआ तू ले जाय।
ज्यां देसां म्हारो पिव बसै रे वे देखत तू खाय॥

कविवर दुरसाजी

सम्राट अकबर के समय में मारवाड़ में "दुरसाजी" नामक एक ऐसे कवि का जन्म हुआ जिसे हम महाकवि भूषण का पूर्व अवतार कह सकते हैं।

इस कवि के संबंध में इतिहास कार टाड साहब ने लिखा है :— "जो प्रकाश महाराणा प्रताप की आत्मा में था वही कविवर दुरसाजी की आत्मा में था। उनकी कविता में वही वेदना है जो महाराणा के हृदय में थी। हिन्दू धर्म और हिंदू जाति ये ही दो बातें दुरसाजी के लिये सर्वस्व थीं। वे जातीयता के परम हितैषी थे। वे देख रहे थे कि धीरे धीरे हिंदू राजनीति क्षीण होकर इस्लामी ताक़त में बिलीन हो रही है और उसकी रक्षा करने वाला सिर्फ एक राज्य मेवाड़ रह गया है। उनका उद्देश्य बड़ा महान था। उनकी कविता एक पुकार है, जो हिदुओं के कानों में निरंतर गूंजती हुई कहती है कि तुम अपने आप को जाग्रत करो। इस पुकार में एक व्यक्ति की वेदना नहीं है ; एक जाति की वेदना है, एक स्थान का चित्र नहीं है वरन् एक युग का प्रकाशन है। हिन्दुत्व का सम्मान दुरसाजी का सम्मान था। भारतीयता का अपमान दुरसाजी का अपमान था। यदि कोई हिंदू राजा परास्त होता था, तो दुरसाजी के हृदय पर प्रहार होता था और यदि कोई हिंदू राजा विजयी होता था या सत्य के लिये मर मिटता था तो दुरसाजी के लिये इससे बढ़कर गौरव और आनंद की कोई बात न होती थी। हिन्दू राजाओं का मुगलों की दासता में अपमानित जीवन

विताना कविवर के लिये असह्य दुःख का विषय था। इस प्रकार दुरसाजी राष्ट्रीय कवि थे ; वे जातीय संदेश वाहक थे। उनका दर्द हिन्दू जाति का दर्द था और उनकी कविता का प्रमुख विषय जातीय संग्राम या उसका नायक "प्रताप" था।"

दुरसाजी शुरू में बगड़ी के ठाकुर के यहाँ रहे फिर सिरोही के राव के यहाँ रहे, कुछ दिन दिल्ली दरबार में भी रहे। इन्हें 'लाख-पसाव' 'करोड़-पसाव' मिले, कई गांव मिले, उच्चपदों का सम्मान मिला, और दुनियां के सभी आनन्द मिले, परन्तु कविवर जातीयता के सम्मान में जो गीत गा गये हैं, उनकी महत्ता बहुत ज्यादा ऊंची है।

सीधे सादे तरीके से दुरसाजी ने तत्कालीन राजनीति का सुन्दर चित्रण किया है : —

"अकबर समँद अथाह, तिहँ डूबा हिन्दू तुरुक,
मेवाड़ो तिणमांह, पोयण फूल प्रतापसी।
अकबरिये इकवार, दागल की सारी दुनी।
अण दागल असवार, एकज राण प्रताप सी।
अकबर गरब न आण, हिन्दू सह चाकर हुआ।
दीठो कोइ दिवाण, करतो लटका कटहड़े।"

अकबर के दरबार में रहने वाले पृथ्वीराज राठौर नामक कवि के हृदय में भी महाराणा प्रताप सिंह के प्रति ऐसा ही आदर भाव था।

दुरसाजी अपने आश्रय दाताओं के यश को ही सर्वत्र प्रकाश करने वाले दरबारी कवि नहीं थे। वस्तुत; वह सच्चे अर्थों में "सुकृतिनः रससिद्धाः" कवियों की श्रेणी के थे। आपकी कुछ रचनायें इस प्रकार हैं : —

अजरामर धन येह, जस रह जावै जगत में।
सुख दुख दोनूं देह, सुवन समान प्रताप सी।
अकबर जासी आप, दिल्ली पासी दूसरा।
पुनरासी परताप, सुजस न जासी सूरमा।
अहरे अकबरियाह, तेज तिहालो तुरकड़ा।
नम नम नीसरियाह, राण विना सह राजवी।

आगे दुरसाजी का एक गीत सुनिये, जिसमें महाराणा का महत्व दिखाई पड़ेगा—

आया दल सबल सांम हो आवै,
रंगिये खग खत्रवाट रतो।
ओ नरनाह नमो नह आवै,
पतसाहण दरगाह पतो ॥१॥

दाटक अनड़ दंड वह दीधो,
दोयण घड़ सिर दाव दियो।
मेल न कियो जाय बिच महलाँ,
केल पुरै खग मेल कियो ॥२॥

कलमा बाग न सुनिये काना,
सुणिये वेद पुराण सुभै।
अहड़ो सूर मसीह न अरचै,
अरचै देवल गाय उभै ॥३॥

असमत इन्द्र अवनि आहड़ियां,
धारा झड़ियां सहै धका।
धण पडियां सांकडियां घड़ियां,
ना धीहड़ियां पढ़ी नका ॥४॥

भाखी अणी रहै ऊदावत,
साखी आलम कलम सुनो।
राणै अकबर बार राखियो,
पातल हिन्दू धरम पणो ॥५॥

यह गीत राजस्थान का उज्ज्वल रूप है। इसके भीतर राजस्थान की आत्मा है, जिसके लिये राजस्थान ने बहुत कुछ त्याग किया है। जब यह कविता, बिजली पैदा करनेवाली डिंगल भाषा में गीत छन्द की गति के अनुसार पढ़ी जाती है तो वमण सगाई अलंकार इसके मर्म को अत्यन्त प्रभावोत्पादक बना देता है। इस गीत के भाव को महाकवि भूषण की कविता से मिलाइये। दोनों में बहुत समानता है—

वेद राखे विदित, पुरान राखे सारयुत,
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिन्दुनकी चोटी, रोटी राखी है सिपाहिनकी,
काँधेमें जनेऊ राख्यो, माला राखी गरमें।
मीड़ि राखे मुगल, मरोरि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे, वरदान राखो करमें।
राजन की हद राखी, तेग बल सिवराज,
देव राखे देवल, स्वधर्म राख्यो घरमें।

दादू दयाल

आपका जन्म संबत् १६०१ में अहमदाबाद के एक धुनिया परिवार में हुआ था। आपका ३० वर्ष से ६० वर्ष तक का उत्तरार्द्ध जीवन सांभर, आमेर, नराना और भराने की राजस्थानी भूमि में ही बीता। आपका चलाया हुआ एक पंथ है जिसे दादू पंथ कहते हैं। इस पंथ के ५२ अखाड़े हैं जिनमें अधिकांश जयपुर, अल्वर, जोधपुर, बीकानेर और मेवाड़ रियासतों में ही हैं। आपकी कविता भक्तिमार्ग की होती थी जिसके साथ ही नीति शास्त्र का भी परिचय मिलता है।

दोहा—दादू दीया है भला, दिया करो सब कोय।
घर में धरा न पाइये, जो घर दिया न होय।
जिहिघर निंदा साधु की, सो घर गये समूल।
तिनकी नींव न पाइये, नांव, न ठांवन धूल।

दादू दयाल हिन्दी, पंजाबी, राजस्थानी और गुजराती तथा अन्य कई भाषाओं के ज्ञाता थे। आपका गुजराती भाषा का एक पद इस प्रकार है :—

म्हारा रे व्हाला ने काजे रिदै जोवा ने हूं ध्यान धरूं।
आकुल थाये प्राण म्हारा कोने कहीं पर करूं।
संभारयो आवें रे व्हाला व्हैला एहों जोइ ठरूं।
साथी जी साथे थइनि पेली तीरे पाद तरूं।

पीव पाखे दिन दुहेला जाये घड़ी बरसां सौं कैम भरूं
दादू रे जन हरि गुण गातां पूरण स्वामी ते बरूं ।

महाराज पृथ्वीराज

महाराज पृथ्वीराज बीकानेर के राजा राजसिंह के भाई थे। आपका जन्म मार्गशीर्ष संबत् १६०६ में हुआ था। सुनते हैं कि आपकी पत्नी वही रानी किरणमयी थी जिसने अकबर के मीनाबाज़ार कांड में अकबर की छाती पर सवार होकर उसका मान भंग कर दिया था। महाराज पृथ्वीराज के सम्बन्ध में टाड साहब ने लिखा है :—"वह अपने समय के क्षत्रियों में श्रेष्ठ वीर थे। पाश्चात्य ट्रूबडार वीर कवियों की तरह अपनी कविता द्वारा मानव हृदय को स्फूर्त और प्रोत्साहित कर सकते थे तथा आवश्यकता पड़ने पर रणक्षेत्र में लोहा भी बजा सकते थे।"

प्रसिद्ध समालोचक डा० एल० पी० टैसीटरी ने इस राजस्थानी कवि पुङ्गव को डिंगल भाषा का होरेस (लैटिन भाषा का वह कवि जिसकी कविता में अदम्य उत्साह और ओज भरा रहता था) बताया है। अकबर बादशाह इनके अदम्य स्वदेश प्रेम तथा अतुलनीय शौर्य को समझ कर सदा इन्हें अपने पास ही रखता था। महाराणा प्रतापसिंह जब अपनी विपत्ति से विचलित हो गये थे और उन्होंने जब अकबर के पास अपना पत्र भेजा तब महाराज पृथ्वीराज ने अपनी कविता द्वारा उन्हें पत्र लिखकर पुनः अपने व्रत पर अटल बना दिया था। आपकी रचनाओं का कुछ अंश इस प्रकार है :—

धर बांकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण,
घणां नरिन्दा घेरियो, रहे गिरिन्दा राण।
पातल राग प्रवाड़ मल, वांकी घड़ा विभाड़।
खूंदाड़ै कुण है खुरां तो ऊभां मेवाड़।
पातल पाघ प्रमाण, सांभी सांगा हर तणी।
रही सदा लग राण, अकबर सूं ऊभी अणी।

चीथो चीतोड़ाह, बांटी बाजन्ती तणी।
माथै मेवाड़ाह, थारै राण प्रताप सी।
हिन्दू पति परताप, पति राखी हिन्दुआणरी।
सही विपत संताप, सत्य सपथ करि आपणी।
पातल जो पतसाह, बोलै मुखहूता बयण।
मिहर पछम दिस माह, ऊगै कासप रावबत
पटकूं मूंछां पाण, कै पटकूं निज तन करद।
दोजै लिख दीवाण, इण दो महली बातइक।

महाराज पृथ्वीराज बड़े रसज्ञ कवि थे। उनकी पहली रानी लालादे भी कविता करती थी। दुर्भाग्यवश लालादे का भरी जवानी में स्वर्गवास हो गया। उसके शव को चिता में जलते देख पृथ्वीराज ने यह दोहा बनाया :—

तो रांध्यो नहिं खावस्यां, रे! वासदे निसड्ड।
मो देखत तू बालिया, लाल रहन्दा हड्ड।

अर्थात् ऐ अग्नि! मेरे देखते ही देखते तूने लालादे के शरीर को जला दिया, केवल हड्डी रह गई! आज से तेरा रांधा हुआ कोई पदार्थ नहीं खाऊंगा।

उसी समय से महाराज पृथ्वीराज ने आग में पके हुए भोजन का परित्याग कर दिया।

चम्पादे

जब महाराज पृथ्वीराज लालादे के विरह में अपने दृढ़ सकल्प का पालन करते हुए बहुत दुर्बल हो गये तो लोगों ने उन्हें समझा बुझाकर उनका विवाह जैसलमेर के राव. लहरराज की बेटो चम्पादे के साथ करा दिया। चम्पादे अति रूपवती और प्रसन्न मुखी थी और वस्तुतः अपने रूप और गुण में वह लालादे से भी बढ़कर थी। पति की संगति से उसने भी काव्य रचना का गुण प्राप्त कर लिया।

एक दिन महाराज पृथ्वीराज बालों में कघी कर रहे थे। दर्पण में उन्होंने अपनी दाढ़ी में एक सफेद बाल देखा जिसे निकाल कर उन्होंने फेंका। चम्पादे यह

देख रही थी, वह मुँह फेरकर हँसने लगी। दर्पण में उसको परछाइं देख पृथ्वीराज ने लज्जित होकर कहा :—

पीथल धोला आवियां, बहुलो लागो खोड़।
पूरे जोबन पदमणी, ऊभो मूंह मरोड़ ।
पीथल पली टमुक्कियां, बहुली लग गइ खोड़।
स्वामी नी हांसा करे, ताली दे मुख मोड़।
पीथल पली टमुक्कियां, बहुली लागो खोड़।
मरवण मत्त गयन्दज्यों, ऊभी मुक्ख मरोड़।

यह सुनकर चम्पादे ने स्वामी के मन की ग्लानि मिटाने के लिये कहा :—

प्यारी कहे पीथल सुनो, धोलां दिस मत जोय।
नरां नाहरां डिगमिरां, पाकां ही रस होय।
खेड़ज पक्कां धोरियां पंथज गउवां पाव।
नरां तुरङ्गा बनफलां, पक्कां पक्कां साव।

महाराज पृथ्वीराज का डिंगल भाषा में रुक्मिणी मगल काव्य ग्रन्थ उनके नाम को अमर बना रहा है।

तुलछराय

जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुन्शी देवीप्रसादजी ने तुलछराय का परिचय इस प्रकार लिखा है :—

"यह जोधपुर के महाराज मानसिंहजी की परदायत रानी थीं। तीजा भटियानी के सत्संग से आपने भक्ति विषयक काव्य रचना का ज्ञान प्राप्त किया था। आपकी रचनाओं में से एक भक्तिभाव पूर्ण होली देखिये" :—

सीताराम जी सूं खेलूं मैं होरी,
भर लूं गुलाल की झोरी।
सजकर आईं जनक किशोरी, चहुं बन्धुन की जोरी।
मीठे बोल सियाबर बोलत, सब सखियन की तोरी।
हँसें हरसूं कर जोरी॥

उड़त गुलाल अबीर अलीरी अंबर अरुण भयोरी।
रंग की भरी छुटें पिचकारी, केसर कीच मचोरी।
नैन भरि छवि निरखोरी।
लोग नगर के सब ही आये, चहुंदिस भीर भरोरी।
तुलछराय प्रभु कह कर जोरे, तन मन धन अरपोरी।
जनम को लाभ लहोरी॥

अग्रदास

ये भक्तवर नाभादासजी के गुरू थे। आमेर के 'गलता' नामक स्थान के निवासी थे। आप संबत् १६३२ के लगभग वर्तमान थे। श्रीरामचन्द्रजी की भक्ति से पूर्ण आपकी रचनायें हिन्दी में ही हुई हैं।

सुन्दरदास

सुन्दरदासजी हिन्दी कवियों में बहुत ऊँचा स्थान रखते हैं। यह "बूसर" जाति के खंडेलवाल बनिये थे। आपका जन्म संबत् १६५३ में जयपुर राज्य के द्यौसा नामक स्थान में हुआ था। आप दादूदयाल के शिष्य थे। १० वर्ष की अवस्था में आप जगजीवन साधु के साथ काशी चले आये जहां ३० वर्ष की अवस्था तक आप संस्कृत, वेदान्त, पुराण और दर्शन आदि पढ़ते रहे। संस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी, फारसी, गुजराती और मारवाड़ी आदि भाषाओं के भी आप प्रकाण्ड पंडित थे। काशी से वापस आकर साधुओं के साथ आप शेखावाटी के फतहपुर स्थान में रम गये।

आप बाल ब्रह्मचारी, बालकवि और डील डौल में बड़े सुन्दर थे। आंखों में तेज तथा वाणी में माधुर्य रहने के कारण जो कोई भी आपके सम्पर्क में आता वही आपका भक्त हो जाता था। स्त्री चर्चा से आपको घृणा थी। बालकों से आपका विशेष स्नेह रहता था। आप स्वच्छता बहुत पसन्द करते थे और अपने इसी स्वभाव वश आपने विभिन्न देशों के फूहड़पन की चर्चा की है। गुजरात के विषय में आपने—"आभड़ छोत अतीत सो कीजिए, बलाई रु कूकुर चाटत हांडी," मारवाड़ के लिये—"वृच्छ न नीर न उत्तम चीर, सुदेसन में गत देस है मारू",

दक्षिण के लिये—"रांधत प्याज बिगारत नाज, न आवत लाज करैं सब भच्छन", पूर्व के लिये—"ब्राह्मण क्षत्रिय बैसरु सूदर, चारिउ बर्न के मच्छ बघारत", फतहपुर (शेखावाटी) के लिये—"फूहड़ नार फतेपुर की" लिखकर अपना मनोभाव प्रगट किया है। मालवा तथा उत्तर भारत की भूमि ही इन्हें अधिक पसन्द थी। आपकी कविता से उच्चकोटि का ज्ञान तथा काव्य कला-मर्मज्ञता का परिचय मिलता है। आपने ४० से अधिक ग्रन्थ लिखे हैं। संवत् १७४६ में सांगानेर में आपका शरीरान्त हुआ। आपकी कविता के कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं :—

ब्रह्म ते पुरुष अरु प्रकृति प्रकट भई
प्रकृति ते महत्तत्व पुनि अहंकार है।
अहंकार हू ते तीनगुण सत रज तम,
तमहुं ते महाभूत विषय पसार है।
रजहुते इन्द्री दस पृथक पृथक भईं
सत्त हुं ते मन आदि देवता विचार है।
ऐसे अनुक्रम करि सिष्य से कहत गुरु,
सुन्दर सकल यह मिथ्या भ्रमजार है।

* * * *

कामिनी की देह अति कहिए सघन बन,
जहां सु तौ जाय कोऊ भूलि कै परत है।
कुञ्जर है गति कटि केहरि की भय यामें,
बेनी कारी नागिनि सी फन को धरत है।
कुच है पहार जहां काम चोर बैठो तहां,
साधि कैं कटाक्ष बान प्रान को हरत है।
सुन्दर कहत एक और अति भय तामें,
राक्षसी बदन खांव खांव ही करत है।

महाराज जसवंतसिंह

आपका जन्म संवत् १६८२ में हुआ। आप जोधपुर नरेश महाराज गजसिंह

के द्वितीय पुत्र थे। शाहजहां के प्रसिद्ध सामंत अमरसिंह राठौर–जिन्होंने गंवार शब्द के अपमान के प्रतिशोध में शाहजहाँ के साले सलावत खाँ को भरे दरबार में ही तलवार के घाट उतार दिया था—आपके बड़े भाई थे। महाराज जसवंतसिंह का औरङ्गजेब के इतिहास से बहुत बड़ा संबन्ध है। सं० १७३८ में काबुल में आपका शरीरान्त हुआ। कहते हैं कि औरङ्गजेब ने ही इन्हें विष देकर मरवा डाला था। आप भाषा के बड़े मर्मज्ञ कवि थे। आपके रचे हुए ग्रन्थ—भाषा भूषण, अपरोक्ष सिद्धान्त, अनुभव प्रकाश, आनन्द विलास, सिद्धान्तबोध, सिद्धान्त-सार और प्रबोध चन्द्रोदय नाटक हैं। भाषा भूषण के अतिरिक्त आपके सभी ग्रन्थ वेदान्त सम्बन्धी हैं। भाषा भूषण २६१ दोहों का अलंकार ग्रन्थ है।

आपकी कविता का नमूना :—

मुख शशि वा शशि सों अधिक, उदित जोति दिनराति।
सागर ते उपजी न यह, कमला अपर सोहाति।
नैन कमल ए ऐन हैं, और कमल केहि काम।
गमन करत नीकी लगै, कनक लता सी बाम।
धरक दुरै आरोप ते, सुद्धापह्नुति होय।
उर पर नाहिं उरोज ये, कनक लता फल दोय।
परजस्ता गुन और को, और विषै आरोप।
होय सुधाधर नाहिं ये, वदन सुधाधर ओप।

महाराजा रूपसिंह

आप कृष्णगढ़ नरेश थे। आपका जन्म संबत् १६८५ में हुआ। आप बड़े वीर थे। औरङ्गजेब और दारा शिकोह की लड़ाई में आप दारा की ओर से लड़े। औरङ्गजेब की फौज को काटते काटते आप औरङ्गजेब के हाथी तक पहुंच गये और वहाँ पैदल होकर हौदे की रस्सियों को तलवार से काटने लगे। यह देखकर आपके ऊपर बहुत से आदमी टूट पड़े। उनसे लड़ते हुए आपका शरीर टुकड़े टुकड़े हो गया। इतिहास में इनके भी शौर्य और त्याग का दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। आपको गान विद्या का अच्छा ज्ञान था। आप कविता भी बहुत अच्छी करते थे।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होनेवाला तथ्य यह है कि वर्तमान हिन्दी काव्य के विकास में राजस्थानी कवियों का उद्योग पीछे नहीं है। माध्यमिक काल के अनेक राजस्थानी कवियों ने हिन्दी में ही काव्य रचना की है। एक और विशिष्ट बात यह है कि राजस्थानी राजाओं और सामन्तों ने हिन्दी कवियों के पोषण में जितना योगदान दिया है उतना देश के अन्य भागों से नहीं मिला। भूषण, मतिराम, पदमाकर, लाल, बनवारी, बिहारी आदि हिन्दी के विख्यात कवियों को राजस्थान के रजवाड़ों से सराहनीय प्रोत्साहन प्रश्रय प्राप्त हुआ था। राजस्थानीय राजामहाराजा गण प्रायः सभी कवि और विद्वानों का आदर करते थे।

मध्य युग के प्रमुख राजस्थानी कवियों, उनके समय तथा उनमें से कुछ कवियों की चुनी हुई रचनाओं की सूची ही देकर हम अपने विषय को आगे बढ़ायेंगे।

महाराज मानसिंह	संवत्	१७१२
दरिया साहब	,,	१७३३
महाराज सावंतसिंह (नागरीदास)	,,	१७५६
चरण दास	,,	१७६०
सुन्दर कुंवरि बाई	,,	१७६१
चाचाहित वृन्दावनदास	,,	१७६५
महाराज गजसिंह	,,	१७७९
महाराजा प्रतापसिंह	,,	१८२१
राजिया	,,	१८२५
महाराजा कल्याणसिंह	,,	१८५१
रामदयाल नेवटिया	,,	१८८८
कान्हर दास	,,	१८९०
जाई चीज श्री प्रतापवाला	,,	१८९१

चन्द्रसखी सम्वत् १९०० से पूर्व

रसिक बिहारी, बनीठनी जी

रतन कुंवरि	समय अज्ञात
सहजो बाई	,, ,,
हरिभाई किंकर	,, ,,
बीरां	,, ,,
बीर दास	,, ,,
पद्म दास	,, ,,
प्रताप कुंवरि	,, ,,

बीसवीं शताब्दी विक्रमी से प्रचलित भारतीय काव्य को आधुनिक काव्य की ही श्रेणी में रखा जाता है। इस प्रकार राजस्थानी कवियों में यह युग भी अंबिकादत्त व्यास से प्रारम्भ होता है। आप का जन्म संवत् १९१५ में हुआ था। आप के पिता पंडित दुर्गादत्त जी स्वयं एक अच्छे कवि थे जो 'दत्त' के नाम से कविता करते थे। श्री अंबिकादत्त व्यास १० वर्ष की अवस्था से ही कविता करने लगे थे। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द ने इनकी बाल-प्रतिभा से प्रभावित हाकर "काशी कविता वर्द्धिनी सभा" से सुकवि का पद दिलाया। आप सनातन धर्म के बड़े भारी प्रचारक थे। कलकत्ते आकर आप ने विभिन्न विषयों पर २८ वक्तृतायें दी थी तथा कई सभाओं में बंगी पंडितों से गहन शास्त्रार्थ भी किया। आप ने काशी से "वैष्णव पत्रिका" नामक एक मासिक पत्र भी निकाला था। आप २४ मिनट में १०० श्लोकों की रचना कर लेते थे। आप को "घटिका शतक" "भारतरत्न" एवं "बिहार भूषण" जैसी उपाधियां मिली थीं। बिहार में आप का सब से बड़ा काम था—"सांस्कृत संजीवनी समाज" की स्थापना। आप संस्कृत, बंगला, गुजराती, अंग्रेजी और मराठी आदि भाषाओं के प्रकाण्ड पंडित थे। इतनी प्रतिभा और विद्यावाले व्यास जी जीवन भर धन के अभाव के कारण कष्ट ही भोगते रहे। संवत् १९५७ में काशी में ही आप का स्वर्गवास हो गया। आपने लगभग ७८ पुस्तकें लिखी हैं।

आधुनिक-कवि

अमर दान चारण	संवत्	१९५०
केशरी सिह बारहठ	,,	१९२०
गिरिराज कुंवरि	,,	१९२०
माधव प्रसाद मिश्रा	,,	१९२८
लक्ष्मी नारायण सिंहानियां	,,	१९२५
शिवचन्द्र भरतिया	,,	१९१०
भाभाई गोविन्द दास	,,	१९२५
नानू लाल राणा	,,	१९१५
बालमुकुन्द गुप्त दीघलिया	,,	१९२३
बाघेली विष्णु प्रसाद कुंवरि	,,	१९०३
बाघेली रणछोड़ कुंवरि	,,	१९४६
बालचन्द्र शास्त्री	,,	१९२८
भगवती प्रसाद दारुका	,,	१९४१
महाराणा सज्जन सिंह	,,	१९१६
केसरी सिंह बारहठ (सोन्याणा)	,,	१९२७
केसरी सिंह बारहठ (कोटा)	,,	१९२९
अर्जुन दास केडिया	,,	१९१४
जुगल सिंह	,,	१९५२
शिवकुमार केडिया 'कुमार'	,,	१९४७
भैमराज चूड़ीवाले		समय अज्ञात
ईसर दास बारहठ		,, ,,
मौंड जी		,, ,,
शूरामल जी टांपरिया		,, ,,

कुछ चुनी हुई कवितायें

कैसे काज ह्वै है हाय बात सब बूड़ि जैहे,
कादरता ऐसी कबौं भूलि हू न करिये।

साजि कै विवेक को सुसाजि निज जी में पाचि,
रचि कै उपाय निज व्याकुलाई हरिये।
ईसुर को यादि कै जनैये पुरुषारथ को,
"दत्त" कहूँ काहु के न जाय पांव परिये।
हारिये न हिम्मति सुकीजे कोटि किम्मति को,
पति राखि आफति में धीरज को धरिये।

—पंडित दुर्गादत्त

कलह कल्पना काम कलेस निवारनो।
पर निन्दा परदोस न कबहुं बिचारनो।
जग प्रपंच चटसार न चित्त चढ़ाइये।
व्रज नागर नन्दलाल सुनिस दिन गाइये।
अन्तर कुटिल कठोर भरे अभिमान सों।
तिन के गृह नहिं रहे सन्त सनमान सों।
उनकी संगति भूलि न कबहूं जाइये।
व्रजनागर नंदलाल सुनिस दिन गाइये।

-- कृष्णगढ़ नरेश "नागरी दास"

रतनारी हो थारी आंखड़ियां।
प्रेम छकी रस वस अलसाणी जाणि कमल की पांखड़ियां।
सुन्दर रूप लुभाई गतिमति हौं गई ज्यूं मधु माखड़ियां।
रसिक विहारी वारी प्यारी कौन वसी निस कांखड़ियां।

(नागरी दास जी की दासी) बनीठनी जी उपनाम
"रसिक विहारी"

चन्द्र योग में स्थिर पुनि जानो-थिर कारज सबही पहिचानो।
करै हवेली छप्पर छावै, बाग बगीचा गुफा बनावै॥
हाकिम जाय कोट में बरै, चन्द्र योग आसन पग धरै।
चरण दास शुकदेव बतावै, चन्द्र योग थिर काज कहावै॥

भोजन करै, करै अस्नान, मैथुन कर्म भानु पर ध्यान।
बही लिखै कीजै व्योहारा, गज घोड़ा बाहन हथियारा॥
विद्या पढ़ै नई जो साधै, मन्त्र सिद्धि औ ध्यान अराधै।
बैरी भवन गमन जो कीजै, अरू काहू को ऋण जो दीजै।
ऋण काहू पै जो तू मांगै, बिष औ भूत उतारण लागै।
चरण दास शुकदेव बिचारी, ये चर कर्म भानु की नारी॥

—चरणदास

अभिमानी नाहर बड़ो, भरमत फिरै उजार
सहजो नन्ही बाकरी, प्यार करै संसार।
सीस कान मुख नासिका, ऊँचे ऊँचे ठांव।
सहजो नीचे कारने सब कोउ पूजे पांव।
भली गरीवी नवनता, सकै न कोऊ मार।
सहजो रुई कपास की, काटै ना तरवार।
जबलग चावल धान में, तबलग उपजै आय।
जब छिलके को तज निकस, मुक्ति रूप ह्वै जाय।

—सहजो बाई

दया कुंवरि या जगत में, नहीं रह्यो थिर कोय।
जैसो वास सराय को, तैसो यह जग होय।
तात मात तुम्हरे गये, तुम भी भये तयार।
आज काल में तुम चलो, दया होहु हुसियार।

—दयाबाई

बेर बेर पावक में कंचन तपाय तऊ,
रंचक ना रङ्ग निज अङ्ग को मिटावै है।
चन्दन सिलान पर घिसत अमित तऊ,
सुन्दर सुगन्ध चारों ओर सर सावै है।
पेरत हैं कोल्हू मांहि ऊंखको अधिक तऊ,

मंजुल मधुरताई नेक ना नसावै है।
गोबिन्द कहत तैसे कष्ट काय पाय तऊ,
सुजन सुभाव नाहिं आप बदलावै है ॥

(२)

लोभन ते जस अरु क्रोधन ते गुन पुनि,
कपट ते सत्यता के वृन्द बिनसात हैं।
भूखन ते मरजाद व्यसन ते बित्त पुनि,
आपदा ते उरनिज धीरज नसात हैं।
ममता ते ज्ञान अरु मदते विनय पुनि,
चुगली ते सर्व महाबंस बिखरात हैं।
गोबिन्द कहत तैसे जाने जियमांहि हमें,
दीनता से दुनियां में मान मिट जात हैं।

—गोविन्द गिल्ला भाई

(जन्म सं० १९०५, सिहोर, भावनगर)

राजस्थानी नरेशों के प्रभाव का सम्पर्क होने से कई मुसलमान भी हिन्दी में उच्च कोटि की कविता मुस्लिमकाल के प्रारम्भिक युग में लिखने लगे थे। ऐसे मुसलमान कवियों में अमीर खुसरो का स्थान पहिला है। इनका जन्म सम्वत् १३१२ में दिल्ली में हुआ था। आपकी कविता का नमूना देखिये :—

सिगरी रैन मोहिसंग जागा।
भोर भई तब विछुरन लागा॥
उसके बिछुड़े फाटत हिया।
कहु सखि, साजन ? ना सखि "दिया"
सरव सलोना सब गुन नीका।
वा बिन सब जग लागै फीका॥
वाके सर पर होवै कौन।
ऐ सखि साजन ? ना सखि "लौन"

कस के छाती पकड़े रहै।
मुंहसे बोले बात न कहै॥
ऐसा है कामिन का रङ्गिया।
ऐ सखि साजन ? ना सखि "अंगिया"
पड़ी थी अचानक मैं, चढ़ि आयो।
जब उतरयो तो पसीनो आयो॥
सहम गई नहिं सकी पुकार।
ऐ सखि साजन ? ना सखि "बुखार"

राजा विक्रमादित्य और भोज की राजधानी उज्जैन भी राजस्थान के ही अन्तर्गत रही है और इन दोनों नरेशों का इतिहास अपना एक जाज्वल्यमान आदर्श अलग ही रखता है। विक्रमादित्य के दरबारी कवि बैताल की कुछ रचनायें ध्यान देने योग्य हैं:—

मरै बैल गरियार मरै वह अड़ियल टट्टू।
मरै कर्कशा नारि मरै वह खसम निखट्टू॥
बांभन सो मरिजाय हाथ लै मदिरा प्यावै।
पुत्र वहै मरिजाय जो कुल में दाग लगावै॥
अरु बेनियाव राजा मरै, तवै नीदं भरि सोइये।
बैताल कहैं बिक्रम सुनो, एते मरे न रोइये॥१॥
राजा चंचल होय मुलुक को सर करि लावै।
पंडित चंचल होय सभा उत्तर दै आवै॥
हाथी चंचल होय समर में सूंड़ि उठावै।
घोड़ा चंचल होय झपटि मैदान देखावै॥
हैं ये चारों चंचल भले, राजा पंडित गज तुरी।
वैताल कहैं बिक्रम सुनो, तिरिया चंचल अति बुरी॥२॥
बुधि बिन करै बेपार दृष्टि बिनु नाव चलावै।
सुर बिन गावै गीत अर्थ बिन नाच नचावै॥

गुन बिन जाय बिदेश अकल बिन चतुर कहावै।
बल बिन बांधै युद्ध हौंस बिन हेत जनावै॥
अन इच्छा इच्छा करै, अनदीठी वातां कहै।
बैताल कहैं बिक्रम सुनो यह मूरख की जात है॥३॥
पग बिन कटै न पंथ बाहु बिनहटै न दुर्जन।
तप बिन मिलै न राज भाग्य बिन मिलै न सज्जन॥
गुरुविन मिलै न ज्ञान, द्रव्य बिन मिलैन आदर।
बिना पुरुष सिंगार मेघ बिनु कैसे दादुर॥
बैताल कहैं बिक्रम सुनो, बोल बोल बोली हटे।
धिक धिक ये पुरुष को, मन मिलाइ अन्तरकटे॥४॥

वर्तमान साहित्यिक

मारवाड़ी समाज के अन्दर वर्तमान समय में साहित्यिक प्रवृत्ति अधिक जोर पकड़ रही है। देश के स्वाधीनता के आन्दोलन में जिस प्रकार सेठ जमनालालजी बजाज, सेठ शिवदासजी डागा, सेठ गोविन्ददास मालपाणी, सेठ पूनमचन्द रांका तथा श्री ब्रजलालजी बियाणी जैसे अगणित त्यागीवीरों ने मारवाड़ी बर्ग का मोल ऊंचाकर दिखाया है उसी प्रकार राष्ट्रभाषा के निर्माण क्षेत्र में मारवाड़ी नवयुवक कवि और लेखकों तथा महिलाओं ने हिन्दी की आराधना में एकबार राजस्थानी को पीछे रख कर हिन्दी की सेवा को अपनाकर राष्ट्रीय भावना का कुछ ऐसा आदर करके दिखाया है जो बङ्गाल, गुजरात और महाराष्ट्र आदिके प्रगतिशील वर्गों को आज मात दे रहा है। इस सिलसिले में हम मारवाड़ी समाज के वर्तमान लेखक, कवि और साहित्यिकों का संक्षिप्त परिचय तथा प्राप्त रचनाओं का नमूना देते हुए उन होनहार नर-नारी लेखकों, कवियों और साहित्यिकों से क्षमा याचना करेंगे, समयाभाव से हम जिनके नाम अपने इस संस्करण में एकत्र नहीं कर सके।

सेठ गोविन्ददास मालपाणी एम० एल० ए० (केन्द्रीय)

में एक युग निर्माता नाट्यकार के रूप में इनका स्मरण किया जाता

है। सेठजी का सार्वजनिक जीवन, साहित्य से ही आरम्भ हुआ है। केवल १८ वर्ष की आयु में इन्होंने जब्बलपुर की प्रसिद्ध साहित्यिक संस्था 'राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर' को जन्म दिया। इस संस्था से हिन्दी के विद्वतापूर्ण क्लासिकल ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। महाकोशल के राजनीतिक जागरण के जनक होने के कारण इनकी सारी शक्ति विशेष रूप में राजनीति की ओर परिवर्तन हो गयी। उस सत्याग्रहकाल में इन्हें दो बार जेल यात्रा करनी पड़ी। सेठजी के साहित्यिक जीवन में परिवर्तन हुआ। सन् १९३९ ई० में उन्होंने कांग्रेस के सभी पदों से इस्तीफ़ा दे दिया और सम्पूर्ण शक्ति से साहित्य सेवा करने का व्रत धारण किया। इन्होंने 'त्याग और ग्रहण' 'हिंसा या अहिंसा' 'हत्या या बलिदान' आदि समस्यावादी नाटकों की रचना की है।

श्री घनश्यामदासजी बिड़ला

श्री बिड़लाजी को एक गान्धी जयन्ती के पहले लोग केवल उच्च कोटि के व्यवसायी, समाज सेवी और गान्धीजी के रचनात्मक कार्यपथ के अनुयायी के रूप में ही जानते थे। उक्त गान्धी जयन्ती के दिन उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'बापू' ने उन्हें आज के युग के महान् गान्धीवादी लेखक के रूप में प्रस्तुत कर दिया है। कुछ साल पहले अजमेर की त्याग-भूमि में बिड़लाजी ने कुछ निबन्ध लिखे थे जिनमें "मुझ से सब भले" शीर्षक निबन्ध तो बहुत ही हृदयग्राही प्रयास था।

श्री भगवानदासजी केला

श्री भगवानदासजी हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान और मननशील लेखक हैं। ये माहेश्वरी जाति के उन्नत एवं विचारशील सज्जन हैं। राजनीति, अर्थशास्त्र और नागरिकता इनके अपने विषय हैं। केलाजी का सालों तक 'प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन' से सम्बन्ध रहा है।

श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार

सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'कल्याण' के सम्पादक के रूप में श्री पोद्दारजी से हिन्दी का साहित्य-जगत भलीभांति परिचित है। आपकी आध्यात्मिक विषयों की ओर

बहुत रुचि है, जिसका श्रेय भक्तराज जयदयालजी गोयनका को है, क्योंकि आप वर्षों से उन्हीं के सम्पर्क में रह रहे हैं। आप एक कुशल साहित्यिक-व्यवसायी ही नहीं, वरन् एक सुलेखक भी हैं। आपके लिखे हुए 'प्रेम दर्शन' आदि कई एक अमूल्य ग्रन्थ हिन्दी में आध्यात्मिक चिन्तन और भक्तिरस के अच्छे ग्रन्थ समझे जाते हैं।

राय बहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

श्री ओझाजी केवल राजस्थान हो नहीं, समस्त भारत के साहित्यिक-जगत के अत्यन्त जाज्वल्यमान नक्षत्रों में से एक हैं। आपने पुरा-तत्व और इतिहास के क्षेत्र में एक युगान्तरकारी साहित्य का निर्माण किया है। आपकी मूल रचनाओं में प्राचीन लिपिमाला, भारतीय प्राचीन लिपिमाला, "सोलंकियों का इतिहास" "बाप्पा रावल का सोने का सिक्का", "राजपूताने का इतिहास", मध्यकालीन भारतीय संस्कृति" "नागरी अंक और अक्षर" आदि तेरह रचनाएं हैं। आपके द्वारा सम्पादित ग्रन्थों में ग्यारह अमोल रत्न हैं जो नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के द्वारा प्रकाशित हुए हैं।

पण्डितजी को उनकी 'प्राचीन लिपिमाला' पर 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सर्व श्रेष्ठ पुरस्कार 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' दिया जा चुका है। इनकी भाषा सरल, विचार गंभीर और मननशील तथा शैली रोचक होती है। पण्डितजी हिन्दी की अभिमान पूर्ण-निधियों में से हैं।

श्री हरिनारायणजी पुरोहित

ये जयपुर के सुप्रसिद्ध साहित्यिक, इतिहासज्ञ, कर्मण्य और दानी व्यक्ति हैं। इन्होंने अब तक करीब ३२ ग्रन्थों का सम्पादन और लेखन किया है। इनकी मौलिक रचनाओं में महामति मि० ग्लेडस्टन काफी प्रसिद्ध है। इनके सम्पादित ग्रन्थों में 'सुन्दर ग्रन्थावली' मीरा बृहद्पदावली, गरीबदास ग्रन्थावली, आदि बहुत मूल्यवान हैं।

ठाकुर केशरसिंह बारहट

ये मारवाड़ के गौरवपूर्ण राष्ट्र-कवि हैं। इनकी कविता में ओज और शब्दों में क्रान्ति की पुकार है। इनका समस्त जीवन राष्ट्र के चरणों में अर्पित रहा है।

पुत्र तक का बलिदान इन्होंने अपने इसी सिद्धान्त और भावना पर कर दिया है। इन्होंने राजस्थानी तथा हिन्दी में ओजपूर्ण कविता की है।

दीवान बहादुर हरबिलासजी शारदा

सुप्रसिद्ध "शारदा एक्ट" के निर्माता शारदाजी केवल राजनीतिज्ञ और सामाजिक वीर ही नहीं हैं, वे अंगरेजी और हिन्दी के मर्मज्ञ और विद्वान साहित्यिक हैं। इन्होंने 'महाराणा कुम्भा' 'महाराणा सांगा' 'महाराणा हम्मीर' 'हिन्दू सुपिरीयरिटी' आदि पुस्तकें लिखी हैं। ये हिन्दी के भी उत्कृष्ट लेखक हैं। इन्हें संवत् १९९४ में प्रिंसपल शेषाद्रिने एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रदान किया था।

ठाकुर रामसिंह और श्री नरोत्तमदास स्वामी

ये दोनों सज्जन राजस्थानी साहित्य के प्रतिभाशाली निर्माता हैं और स्वर्गीय श्री सूर्यकरणजी पारीख के सहयोगी हैं। इन्होंने राजस्थानी साहित्य की मूल्यवान सेवा की है। 'कानन कुसुमांजली' 'राजस्थान के लोकगीत' 'ढोला मारूरा दूहा' 'छन्दराउ जैतसी राउ' 'राजस्थान रा दूहा' आदि ग्रन्थों की रचना से आपने राजस्थानी साहित्य का बहुत बड़ा कल्याण किया है। इनमें मार्मिक समालोचना शक्ति, कला-प्रियता, साहित्यिक रसज्ञता और व्यंजनापूर्ण शैली का सामर्थ्य है।

श्री अगरचन्दजी नाहटा

अगर चन्दजी "राजस्थानी" के यशस्वी सम्पादक हैं। इनके लेख गवेषणापूर्ण और माननीय होते हैं। पहले ये कविता भी किया करते थे। अब ये उस क्षेत्र से अलग हो गये हैं। इन्होंने अब तक अपने करीब ३०० निबन्धों द्वारा राजस्थानी साहित्य की बहुत सी अलभ्य कृतियों पर प्रकाश डाला है। इन्होंने कुछ ग्रन्थों का भी लेखन और सम्पादन किया है। ये बीकानेर के निवासी हैं।

श्री बालचन्दजी मोदी

श्री मोदीजी कलकत्ते के नये बंगाल स्टाक् एक्सचेंज के निर्माता होने के साथ ही मारवाड़ी समाज के बहुत मूल्यवान लेखक भी हैं। जब तक मारवाड़ी समाज का अस्तित्व है तब तक उनकी 'देश के इतिहास में मारवाड़ी जाति का स्थान' शीर्षक

बृहद पुस्तक का अमरत्व बना रहेगा। वह पुस्तक मारवाड़ी समाज को एक 'एन्साइ-क्लोपीडिया' है। उसकी एक एक पंक्ति में परिश्रम और चिन्तन भरा हुआ है। इस विशाल पुस्तक की रचना कर मोदीजी ने एक ऐतिहासिक काम किया है।

श्री झाबरमलजी शर्म्मा

आप का साहित्यिक जीवन 'कलकत्ता समाचार' से प्रारम्भ हुआ है। इतिहास से आपको शुरु से ही रुचि है। आपने खेतड़ी और सीकर राज्यों का इतिहास लिखा है। आपने 'आदर्श नरेश' के नामसे खेतड़ी के राजा का जीवन चरित्र भी प्रकाशित किया है।

पं० मोतीलालजी मेनारिया एम० ए०

मेनारिया जी बहुत ही उत्तम समालोचक और निबन्धकार हैं। इनकी 'राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा' पुस्तक हिन्दी साहित्य की एक बहुत ही सुन्दर कृति है। उसमें इनकी अन्वेषणा-दृष्टि और समालोचना शक्तिका उत्कृष्ट प्रदर्शन हुआ है। ये उदयपुर (मेवाड़) के निवासी हैं।

श्री गंगाप्रसादजी भोतिका एम० ए० बी० एल० काव्यतीर्थ

श्रीगंगाप्रसादजी समाज के सुप्रसिद्ध सेवक और उदारमना कार्यकर्ता हैं। इन्होंने बहुत सी सामाजिक, साहित्यिक एवं व्यवसाय संबन्धी पुस्तकें लिखी हैं। इनमें 'क्रय विक्रय कला' की बहुत ख्याति हुई है। ये उत्साही साहित्यिक और उदारमना गांधीवादी हैं।

श्री बैजनाथ केडिया

श्री बैजनाथ जी हिन्दी के परम प्रसिद्ध प्रकाशक और सम्पादक हैं। कलकत्ते की सुप्रसिद्ध 'हिन्दी पुस्तक-एजेन्सी' इन्हीं की संस्था है। इन्होंने बहुत समय तक 'समाज सेवक' का सम्पादन किया है। राष्ट्रसेवा इनके जीवन का प्रधान ध्येय रहा है।

श्री सिद्धराजजी ढड्ढा

श्री ढड्ढाजी एक उच्च कोटि के लेखक हैं। इनके लेख अधिकतर सामाजिक तथा ाजनीतिक विषयों पर ही होते हैं। ये जो कुछ भी लिखते हैं वह मार्मिक और ननीय होता है।

श्री रघुनाथ प्रसादजी सिंहानियां

सिंहानियां जी राजस्थानी साहित्य के प्रमुख सेवक और 'राजस्थानी साहित्य समिति कलकत्ता' के मंत्री रहे हैं। इन्होंने मारवाड़ी गीतोंका संकलन तथा सम्पादन कर राष्ट्र के साहित्य को एक बहुमूल्य वस्तु प्रदान की है। इनकी प्रमुख पुस्तक का नाम 'मारवाड़ी भजन सागर' है।

श्री सेठ कन्हैयालालजी पोद्दार

कन्हैयालाल जी मारवाड़ी समाज के उन लेखकों में से हैं जिन्हें समस्त हिन्दी संसार ने अपनी गौरवपूर्ण निधि समझा है। इनकी प्रसिद्ध रचनाका नाम 'काव्य कल्प द्रुम' है। इनका निवास-स्थान मथुरा है।

श्री जयनारायणजी व्यास

अखिल भारतीय देशी राज्य परिषद् के कर्मण्य मंत्री व्यासजी का सार्वजनिक जीवन साहित्य से ही आरम्भ हुआ जान पड़ता है। ये हिन्दी के समर्थ कवि, लेखक और सम्पादक हैं। कुछ वर्ष पहले इन्होंने बम्बई से "अखण्ड भारत" नामक दैनिक पत्रका भी प्रकाशन किया था।

श्री पूर्णचन्द्रजी जैन, एम० ए०, साहित्य रत्न

जयपुर के श्री पूर्णचन्द्रजी हिन्दी के भावुक कवि और रोचक निबन्ध लेखक हैं। इनकी भाषा साहित्यिक और भाव गम्भीर होते हैं।

कलकत्ते के उदीयमान नवयुवक साहित्यिकों में सर्व श्री केवलचन्द्र बागड़ी 'शलभ' दुर्गाप्रसाद झुनझुनवाला, रामकृष्ण सरावगी, बालकृष्ण व्यास आदि साहित्यिकों की रचनायें इस बात की सूचना दे रही हैं कि निकट भविष्य में हमारे समाज में प्रतिभाशाली साहित्यिकों का एक संघ तैयार हो जायेगा। कलकत्ते के सिवाय अन्य

स्थानों में भी हमारे समाज के युवक साहित्य क्षेत्र में दिलचस्पी लिया करते हैं। श्री जोरावरमल जैन एक उत्कृष्ट समालोचक हैं। सिरोही के श्री दिलीप सिंघी सुन्दर गद्य-गीत लिखते हैं।

हमारे समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो साहित्यकारों को निरन्तर प्रोत्साहन दिया करते हैं और स्वयं भी कुछ रचा करते हैं। सर्व श्री पद्मपतजी सिंहानियां, सीतारामजी सेकसरिया, बसन्तलाल जी मुरारका, राधाकृष्ण नेवटिया, रायबहादुर रामदेवजी चोखानी, धर्मचन्द सरावगी आदि ऐसे ही व्यक्ति हैं जिन्होंने अंगरेजी में साहित्यिक रचनायें की हैं। सर्व श्री डा० राममनोहर लोहिया, प्रो० श्यामसुन्दर दास चोरड़िया, कालीप्रसाद खेतान आदि अंगरेजी पत्र-पत्रिकाओं में कभी कभी लिखते रहते हैं। डा० राममनोहर लोहिया की लेखनी की देश के नवयुवक समाज पर एक बहुत बड़ी छाप है और उनके स्फूर्ति पूर्ण विचार पढ़ने के लिये लोग उत्सुक रहते हैं।

वेदमूर्ति पं० मोतीलाल शर्मा

श्री शर्मा जी आधुनिक युग में प्राचीन भारतीय साहित्य और संस्कृति के बहुमूल्य रत्न हैं। आप विज्ञान मंदिर जयपुर में वेदशास्त्रादि विषयां का पठन-पाठन तथा अनुसंधान कार्य किया करते हैं। आप की शास्त्रीय ज्ञान विदग्धता का थोड़ा परिचय पाठकों को इसी पुस्तक के रूढ़ि वाले प्रकरण में उद्धृत आप के "यज्ञोपवीत का मौलिक रहस्य" शीर्षक लेख से मिल जायगा।

श्री जय दयालजी गोयनका

भारतवर्ष का सनातन धर्मीय समाज गीता-प्रेस गोरखपुर तथा "कल्याण" के नाते भक्तवर श्री जयदयाल गोएनका के नाम से भलीभांति परिचित है। आप की लेखनी से अब तक कितनी ही धार्मिक पुस्तकें निकल चुकी हैं। भारतीय संस्कृति, आचार विचार, संयमनियम तथा भगवद्भक्ति के ही विषयों पर आप का मानसिक प्रवाह केन्द्रित हो चुका है।

श्री हरदत्तराय सूगला बी० ए० बी- एल०

आप बिड़ला ब्रदर्स फर्म के क़ानूनी सलाहकार, कुशल लेखक तथा पत्रकार हैं।

भिवानी (पंजाब) से प्रकाशित होने वाले हिन्दी साप्ताहिक 'एकता' का आपने संपादन किया था। आप हिन्दी तथा अंगरेज़ी भाषाओं के योग्य लेखक हैं। नहीं मालूम किन परिस्थितियों में पड़ कर 'एकता' जैसे पत्र का प्रकाशन थोड़े ही दिन बाद बंद हो गया।

श्री वेणीशंकर शर्मा बी० ए० बी-एल०

मारवाड़ी साहित्यिकों में शायद ही कोई ऐसा हो जो शर्मा जी के नाम से परिचित न हो। आप क़ानून के पंडित तो हैं ही, हिन्दी-सेवा की अभिलाषा आपकी अत्यंत प्रबल है। आपके विचार गंभीर और तथ्यपूर्ण हुआ करते हैं। एक तेजस्वी साहित्यसेवी के अतिरिक्त आप सिद्धहस्त पत्रकार भी हैं। आपने कलकत्ता मारवाड़ी छात्र संघ द्वारा प्रकाशित होने वाले "मारवाड़ी" नामक मासिक पत्र का (जो दुर्भाग्य-वश अबबंद हो गया है) योग्यता के साथ संपादन किया है।

श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका एटर्नी

कलकत्ता के मारवाड़ी समाज-सेवकों में श्री हिम्मतसिंहका का स्थान सबसे ऊपर है। आप के विचारों में संकीर्णता लेश मात्र भी नहीं पाई जाती। आडम्बर और स्वार्थ पूर्ण जीवन से आप कोसों दूर हैं इसी लिये आप का प्रत्येक कार्य इतना प्रभावशाली और यशस्वी बनता है जितना एक महान तपस्वी का हो सकता है। योग्य लेखक और साहित्यिक के रूप में आप के यह गुण सोने की सुगंधि बन जाते हैं।

बाबू ब्रजलाल जी बियाणी

आप अकोला के विख्यात गांधीवादी नेता हैं। कई बार जेल की यातनाएँ सह कर आप ने अपनी उत्कट देश भक्ति का पूर्ण परिचय दिया है। आप को बरार-केशरी की उपाधि भी प्राप्त हो चुकी है। आप एक कुशल पत्रकार और प्रौढ़ लेखक हैं। आप स्टेट कौंसिल के सदस्य भी हैं। आप इस बार अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन (छठवें अधिवेशन) के अध्यक्ष चुने गये हैं।

श्री सेठ ईश्वर दास जालान एम० ए० बी-एल० एटर्नी

आप कलकत्ते के सुप्रसिद्ध जालान वंश के रत्न हैं। आप एटर्नी एट-ला, कुशल

व्यवसायी और हिंदी तथा अंग्रेजी भाषाओं के सुयोग्य लेखक हैं। सामाजिक सेवा के क्षेत्र में आपने अपना स्थान आदरणीय बना लिया है। आप अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन के पंचम अधिवेशन के सभापति रह चुके हैं।

श्री काली प्रसाद खेतान

आप कलकत्ता के खेतान परिवार के विख्यात बैरिष्टर, प्रौढ़ विचारक तथा अमूल्य साहित्यिक हैं। आप हिंदी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं के लेखों में अपने गंभीर विचार प्रकट किया करते हैं। हिन्दू संस्कृति के प्रति आप का प्रेम, वेद, शास्त्रादि का अध्ययन तथा सामाजिक सेवा का भाव बहुत ऊँचे दरजे का है।

श्री राम गोपाल माहेश्वरी बी० ए०

आप नागपुर के विख्यात पत्रकार हैं। बाबू ब्रजलाल जी बियाणी द्वारा संचालित हिन्दी दैनिक "नव-भारत" (नागपुर) का आपने बहुत दिन तक योग्तता के साथ संपादन किया है। आप का स्वभाव कोमल और मिलनसार है तथा राजनीतिक और अर्थशास्त्रीय ज्ञान अति विशाल है। सामाजिक विषय पर आप के लेख अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं।

श्री भरत व्यास

श्री व्यासजी चूरू के नवयुवक कवि हैं। ये सहृदय कवि, हृदयग्राही गायक और स्फूर्तिपूर्ण नवयुवक हैं। प्रमुख नवयुवक कलाकारों में इनकी गणना की जाती है। इनकी कविताओं में राजस्थान का वैभव और समाज के उत्थान की पुकार रहती है।

श्री मनोहर शर्मा बिसाऊ

शर्माजी बिसाऊ (जयपुर) के निवासी और राजस्थान के प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं। स्वयंभूत प्रतिभा और भावुक हृदय ने आपको काव्य सृजन की अच्छी शक्ति प्रदान की है।

श्रीयुत् डा० दौलतसिंह कोठारी
एम० एस-सी०, पी० एच-डी०

आप मारवाड़ी समाज के उन कतिपय प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों में हैं, जिनके कारण समाज को गर्व है। सौर-विज्ञान सम्बन्धी आपके भाषणों के कारण विज्ञान-जगत में आपकी काफी ख्याति हुई है। आपका नाम भारतवर्ष के बोस, रमन आदि तीन-चार वैज्ञानिकों के साथ लिया जाता है।

तोषणीवाल बन्धु

मारवाड़ी समाज के प्रतिभाशाली रेडियो विशारद डा० गोविन्द राम तोषणीवाल का जन्म सन् १९०३ ई० में अजमेर में हुआ था। सन् १९२६ ई० में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से एम० एस-सी० की परीक्षा में इन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया और इन्हें इलाहाबाद युनिवर्सिटी की तरफ से "युनिवर्सिटी रिसर्च स्कालर-शिप" प्रदान की गयी। सन् १९३६ ई० में इनको "डाक्टर आफ साइन्स" की उपाधि मिली और ये अमेरिका की 'इन्स्टीटूयूट आफ रेडियो इञ्जीनियर्स' के सदस्य और भारत की 'नेशनल एकेडमी आफ साइन्स' के फेलो निर्वाचित हुए। इनके अथक परिश्रम और अटूट धैर्य्य से इलाहाबाद युनिवर्सिटी के वायरलेस डिपार्टमेन्ट की उन्नति हुई और संगठन भी हुआ।

श्री भगवान दास जी तोषणीवाल बी० एस-सी० (आनर्स), एम-एस-सी० एस० एम० का जन्म सन् १९१३ ई० में अजमेर में हुआ था। विद्यार्थी जीवन में ये सभी परीक्षायें प्रथम श्रेणी में पास करते रहे। एम-एस-सी० की परीक्षा में 'वायरलेस' के विषय को पढ़ने वाले छात्रों में ये प्रथम हुए। एक मारवाड़ी युवक की यह सफलता अभूतपूर्व थी। ये सेठ रामकृष्ण जी डालमिया द्वारा अमेरिका, रेडियो व्यवसाय में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजे गये।

वहां इन्होंने एक प्रसिद्ध इन्सटीटूयूशन में अध्ययन करना आरम्भ किया और इन्हें 'मास्टर आफ साइन्स' की डिग्री इलेक्ट्रिकल इञ्जीनियरिंग में विशेष सम्मान के साथ दी गयी।

इन्होंने अमेरिकाके 'रेडियो कारपोरेशन आफ अमेरिका' में एक साल तक काम किया और रेडियो के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। तोषणीवाल जी ने ज्ञान प्राप्त करने के लिये अमेरिका के अलावा और बहुत से देशों का भ्रमण किया।

श्री हीराचन्द दूगड़

हीराचन्दजी भारत के प्रसिद्ध चित्रकारों में से हैं। इन्होंने चित्रकला का अभ्यास कलकत्ते के 'आर्ट स्कूल' में आरम्भ किया था। तदन्तर ये भारतीय चित्रकला के प्रसिद्ध आचार्य श्री नन्दलाल बोस से कलाका विशद ज्ञान ग्रहण करने के लिये शान्ति निकेतन में जाकर रहे और आचार्य बोस के निर्देश से निरन्तर उन्नति करते गये। इनके प्रसिद्ध चित्रों में 'माता और पुत्र' बहुत ही उत्कृष्ट है। हीराचन्द जी की चित्रकला में नर-सौन्दर्य और सूक्ष्म-अंकन तथा भाव-व्यञ्जना की विशेषता रहती है। हीराचन्द्र जी ओसवाल हैं। जियागंज (बंगाल) में इनका निवास स्थान है। इनकी प्रेरणाने इनके प्रतिभाशाली पुत्र श्री इन्द्रचन्द्र दूगड़को आज कलाके क्षेत्रमें यशपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

श्री इन्द्रचन्द्र दूगड़

श्री इन्द्रचन्द्र दूगड़, जियागंज (बंगाल) के प्रसिद्ध चित्रकार श्री हीराचन्द जी दूगड़ के सुपुत्र हैं। कलाकार पिताकी सुरुचि इनमें बाल्यावस्था से ही विद्यमान रही है और ये आरम्भ से ही चित्र निर्माण के लिये प्रयत्न करते रहे हैं। रामगढ़ कांग्रेस के समय में इन्हें अपने प्रयत्न का वांछनीय फल प्राप्त हुआ। कांग्रेस के उक्त अधिवेशन में रामगढ़ के प्राचीन वैभव को चित्रित करने के लिये देशके चुने हुए चित्रकारों को बुलाया गया था। इन्द्रचन्द्र जी भी उन्हीं में से एक थे और वह पहला अवसर था जब मारवाड़ी समाज के इस उदीयमान कलाकार को भारत जान सका था। चित्रकार के साथ ही वे शिल्प-कला भी जानते हैं और कलकत्ते के अच्छे गायकों में इनका नाम लिया जाता है। मारवाड़ी-जगत को इनकी प्रतिभा पर गर्व करना चाहिये और इनके चित्रों का आदर कर अपना कला प्रेम प्रकट करना चाहिये।

श्री लक्ष्मीचन्द चोरड़िया

ये जबलपुर के युवक हैं और अपने स्वावलम्बन से बम्बई के प्रसिद्ध कला-विद्यालय जे० जे० स्कूल आफ आर्ट्स के ग्रेजुएट हैं। इनकी कई कृतियां फिल्म पत्रों तथा 'बम्बे-क्रानिकल' में प्रकाशित हुई हैं।

महिला-साहित्यिक

आजकल शिक्षा और जागृति के प्रभावसे हमारे समाज की महिलाओं में भी साहित्य और कलाके प्रति रुचि पैदा हो गयी है और आज हमें इस बातका दावा करने का हक हो गया है कि हमारे समाज में महिला लेखिकाओं का अभाव नहीं है। कुछ लेखिकाओं और कवयित्रियों का परिचय निम्न प्रकार है।

श्रीमती दिनेशनन्दिनी चोरड़िया

इनका जन्म उदयपुर में हुआ है। गद्यगीत लिखने में ये बहुत सिद्धहस्त हैं। विशाल भारत, सरस्वती आदि प्रमुख मासिक पत्रों में आपकी रचनायें प्रकाशित होती रहती हैं।

श्रीमती रत्नकुमारी देवी

ये श्री गोविन्द दास जी की सुपुत्री हैं। बाल्यकाल से ही इन्हें कविता-कहानियों से प्रेम है। इनकी कविताओं का संग्रह 'अकुर' नामसे प्रकाशित हुआ है। इन्होंने 'सेठ गोविन्द दास जी की जीवनी' लिखी है।

श्रीमती नन्दू बाई ओसवाल

श्री नन्दू बाई कई वर्षों से अपनी कहानियों और कविताओं से हिन्दीकी सेवा कर रही हैं। इनकी कविताओं में नये प्रकार की विचार धारा है। कई वर्ष पहले कलकत्ते से प्रकाशित होनेवाले 'ओसवाल नवयुवक' नामक मासिक पत्रका महिला अङ्क इनके सम्पादकत्व में निकला था।

श्रीमती राधादेवी गोयनका

महिला जागरण और समाज सुधार में इनका प्रमुख अनुराग है। ये कहा-

नियां और अधिकतर निवन्ध लिखती हैं। आपका निवास-स्थान अकोला है। समाज सुधार के क्षेत्र में मारवाड़ी महिलाओं में आपका स्थान प्रथम पंक्ति में आता है।

श्रीमती "चंडी"

आपका जन्म कलकत्त के संभ्रान्त रुइया परिवार में हुआ। हिंदी अंगरेजी की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आपका विवाह "रुद्र" जी के साथ हुआ। आपकी कवितायें मार्मिक होती हैं। लोक-ख्याति से आप दूर रहना अधिक पसन्द करती हैं।

श्रीमती विद्यावती देवड़िया

आप नागपुर के प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्ता श्री पन्नालाल श्री देवड़िया की धर्मपत्नी हैं। स्वाधीनता संग्राम में आपने अपने नगर में कई बार अदभुत साहस का परिचय दिया है। आपका साहित्यिक जीवन भी राष्ट्रीय जीवन से किसी प्रकार कम नहीं है। कवि सम्मेलन में जाकर आप स्वयं कविता पढ़ती हैं। आपकी रचनायें सरल और सरस होती है।

वर्तमान कवियों की रचनायें

(समाधि के पत्थर से,)

शिला के ऐ छोटे से खण्ड,
चिरन्तन काल-प्रवाह-
मिला क्या तुम्हें प्रकृति का दण्ड ?
सह रहे हिम-जल-दाह !
यहां है जीवन शून्य,
शून्यता का अपार सहकार;
शून्य से अस्थि-भवन-पर, मित्र,
तुम्हारा सूना भार !

धूलि की ढेरी पर हो खड़े,
छेड़ते जीवन-तार,
अनिल के स्वर में स्वर को जोड़
कर रहे हाहाकार !

......गया बचपन, कल यौवन प्रात,
खेल-खा-भोग विभव दिनरात,
जरा आ गई लिये कृस-गात—
मृत्यु आमन्त्रण सी अज्ञात।

मुन्द गये पलक-कपाट,
रह गये सूने से निःश्वास।
बिखर जायेगी हाट,
शीघ्र इतनी—क्या था विश्वास !

......मिला सबको रजकण में बास !
रह गया पीछे विभव विलास,
दैन्य का वह निर्मम सा हाल,
विजय का वह मादक उल्लास;

सभी को लघु सा प्रस्तर खण्ड !
विभव आदर न दैन्य का दण्ड !

.... मृत्यु में इस जीवन की रात,
उदय नव जीवन सूर-प्रभात,
इसी क्रम पर चलता संसार—
स्रजन के स्वर में है संहार !

निधन में जीवन का सन्देश,
म्लान कुसुमों में कलिका-देश !

विजन के नीरव हास !
हास है, या ममता का रुदन,

अतृप्त आशाओं का क्रंदन;
या कि जीवन की अन्तिम स्थिति—
कर रही नव से आलिंगन—
उसी के साक्षी चिर जीवन!

—दुर्गा प्रसाद झुंझुनूंवाला बी० ए० "व्यथित",

"व्यथित" जी की उपर्युक्त पंक्तियोंमें भावोंकी विदग्धताका उद्दीप्त प्रमाण मिलता है; साथ ही उनके पास शब्दों की भी अतुल राशि होने की साक्षी मिल रही है। ऐसे युवक कवियों से जाति और देश को बहुत बड़ी आशा है। आप कुशल-कहानीकार भी हैं।

जब जब जाग्रत होती तरंग,
मैं उठता हूं तूफान-संग,
लहरों की ताण्डव-तालों पर;
लहरे मेरा यौवन-बिमान ॥१॥

पीता हूं दुनियाँ की हाला,
मैं झूम रहा हूं मतवाला,
अधरों से पीकर विष-कराल,
नयनों से देता सुधा-दान ॥२॥

शूलों के जीवन-पथ पर चल,
बिखराता हूं फूलों के दल,
मैं कठिन अमा का हृदय चीर,
छिटकाता हूं छविमय विहान ॥३॥

जब आता सीमा का घेरा,
बनता असीम जीवन तेरा,
मैं खण्ड-खण्ड करता जग को,
उस पुच्छल तारे के समान ॥४॥

—श्री सूरजमल चाण्डक

प्रस्तावों की तोप

शब्दाडम्बर तीरों से क्या जड़ता दुर्ग ढहा-लोगे ?
प्रस्तावों की तोपों से क्या विजय-सफलता पा लोगे ?
प्रस्तावों की तोप चलाते बीत चुका है कितना काल
वही रंग है, वही ढंग है, वही आज भी है बदहाल
एकत्रित हो, शांत चित्त से सोचो इसका ठीक निदान
अंट संट औषधि द्वारा क्या होगा कठिन रोग से त्राण
दूर किनारे बैठ कहां तक जलको थाह लगा लोगे ?
प्रस्तावों की तोपों से क्या विजय-सफलता पा लोगे ?
धनिक बन्धु अपनी थैली का मुक्त हस्त से मुंह खोलो
हृदय तंतु में पड़ी हुई वह गांठ कृपणता की खोलो
अर्थदास मत बनो अर्थ की यह असत्य ममता छोड़ो
संपद की ही बहिन विपद् है उस से क्यों नाता जोड़ो
अर्थवाद की जीर्ण नावको कबतक और संभालोगे ?
प्रस्तावों की तोपों से क्या विजय-सफलता पा लोगे ?

—श्री फूलचन्द परशुरामपुरिया

दुर्गादास

पातल दुरगो दो जणा, सुत को राख्यो कोल ।
राजस्थानी खास का, ये हीरा अनमोल ।।१।।
ईं धरती की लाज अब, मायड़ थारै पास ।
कर ऊँधी तरवार यूं, बोल्यो दुर्गादास ।।२।।
वो छत्री, रजपूत वो, वो सांचो सिरदार ।
नित घोड़े की पीठ पर; नित कर में तलवार ।।३।।
सतवादी असवार सूं, ऊँचो जीवन नांय ।
पायो ऊँचे भाग सूं, ईं धरती पर आय ।।४।।
वो कमधज नरसिंघ सो, तेज रूप औतार ।

प्राजलनै संसार सूं काड्यो राजकुमार ॥५॥
साम धरम को रूप तूं मारवाड़ की ढाल।
तन राख्यो, राख्यो सुजस, राख्यो देश विशाल ॥६॥
वो सोजत को शेर वो, देसूरी को वीर।
मारवाड़ को च्यानणो, वो दुरगो रणधीर ॥७॥
मारवाड़ की भीम सूं गूंजै वाणी एक।
जद पड़िया दिन सांकड़ा, दुरगो राखी टेक ॥८॥

—ममनोहर शर्मा बिसाऊ

श्री भँवर मल सिंघी

आप एक नवयुवक पत्रकार तथा उत्साही लेखक हैं। भावुकता आप के अन्दर उमड़ती हुई सी प्रतीत होती है। आप अधिकतः गद्य गीत लिखते हैं और उस में सफल रहते हैं। आप के गद्य-काव्यों का एक संग्रह "वेदना" नाम से प्रकाशित भी हो चुका है।

कवि !

"रस कल्लोलिनी की मूर्छनामय फेनिल धारा में अमित विश्व के नेत्रों को डुबो कर, उन से नया सौन्दर्य, नयी ज्योत्सना भर देने वाले कवि को मैंने देखा। वह थी उस सौंदर्य-योगी की एकान्त साधना—उसकी चिरनवीन रस-वाटिका, जिस में तेरी तृप्ति ने अपने नेत्र-पल्लव बिछाये थे। वहीं जीवन को उन सपनों की पूंजी मिली थी—जिनकी स्वप्निल समाधि आजतक नहीं टूटी।

हे स्वप्नों के स्वामी ! तुम्हारे पदों में यह जीवन की प्रेरणा किसने भरी है ? यह किसका स्वप्न है ? हे रसमय !

"..................तू अमर हो, हे कवि की वेदना !"

—भँवर मल सिंघी

मरुधरा—मधुर—मधुरिम—मधुरा !
मधु-मधुमा का अंचल बिखरा।
सुनहरे दिवस, रुपहरी रात,

हीरक-संध्या, मंगल प्रभात,
जग-मग जग-मग प्रति सांझ प्रात,
चम-चम बालू का कनक गात।
सौन्दर्य-सौख्य-सागर निखरा।
मरुधरा०।

घृत की नदियां, पय के सागर,
मधु के झरने, मक्खन-आगर,
कल-कल बहते रहते प्रति पल,
भरले कोई अपनी गागर।
पावन, पुनीत, पय-पयोधरा,
मरुधरा०।

काचर—काकडिये—रुचिर, बेर,
पैसे—पैसे के सवा सेर।
दो पहर सुबह संध्या—सबेर,
देखो नित बिकते ढेर ढेर।
रहता नित आंगन हरा भरा।
मरुधरा०।

... ...

कुछ अज्ञानी कहते बंजर,
कुछ कह देते इसको उजाड़,
पर कभी किसी ने क्या कवि की—
आंखों से देखा मारवाड़ ?
उज्जवल, प्रचण्ड, भू—स्वर्गवरा।
मरुधरा०।

बालू-कण-सम इन हीरों में,
कृषकों के भग्न कुटीरों में।

पाया हमने जग का वैभव,
मरुधर के मधुर मतीरों में।
वैभव लख गर्वित वसुन्धरा।
मरुधरा—मधुर मधुरिम—मधुरा॥

— श्री भरत व्यास

कुछ न पूछो क्या करेंगे।
फूंक देंगे प्रेम का इक—
मन्त्र हम सारे जगत में
प्रेम के इक विन्दु से हम सिन्धु कितने ही भरेंगे।
कुछ न पूछो क्या करेंगे।
हम करेंगे घोर तम में
भी, उजाला ही उजाला
विश्व को हम स्वर्ग, नर को देवता करके मरेंगे।
कुछ न पूछो क्या करेंगे।
हम करेंगे—हम करेंगे
शक्तिमय बलिदान ऐसा
देख लेना तुम हमारी याद दुश्मन भी करेंगे॥

—श्री किशन लाल भालोटिया

सूख चलीं पंखुड़ियाँ, माली,
जब वसन्त की ऋतु थी माली,
नव लतिकाओं की हरियाली,
डाल-खिले फूलों की लाली,
सन सन बह बयार मतवाली,
करती थी उर में नव-स्पन्दन,
स्पन्दन- जिसमें था अभिनन्दन,
नैसर्गिक रुचिर सृष्टियों का,
विभु की शुभ दया-दृष्टियों का,

परिवर्त्तन मय जग यह, माली,
हरियाली ना, अब पैमाली,
लाली ? तपन-तापने ले ली,
पिक-रव ? वह तो बना पहेली,
पागल सा, आंख भर, माली,
क्या निहारता नभ में खाली,
"रोती कलियाँ लख पैमाली,
सूख चलीं पंखुड़ियाँ, माली

—श्री निरजन लाल भगानियाँ

'मा' र दहन ! उठ, मौन तपस्वी ! खोल प्रभामय नेत्र विशाल ।
'र' म्य, परम प्रिय, तव भारत का, लख करुणामय करुणा हाल ।।
'वा' ल, वृद्ध बनिता, जड़ता वश, पड़े नींद में यहां "मराल" ।
'डि' म डिम बजा जगा डमरू, कर, देश जातिका उन्नत भाल ।।
'छा' ल वसन ! बढ़ रहे, जगत के; अन्य देश सत्वर इस काल ।
'त्र' य लाकेश्वर ! द्वेष त्याग, हो; पुनः अग्रसर भारत लाल ।।
'सं' कट हर ! जिस से कट ज्यावे; अगणित बाधाओं के जाल ।
'घ' न घन गंग भुजंग निनादित; दिखला ताण्डव नृत्य कराल ।।

——श्री पूरणमल कावरा "मराल"

विज्ञान का आभास पा क्या सृष्टि का कुछ पार पाया ?
नियति पर अधिकार पाया ?
मेघ-त्यक्ता चपल विद्युत अवनि पर जब झपट आई,
कड़क की हुंकार घातक, प्रलय की जब लपट लाई;
वृक्ष, पशु, नरने अरे ! क्या त्राण-हित आधार पाया ?
बच तनिक संसार पाया ?
पूर्णिमा की रात्रि में था खिल उठा उडु-दल गगन में,
इन्दु झूमा, चन्द्रिका थी खिल उठी बन औ सदनमें;

राहु लपका, कौन उस पल रोक उसका वार पाया ?
चन्द्र ने निस्तार पाया ?
शस्य शाद्वल भूमि विस्तृत झूमती उत्फुल्ल सी थी,
नगर औ उद्यान सब पर व्याप्त मोहक एक श्री थी;
भूकम्प के पश्चात् क्या फिर बच वहीं शृंगार पाया ?
क्या न सब कुछ क्षार पाया ?
बुद्धि कुण्ठित और ऐहिक-ज्ञान को निस्सार पाया।
कुछ न उसका पार पाया ॥

श्री पूर्ण चन्द्र टूंकलिया, एम० ए० विशारद

कब

जीवन-पथ-पथरीली घाटी से, विश्राम मिलेगा कब !
अरुण उषा से विपन्निशा, अवसान-विलास मिलेगा कब !!
भव्य भाग्य भास्कर समुदय से, मानस कमल खिलेगा कब !
दीन रुदन से दीन-बन्धु का, अभ्बल अचल हिलेगा कब !!
भाग्य-गगन में नव प्रभात की प्रभा प्रभासित होगी कब !
करुणामय की करुण कादम्बिनी विभासित होगी कब !!
मेरे जीवन-वनमें माधव, महिमा विलसित होगी कब !
हृदय-कुञ्ज में परम प्रमुद, फुलवारी विकसित होगी कब !!
आशा-कोकिल के कलकल से, व्याकुल कल पायेगा कब !
सरस-सुमन पर भाव भ्रमर भी, आकर मँडरायेगा कब !!
सुख-समीर मन वनस्थली की, लतिका सरसायेगा कब !
अनुरक्तों को प्रेम भक्त वत्सल का हरषायेगा कब !!

पं० महाबीर प्रसाद जोशी

जीवन जन्म मरण में पीड़ा,
रहती साथ लगी छाया सी।

हंसी-खुशी, आह्लाद सभी में,
छिपी वेदना है अंकुश सी॥
हंसते ही मेरे अन्तर में,
आह एक उठ सी आती है।
हर प्रात सुनहरी किरणें ले,
क्यों धड़-धड़ करती छाती है॥
... ...
प्रच्छन्न बुद्धि औ क्षुब्ध हृदय,
रहता है मेरा क्यों अविकल।
कैसे समझूं महा ज्योतिका,
क्षुद्र अंश हूं परहूं उज्ज्वल॥
क्या यह है सच मृत्यु अंत है,
शून्य बिन्दुमें विश्व शून्य।
विस्तृत युग आत्मा प्रकाशका,
शून्य शून्य एकान्त शून्य है॥

—प्रतापसिंह नवलखा एम० ए० एल—एल० बी०

तुलसी का गुण गान

तुलसी की इब वर्ष गांठ है
घर घर उत्सव सो छायो
'एमां एमां' तुलसी कुण हैं
घरमें कै, तो बालक आयो।
... ...
राजापुर थो नाम गांव को
ओतार लियो वै में तुलसी
बापू को थे नाम आतमो
माता प्यारी थी हुलसी।
... ...

रत्नासूँ बो ब्याह करयो जद,
परयाँ प्रेम की धार बही
चाँद दूज को बढ़ ज्यावै ज्यूँ
नेह बढ़्यो बांको त्यूँ ही।
एक बात से भया बिरागी
झट जंगल की राह धरी
देश देश में घूम घाम कर
'राम राम' की खोज करी।

... ...

भया जगत का महा कवि बै
चोखी रामायण रच कर
भया हिन्द का महा सन्त बै
राम भक्ति घर घर भर कर

... ...

धन्य, धन्य, या आज घड़ी है
धन्य, धन्य, हां इन्हें सब भी
रामचन्द्र और तुलसी देवै
यो शुभ दिन इब ओरूं भी

... ...

हाथ जोड़कर दोनूँ सेवक
करी बिनती जी भर कर
ओ तुलसी, तूँ मर्त्य लोकमें
ले औतार दया कर कर।

श्री रतनलाल जोशी

कन्हैया लाल सेठिया

आप कलकत्ते के उदीयमान स्वाभाविक कवि हैं। आपकी दो एक रचनाओं का अर्थ गौरव तथा लालित्य बहुत ऊंचे दर्जेका हुआ है।

रह गई अब तो कहानी।
मेवाड़ का गौरव पुराना,
और उसका वीर-बाना,
बस, उसी जौहर-अनल में जल चुकी उसकी जवानी!
प्रबल यवनों से लड़ा जो
प्राण देकर भी अड़ा जो
आज घुटने टेक बैठा है, वही मेवाड़ मानी!
रह गई अब तो कहानी।
भग्न उसके स्तूप सुन्दर
कह रहे हैं आह भर भर—
थे कभी हम गीतमय-भी, पर हुई गाथा पुरानी!
रह गई अब तो कहानी।
मौन वह मीरा-सदन है,
मौन, जल, थल, वायु, वन है,
गूंजती केवल उलूकों की वहां स्वच्छन्द वाणी!
रह गई अब तो कहानी।
पैर रख आगे संभल कर
बोल धीरे बात मत कर
धूलमें-इस, सो रही है, पद्मिनी, वह रूप-रानी!
रह गई अब तो कहानी।

— कन्हैया लाल सेठिया

'अनुरोध'

राजस्थान धराके वासो,
सत्वर शयन-कक्ष त्यागो,
यह तंद्रा है महानाशकी,
क्षणमें तुम इससे जागो॥ १॥

समर भूमिमें तुम्हें बुलाती,
रणभेरी की वह आवाज,
मत तुम गीदड़ बनकर बैठो,
कायरता का त्यागो साज ॥

आओ हमसब मिल कर करलें,
राजस्थानी का उत्थान,
शीघ्र बजें वे बाजे फिरसे,
जो प्रताप की छेड़ें तान ॥

राणा सांगा के प्रिय सुत तुम,
क्यों बैठे हो आज उदास,
राजस्थान किये बैठा है,
तुमसे ही तो सारी आश ॥

दुर्गादास जहां जन्मे थे,
वही धरा अब रोती है,
इतने पर भी लाल वहां के,
और लालियां सोती हैं ॥

उठो, उठो, अब बहुत सो चुके,
करना है तुमको उत्थान,
मत होने दो पतन देशका,
है यदि तुममें कुछ अभिमान ॥

—श्री उल्लास चन्द्र शर्मा "सरल हृदय" रतनगढ़ ।

कवि आज पिला मधुका प्याला,
मदमत्त बने पीने वाला।

नवरङ्ग नया संसार भरा,
नव जागृति का अंगार भरा,
जाज्वल्यमान निर्माण कला,
भूकम्पी हाहाकार भरा !

वीरत्व युद्ध शृंगार भरा,
अगणित झंझा झंकार भरा,
सागर सी चंचल लहरों का—
प्रलयंकर नव हुंकार भरा

भड़का दे जो अंतर्ज्वाला,
प्याला ज्वालामय भर प्याला !

शिशुओं की चञ्चल तान जगे,
भैरव रव भीषण गान जगे,
छोटे नन्हें बाहुद्वय में—
लड़ जाने का अभिमान जगे !

अपनेपन की कुछ आन जगे,
गोरा बादल की शान जगे,
पद्मिनी सती महामाया की—
प्रज्ज्वलित चिताका ध्यान जगे

प्रगटे पावन रवि उजियाला !
भर नव सौरभ जीवन प्याला !!
.........श्री बालकृष्ण व्यास

श्री रघुवीर शरण "मित्र"

आप हमारे समाज के एक प्रखर ज्योतिमान राष्ट्र-कवि तथा उत्साही समाज सेवक हैं। आप प्रायः जयपुर में ही रहा करते हैं। समाज और राष्ट्र का तरुण मारवाड़ी समाज आपके पथ-प्रदर्शन का अभिलाषी है। "परतन्त्र" नाम से आपका जो मौलिक काव्यग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है उसके द्वारा आपने देश की राष्ट्रीय आत्मा में एक नयी बिजली भर दी है। "परतन्त्र" के दशम सर्ग की "कवि" शीर्षक आपकी रचना यहां दी जाती है:—

कवि ! लगा आग; कवि ! जगा भाग,
धधका ज्वाला; कर दे विनाश ?

मां की आंखों के आंसू लख,
उठ दमन देख; कर दमन नाश,
तेरे हाथों में राज छत्र,
रे! पहना मां को राज-वस्त्र,
तू काट बेड़ियां कर स्वतंत्र,
तुझ पर ही मां को बंधी आश,
कवि लगा आग! कवि जगा भाग,
धधका ज्वाला; कर दे विनाश!

बलिवेदी पर सर चढ़वा दे,
धड़ की दीवारें चुनवा दे,
शोणित से कर दे राजतिलक,
प्यासे भालों की बुझा प्यास,
कवि लगा आग! कवि जगा भाग,
धधका ज्वाला; कर दे विनाश!

कवि! मां के पय की तुझे शपथ,
भूलों को फिर दिखला दे पथ,
विप्लव का अंगारा बनकर—
अब निकले तेरा श्वास-श्वास,
कवि लगा आग; कवि जगाभाग,
धधका ज्वाला, कर दे विनाश!

तेरी कविता अवतार बने,
जननी का सच्चा प्यार बने,
तलवार बने, अंगार बने,
या दानव दल का बने आश,
कवि लगा आग; कवि जगा भाग,
धधका ज्वाला; कर दे विनाश!

कविता व्याली विकराल बने,
खांड़ा, खप्पर, असि-ढाल बने,
शिव-नेत्र बने, जय-नाद बने,
रिपु के शोणित की बने प्यास,
कवि लगा आग; कवि जगा भाग,
धधका ज्वाला, कर दे विनाश!

गा दे भारत की प्रबल व्यथा;
गा दे वीरों की अमर कथा,
रे युग युग का सन्देश सुना,
भारत में फिर दिखला प्रकाश।
कवि लगा आग; कवि जगा भाग,
धधका ज्वाला; कर दे विनाश!

तलवारों के शृङ्गार जाग,
प्रत्यंचा की टङ्कार जाग!
युग परिवर्तक कर परिवर्तन—
कर पूर्व सभ्यता का विकास!
कवि लगा आग; कवि जगा भाग,
धधका ज्वाला, कर दे विनाश!

श्री "रुद्र" जी

रुद्र जी हिन्दी और अंगरेजी के उदीयमान लेखक हैं। हिन्दी कविता में आपकी अच्छी गति है। रौद्र रस पर ही आपकी क़लम अधिक उठती है।

परिचय

विचित्र हूं विकट हूं, भयंकर हूं विकराल हूं मैं।
योगी हूं, वैरागी हूं नवसंत, नौ निहाल हूं मैं!
न ब्राह्मण न शूद्र हूं, न ईर्ष्या न मोह मद हूं मैं,

न पाप हूं न पुण्य हूं, न शोक हूं न रोग हूं मैं।
न पढ़ा लिखा न सीखा-नव दर्शन का दर्शन हूं मैं।
न पागल न पंडित-पर-दुष्ट दमन दंड हूं मैं!
हिटलरों को हिट करता, मिस्टरों को मिस्ट करता,
भीम हूं, बीरेन्द्र हूं औ "चंडी"-पति "रुद्र" हूं मैं!

"शहर"

सीधी कुबड़ी काली सड़कें, सड़कों पर बाजार यहां हैं।
ऊँचा तोंद सेठ साहब का, घण्टाघर मीनार यहां हैं।

चांदी कटती सोना कटता, कटते यहां हवा औ पानी।
यहां चांदनी रात सुरा को- प्याली पर होती कुर्बानी।
यहां प्रकृति को कौन देखता, करते सब अपनी मनमानी।
पलने पर बचपन कटता है बेसुध कटती यहां जवानी।

जीवन का सौदा है महंगा, महंगी का व्यापार यहां है।
सीधी कुबड़ी काली सड़कें सड़कों पर बाज़ार यहां हैं।

यहीं श्वान रहते गद्दों पर, सड़कों पर भुखमरे भिखारी।
यहां दीनता रोती रहती, यहां प्रेम बनता व्यापारी।
मिट्टी भी पैसे से मिलती, पानी की भी कीमत भारी।
यहीं बेच कर नींद हौसले, लेते रहते लोग खुमारी

सुख है पर आनन्द नहीं है, हाट-हसीन हज़ार यहां है।
सीधी कुबड़ी काली सड़कें, सड़कों पर बाजार यहां हैं।

हिंदू मुसलमान लड़ते हैं, जलती यहाँ गज़ब की ज्वाला,
यहीं देवता के सन्मुख भी, बैठा रहता पहरे वाला।
फिरते हैं बेकार ग्रैजुएट, मूर्खराज बनता धनवाला,
कुर्ते पर तिर्छी टोपी है, अजब अजब सब ठाट निराला।

रिक्शा, टमटम घोड़ा गाड़ी, मोटर की भरमार यहां है।
सीधी कुबड़ी काली सड़कें, सड़कों पर बाजार यहां हैं।

यहां मेघ रोते रहते हैं दूब यहीं जलती रहती है,
यहीं गरीबी मन को मारे, तिल तिल कर घुलती रहती है।
सिंह-सपूत यहीं पर क्षत्रिय—शंबुक सेवा में रत रहते,
ऋषियों की संतान ब्राह्मण-शूद्र चरणचित धरते रहते।
सत्व कहां है यहां कलम में, पहरे में तलवार यहां है।
सीधी कुबड़ी काली सड़कें, सड़कों पर बाज़ार यहां हैं।

आंचल की छाया में दिल की धड़कन कौन समझ पाता है,
यहां कौन भूखे नंगों को, सुखद सांत्वना दे जाता है।
यहां मुसल्लम ईमां खोकर, बे-ईमान कहा जाता है,
'एटीकेट' पर दाढ़ी मूछों—का बलिदान किया जाता है।
दिल में दगा प्यार होठों पर, कुछ का कुछ व्यवहार यहां है।
सीधी काली कुबड़ी सड़कें, सड़कों पर बाजार यहां हैं।

यहां पाप और पुण्य खरीदे-जाते, पैसे वाले रहते,
निर्धन अपनी लाज छिपाये, झुक कर बहुत अदब से चलते,
मिलकर यहां कौन रहता है, अलग अलग भाई रहते हैं,
दूर गांव से आने वाले, छल का पाठ यहां पढ़ते हैं।
संकरी गली कृपण के मन सी, सरकारी दरबार यहां है।
सीधी काली कुबड़ी सड़कें, सड़कों पर बाजार यहां हैं।

राजा रहते बाबू रहते, रहते यहां सेठ व्यापारी,
बिजय क्रूरता की रहती है, करुणा फिरती मारी मारी।
सफल खेल 'बाजीगर' का है, अत्याचार कला है भारी,
यहां फूल के पत्ते पीले, कली कली को है बीमारी।
कांटों में दामन फंसता है, पंछी भी लाचार यहां है।
सीधी कुबड़ी काली सड़कें, सड़कों पर बाज़ार यहां हैं।

यहां प्रवंचक जादूगर का, सिर चढ़ जादू बोल रहा है,
जल थल अनल अनिल में छिपकर अमृतमें विष घोल रहा है

हंस पराजित हैं उलूक से, सत्य धर्म का नाश यहां है,
'चंडी' जीभ निकाल रही है, शुद्ध रक्त की धार कहां है ?
घर में पाप पुण्य मन्दिर में—ईश्वर का अवतार कहां है ?
सीधी कुबड़ो काली सड़कें, सड़कों पर बाजार यहां हैं।

—श्रीमती "चण्डी"

राजस्थानी साहित्य के कुछ नये प्रकाशन

राजस्थान के लोक-गीत भा० १ और २ हरिरस।

नागरी प्रचारिणी सभा काशी की बालाबख्स ग्रन्थमाला द्वारा—(१) रघुनाथ रूपक (२) शिखरवंशोत्पत्ति, (३) ढोला मारुका दूहा (४) बीसलदेव (५) बाँकीदास ग्रन्थावली १-२-३ (६) पृथ्वीराज रासो।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग द्वारा प्रकाशित—(१) बेलि कृष्ण-रुक्मिणी के।

पिलानी-राजस्थानी ग्रन्थमाला द्वारा :—(१) राजस्थान को दूहा (२) राजस्थानी बातां (३) बोलावण (नाटक—पारीकजी रचित)

नवयुग ग्रन्थ कुटीर, बीकानेर द्वारा—(१) राजिये के दोहे (२) चन्द्रसखी के भजन (३) कटसुकरणी।

जगदीशसिंह गहलोत—जोधपुर द्वारा—(१) मारवाड़ के ग्रामगीत (२) राजियों के सोरठे (३) राजस्थानी कृषि-कहावतें (४) अमर काव्य।

वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित—(१) नरसी रो माहरो (२) रुक्मिणी मंगल (३) रतनाहमीर री बात (४) डूंगरजी ज्वारजी ख्याल (५) ख्याल हीर रांझा तथा (६) महाराणा जसप्रकाश।

छात्र हितकारी पुस्तकमाला प्रयाग द्वारा प्रकाशित-राजस्थानी साहित्यकी रूपरेखा

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित—डिंगल में वीर-रस।

मारवाड़ी प्रचारक मण्डल धामनगांव द्वारा भी कई ग्रन्थ छपे हैं।

केदारनाथ दारुका—नं० २९ बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता-मारवाड़ी पंचनाटक—ले० भगवती प्रसाद दारुका।

अन्य प्रकाशकों द्वारा—(१) वंशभास्कर (२) डिंगल कोष (मुरारीदान) मारवाड़ आड़ीसंग्रह, मारवाड़ के मनोहर गीत (रामनरेश त्रिपाठी) मारवाड़ी व्याकरण (रामकरणजी आसोपा) राजस्थान के ग्राम-गीत आदि।

इनके अतिरिक्त मारवाड़ी भाषा की १ पत्रिका धामनगांवसे निकली थी। ब्यावरसे भी ऐसा ही एक पत्र निकलता था। मारवाड़ी अग्रवाल, मारवाड़ी माहेश्वरी बंधु, ओसवाल नवयुवक, राजस्थानी पंचराज, चारण, नामक पत्र पत्रिकाओं में मारवाड़ी भाषा की बहुत सुन्दर रचनायें प्रकाशित हुई है जिनमें पंचराज और राजस्थानी विशेष उल्लेखनीय हैं। पंचराज में श्री गुलाबचन्दजी नागौरी की कई रचनायें बड़ी सुन्दर प्रकाशित हुई तथा बरारभूषण बृजलालजी बियाणी आदि अन्य कई सुलेखकों के मारवाड़ी भाषा के लेख थे। मारवाड़ी भाषा के कई प्राचीन भजन, मीरा पदावली, आनन्द धनपद संग्रह, कवीर ग्रन्थावली, रामरसाम्बुद्धि आदि में तथा कई प्राचीन एवं ऐतिहासिक कृतियां ऐ० जेन काव्य संग्रह, प्राचीन गुर्जर काव्य संचय, प्राचीन गुजराती गद्यसंदर्भ और प्राचीन सोरठा संग्रह (जैनेतर) आदि में प्रकाशित हुई हैं। अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन से "समाज सेवक" साप्ताहिक निकलता रहा जिसमें अनेक लेखकों और कवियों की सुन्दर कृतियां सामने आती रहीं परन्तु पता नहीं क्यों आवश्यकता के दिनों में वह पत्र लगभग ३ साल से बन्द है।

जुलाई सन् १९४६ ई० से श्री चन्द्रराज भण्डारी ज्ञानमंदिर भानपुरा (इन्दौर) द्वारा "जीवन विज्ञान" नामक मासिक पत्र प्रकाशित हो रहा है। यह पत्र अपनी कोटि का एक ही है जिसमें जीवनोपयोगी सर्वाङ्गीण साहित्य का सम्पादन होता है। पत्र का समग्र पाठ्यविषय उच्चकोटि के विद्वानों की कृति के ही रूप में रहता है।

परिच्छेद ६

सामाजिक रूढ़ियां

मानव समाज के प्रत्येक प्राणी को जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त एक विशेष प्रकार के नियमित आचार के वृत्त में रहकर कुछ रीति-रस्मों तथा रूढ़ियों का पालन करना पड़ता है। हिन्दू समाज में इन रीति रस्मों और रूढ़ियों को ३ विभागों में बांटा जा सकता है। पहले विभाग में वेद रीति होती है जिसके अंतर्गत शास्त्र और स्मृतियों के आधार पर विभिन्न संस्कारों की विधि रहती है। दूसरी लोकरीति है जिसका आधार देश या समाज के प्रचलित कार्यों का अनुसरण किया है। तीसरी कुलरीति है जिसके अंतर्गत वंश विशेष में, उसके पूर्व पुरुषों द्वारा चलाये हुए कार्यों की आवृत्ति की जाती है।

लोकरीति और कुलरीति के क्षेत्र में ही वह आचार और प्रचलन आते हैं जिनके विषय में अनुसंधान करने पर कोई विशिष्ट कारण, समय और प्रमाण नहीं मिला करता है और ऐसे ही कार्यों को हम रूढ़ि कहा करते हैं। हिन्दू धर्म के स्मृतिकारों ने जीवन के संस्कारों का निरूपण करते समय उनके कारणों तथा उनकी उपादेयता की जैसी मीमांसा की है उसके अनुसार हमारे किसी भी संस्कार को आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर बिल्कुल खरा उतारा जा सकता है। आवश्यक संस्कारों की विवेचना तथा उनके निरूपण के पश्चात स्मृतिकारों ने हिंदूधर्म की विशालता के अनुकूल ही लोकरीति और कुलरीति के पालन की मुक्त आज्ञा दी है जिसका तात्पर्य यही है कि जब जैसी परिस्थिति आवे, तब तैसा हेर फेर लोकनायकों तथा कुलभूषणों द्वारा कर लिया जाय। इसी आदेशानुसार अनेक बातें हमारे समाज के अंदर प्रचलित हो गई हैं जिनको हम ढकोसला और रूढ़ि कहते हैं। यदि हम उन प्रचलित ढकोसलों के कार्यकारण और उनके प्रारंभ के समय का पता नहीं लगा सकते तो यह हमारी अविद्या और कमज़ोरी है, न कि हमारे किसी भी समय के लोकनायकों अथवा कुल-भूषणों का दोष। यदि कोई रूढि आज हमारे

उत्थान में बाधक हो रही है तो वर्तमान लोक-नायक तथा कुल भूषणों का कर्तव्य है कि वह उस रूढ़ि के समय तथा उसके कार्यकारणों का पता लगाकर उसे सर्व साधारण के समक्ष रखें ; उसकी देशकालानुसार अनुपादेयता सिद्ध करें और बाद में उसके स्थान पर किसी श्रेयस्कर प्रचलन की प्रतिष्ठा करें ।

ऐसा करने के लिये सबसे पहले इस बात से सतर्क हो जाना पड़ेगा कि लोक नायक का पद अथवा कुल-भूषणता का दर्जा कितना महान और कितना दायित्व पूर्ण हुआ करता है । इन पदों पर यदि कोई अपूर्ण व्यक्ति आसीन होगा तो उसका सारा कार्य-कलाप आरण्य रोदन होकर ही रह जायगा । और यदि उपयुक्त व्यक्ति उक्त पदों पर आसीन होगा तो उसकी आवाज़ चिरस्थायी बनकर ही रहेगी ।

देश देशान्तर के जलवायु, भाषा संस्कृति, प्रकृति, प्रवृत्ति, इतिहास, धर्म, मत मतान्तर, श्रद्धा, समय, प्रचलन, और प्राचीन पद्धति के रूप में उन्हीं ३ प्रकार की रूढ़ियों का सर्वत्र व्यवहार होता रहता है । इन पद्धतियों और रूढ़ियां को पाश्चात्य देशों में (Tradition) के नाम से गौरवान्वित किया जाता है ।

भारतवर्ष में और विशेषतः हमारे मारवाड़ी समाजमें वे ही पद्धतियां 'रूढ़ि' नाम से अपवाद बन रही हैं । आम तौर से हमारे समाज में इन रूढ़ियों या (Traditions) को विज्ञान के दायरे के बाहर की चीज़ समझा जाता है फिर भी अनायास ही यह बात भी देखने में आ रही है कि कुछ रूढ़ियों का प्रचलन बढ़ता जाता है और वह विशेष अच्छी समझी जाने लगी हैं जिसका स्पष्ट कारण यही है कि वैसी रूढ़ियां आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से अनुकूल बैठती जा रही हैं ।

कुछ ऐसी रूढ़ियों को—जिनका आधुनिक विज्ञान से किसी प्रकार का संबन्ध नहीं पाया जाता—हमारा समाज केवल इसी लिये अपनाये रहनेको विवश हैं कि उनसे अपने कुलगौरव तथा देश-गौरव का प्रतिपादन होता है । यद्यपि आधुनिक मानव समाज की प्रवृत्ति Accurate Sciences (सुचारु विज्ञान) की ओर दिन दूने और रात चौगुने वेग से बढ़ रही है तो भी ललित कला (Fine Arts) की ओर से मनुष्य को कदापि हटाया नहीं जा सकता । हमारी रूढ़ियां अथवा Traditions इन्हीं ललित कलाओं का स्फीत सामाजिक अंग हैं, और चूंकि

उनके आदि प्रचलन का समय बहुत पुराना है, इसलिये आज हमें उनका विकृत स्वरूप ही देखने को मिल रहा है। इतने पर भी आधुनिक इतिहासकार इन्हीं रूढ़ियों के ; रूढ़ियों के इन्हीं विकृत स्वरूपों से किसी देश या समाज की संस्कृति और सभ्यता (Culture and Civilization) का पता लगा लेते हैं।

पाश्चात्य अन्वेषक और इतिहासकारों की उन कृतियों को देखकर हम दंग रह जाते हैं जो हमारी विकृत रूढ़ियों के आधार पर तैयार होकर साङ्गोपांग पूर्ण और चमत्कार सी होकर हमारे सामने प्रगट होती हैं और इस विचार से यह कैसी विडम्बना है कि हम अपनी ही चीज़ों के विषय में बिल्कुल मूर्ख से बने रहकर अपनी उन्हीं रूढ़ियों को ढकोसला कहकर उन्हें बिल्कुल ध्वस्त कर डालने में ही सारी समृद्धि और उन्नति देखने की भूल लिये हुए चिल्लाते रहते हैं। हमारी यह प्रवृत्ति गोस्वामी तुलसीदासजी की इस उक्तिको चरितार्थ करने वाली है कि—

"जेहि सन नीच बड़ाई पावा।
सो प्रथमहिं हठि ताहि नसावा।"

इतना सब कुछ होते हुए भी आज हमारे देखने में यह आ रहा है कि हमारे राजस्थानी या मारवाड़ी समाज में इन रूढ़ियों का एक बवण्डर-सा तैयार हो गया है अथवा यों कहिये कि हमारे समाज की पीठ पर रूढ़ियों का एक गट्ठर-सा लद गया है जिसके भार से और जिसके झोंके से समाज दबा-सा जा रहा है ; लड़खड़ाता हुआ नज़र आ रहा है। इस दयनीय दशा का वास्तविक कारण क्या है? यद्यपि अभी मैं उस स्थिति में नहीं हूं कि रूढ़ि के प्रकरण पर यथेच्छ प्रकाश डाल सकूँ, फ़िर भी तबतक मैं यहां संक्षिप्त रूप से उस विषय की चर्चा करके पाठकों से अवकाश की याचना करूँगा जब मैं इस प्रकरण की एक अलग खोजपूर्ण पुस्तक तैयार करने का प्रयत्न करूँगा।

साधारण पारिवारिक परम्परागत प्रचलन अथवा संस्कारों का दिग्दर्शन करते हुए हमें एक मारवाड़ी कुल के अन्तर्गत सर्वप्रथम गर्भाधानकाल का एक विशेष प्रचलन दिखाई पड़ता है। यह एक ऐसा अवसर होता है जब, क्या होता है, क्या नहीं, का प्रश्न छोड़ कर माता बनने वाली कुल-बधू से बातचीत और प्रश्नोत्तर करने वाली

परिवार की अन्य स्त्रियां उसके प्रति एक परोक्ष मन्द, मधुर हास्य और विनोद के व्यवहार के साथ आकृष्ट होती हैं। विनोदपूर्ण आलाप का यह क्रम शनैः शनैः बढ़ता ही जाता है, यहां तक कि खुल्लम-खुल्ला, हँसी, मज़ाक का ज़ोर हो जाता है और यदि कोई तीसरा पक्ष, विशेषतः यदि वह मर्द हो, उनके इस व्यवहार को देखे तो शायद वह 'अश्लीलता' कह कर नाक भौं सिकोड़ने लग जायगा। साधारण अवस्था पर खड़े होकर देखने से निश्चय ही यह सब बातें कुछ अच्छी प्रतीत नहीं होंगी। तथाकथित सभ्य समाज ऐसे आलाप को हमारी कमजोरी बतायेगा, व्यर्थ की रूढ़ि और असभ्यता का परिचायक बता देगा परन्तु, वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। इस प्रकार के आमोद और आलापों का कुछ मनोवैज्ञानिक आधार है।

जिस प्रकार मानव के कर्म-प्रधान जीवन में रचनात्मककार्य को परमानन्दमय तथा विध्वंसात्मक कार्य को विषादमय समझने की स्वाभाविकता विद्यमान है, उसी प्रकार आधि-दैविक, आधि-भौतिक तथा आधि-दैहिक सभी प्रकार की रचनाओं के अवसर परमानन्दमय हुआ करते हैं। वास्तविकता तो यह है कि आधि-दैविक रचना-क्रम के स्वाभाविक आनन्दाभास पर ही आधि-दैहिक और आधि-भौतिक रचनाओं का प्रसङ्ग आनन्दमय माना गया है।

किसी कुलवधू के गर्भाधान का अवसर समाज के इतिहास की आवृत्ति का स्मारक हुआ करता है ; उत्पत्ति की कल्पना का अस्तित्व यहीं से प्रारम्भ होता है; समाज के अन्दर हमारी, आपकी और सब की उसी ओर दौड़ है, संसार के समस्त व्यापार का केन्द्रविन्दु भी यही है। अतएव निश्चय ही यह अवसर ऐसा है जब रचना के परिचय के उल्लास का बरबस विस्फोट होता है। इस प्रकार का उल्लास सृष्टिगत है जिसका नाना प्रकार का प्रतिबिम्ब पारस्परिक हंसी-मजाक, सन्तोष-प्राप्ति और शान्ति के रूप में प्रगट होता है।

जहां तक उल्लास प्रदर्शन का प्रश्न है, वैयक्तिक रूप में उसका लक्ष्य हंसी मज़ाक़ के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। गायन, वाद्य, सजावट आदि के कार्य वैयक्तिक विनोद के हंसी मज़ाक़ के वह रूप हैं जिनमें वास्तविक उल्लास का भाव कम ही होता जाता है। अतः वैयक्तिक हंसी-मजाक, मीठी चुटकियां आदि का

अस्तित्व एक ऐसी हक़ीक़त है जो मनुष्य के जीवन के लिये अपरिहार्य है। हम तो यहां तक कहने के लिये तैयार हैं कि उसके बिना जीवन को जीवन कहा ही नहीं जा सकता। रह गई अश्लीलता की बात, सो हम यह भी प्रत्यक्ष देखते हैं कि अश्लीलता का प्रश्न प्रायः उस स्थल का विषय हुआ करता है जहां के वातावरण में अनुभूति अथवा प्रवृत्ति सम्बन्धी मनोवृत्ति में कुछ वैषम्य होता है अथवा वातावरण में पारस्परिक पूरक तत्व एकत्र होते हैं परन्तु यह स्थिति पहली स्थिति के आश्रय पर ही रहती है।

अपने इस कथन को हम उदाहरण के रूप में स्पष्ट करें तो हम कहेंगे कि एक स्थान में जब १० आदमी एकत्र हों और उन दसों की अनुभूति और मनोगति एक ही सदृश होगी तब उनके बीच में चलने वाली विनोद वार्ता सीमा से बाहर जाकर भी अश्लीलता के अपवाद से बची रहेगी, परन्तु यदि १० में एक भी आदमी की अनुभूति में वैषम्य होगा तो सीमा के अन्दर ही रहने वाला आलाप भी अश्लील कह दिया जायगा। अनुभूति का समत्व और उसका वैषम्य अवस्था के समत्व और वैषम्य पर ही प्रायः अवलम्बित रहता है। प्रत्यक्ष देखने में आता है कि समवयस्क नौजवानों के बीच चलने वाला आलाप एक बुड्ढे आदमी के लिये कटु आलोचना का विषय बन जाता है, इसी प्रकार समवयस्क नवयुवतियों का पारस्परिक विनोदालाप बूढ़ी दादियों के लिये असह्य सा बन जाता है।

"वातावरण में पारस्परिक पूरक तत्वों का एकत्र स्थान" से हमारा तात्पर्य है कि जहां पुरुष और स्त्री दोनों ही उपस्थित हों वहां सीमा से बाहर का विनोदालाप अश्लीलता की संज्ञा प्राप्त कर लेगा। इसका प्रत्यक्ष कारण हिन्दू समाज के संस्कार हैं जिनके अनुसार पराई स्त्री को माता बहिन या लड़की के रूप में ही समझने का विधान है अतएव उनके समक्ष पुरुषों का विनोदालाप अविहित और पर-पुरुषों के समक्ष एक नारी का विनोदालाप निर्लज्जता की ही संज्ञा पायेगा जब कि भारतीय नारी का लज्जाशीलता का आदर्श संसार भर से श्रेष्ठ और पवित्र माना गया है और जिससे कभी कोई इनकार कर ही नहीं सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं; हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि समवयस्क और

समान अनुभूति के बीच का कोई भी विनोदालाप कभी अश्लील नहीं हो सकता। दूसरी बात अधिक पुष्ट रूप से यह सिद्ध होती है कि विनोदालाप का विषय मनुष्य का एक ऐसा अधिकार है जिसके बिना मनुष्य को मनुष्यता का पद ही नहीं मिलता और न मनुष्यता की पूर्ति ही होती है।

अपने इन तर्कों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि समवयस्क और सहानुभूति के वातावरण में चलने वाले विनोदालाप की जो लोग टीका टिप्पणी करते हैं वस्तुतः उनको टीका टिप्पणी का कोई अधिकार ही नहीं है क्योंकि उस वातावरण के विनोदालाप के सुनने का ही जब उन्हें अधिकार नहीं है तो वे उसकी टीका ही कैसे कर सकते हैं। हिन्दू समाज और हिन्दू संस्कृति का तक़ाज़ा तो यह है कि अनुभूति और वय की विषमता रखने वाले व्यक्ति को उस स्थान से कानों उंगली लगाकर दूर हट जाना चाहिए जहां समवयस्क और समानुभूति वाला समाज विनोदालाप कर रहा हो। यहां जो कुछ लिखा जा रहा है वह किसी एक व्यक्ति का मत नहीं है अपितु यह हिन्दू धर्मशास्त्रों में निर्दिष्ट एक तथ्य है और जिसका समाज के अन्दर केवल एक इतना ही रूप रह गया है कि परिवार का बड़ा बूढ़ा आदमी घर की छोटी कुलवधुओं के प्रायवेट कमरे में जाना, उनके मुख दर्शन तथा उनके सम्पर्क को अपराध समझता है। परन्तु शास्त्र की व्यवस्था का क्षेत्र बहुत विशाल है जिसके अन्तर्गत ४ आश्रमों के समय निरूपण में एक बहुत बड़ा कौशल सन्निहित किया गया था। २५ वर्षतक ब्रह्मचर्याश्रम का पालन एक बालक को गुरुकुल या ऋषिकुल में ही रह कर करना पड़ता था। इसके बाद जब वह गृहस्थ में आता था तो उसके पिता माता गृहस्थ से अवकाश लेकर वाण-प्रस्थी बन जाते थे अर्थात् नवयुवक पुत्र और नवयुवती पुत्रवधू का किसी भी प्रकार का संपर्क प्रौढ़ पिता माता या सास ससुर से नहीं रहता था फलतः अपने अपने पूरक अंगों के साथ सब शांति का जीवन विताते थे, विचार अथवा कार्य कलापों की किसी विषमता का कोई अवसर ही नहीं रहता था। आजकल हिंदू परिवारों के अन्दर सास और पुत्रवधू के बीच, पुत्र और पिता के बीच जिस भयंकर कलह के नग्न चित्र देखने में आते हैं उनका एकमात्र कारण यही है कि समानुभूति और समवयस्कता के गूढ़ तत्व की अवहेलना की जाती

है। यह एक ऐसा पाठ है जिसे सबसे पहले पुत्रवालोंको तथा पुत्र वालियों को ही पढ़ना चाहिए।

अतएव उत्पत्ति अथवा रचना सूचक समय में यदि किसी कुल वधू के चतुर्दिक उसका सजातीय, समवयस्क एवं समानुभूति वाला वर्ग एकत्र होकर विनोदालाप और कटाक्ष करके अपने उल्लास का प्रदर्शन करता है तो किसी भी दशा में इस कार्य को अनुचित नहीं कहा जा सकता। दूसरी ओर वैज्ञानिक सिद्धान्त बताता है कि माता बनने वाली कुलवधू के लिये आवश्यक है कि हर समय उसका रोम रोम पुलकायमान, आमोद पूर्ण, उल्लास और सदाशयता युक्त रहे, किसी भी समय विषाद तथा अवसाद उसके निकट न आने पावे ; हर समय कुलवधू का ध्यान पति की अथवा किसी देव नायक की ओर आकृष्ट रहे। इसका मर्म यही है कि भावनाओं का जो चित्र मनुष्य के मस्तिष्क में चित्रित होता है, उसकी कृति में भी उसी चित्र का निर्माण होता है। मनो विज्ञान के सब से बड़े सिद्धान्त का मर्म भी यही है। (What you think, you make)। एक सगर्भा कुलवधू के मस्तिष्क में जैसी आकृति बसेगी, गर्भ के शिशु का निर्माण उसी की छाया से होगा। भावी माता का चित्त जितना ही उल्लास पूर्ण और विषाद हीन रहेगा, सन्तान उतनी ही स्वस्थ, सुन्दर और सुडौल होगी।

आज कल के परिष्कृत और सभ्य कहे जाने वाले पाश्चात्य समाज में भी ऐसे संस्कारों का प्रचलन है परन्तु शैली में कुछ भेद अवश्य मालूम होता है। वहां के समाज में भावी संतान के लिये कपड़े बुनने ; उसके लिये खिलौने और पोशाक खरीदने के कृत्य हुआ करते हैं और प्रकारान्तर से माता के हृदय में संतान के आकार प्रकार और रंग ढंग का एक काल्पनिक चित्र अंकित किया जाता है।

हमारे मारवाड़ी समाज में गर्भाधान के ८ वें महीने में "नसेरी" नामक एक रूढ़िका प्रचलन है। यह "नसेरी" का शब्द नौसेरी का विकृत रूप प्रतीत होता है। मारवाड़ी भाषा में इस कृत्य को "मातामाई का दलिया" कहते हैं। इस प्रचलन के अनुसार एक विशिष्ट प्रकार की पूजा होती है जिसमें ९ सेर अन्न की खिचड़ी आदि पकाने का विधान है। इस पूजा की खास बात यह होती है कि संबन्धित

परिवार की वधुओं के अतिरिक्त कोई लड़की अथवा कोई पुरुष उसे देखने नहीं पाता। इस रूढ़ि के संबन्ध में हमारा अनुसंधान कार्य चल रहा है। अभी हम इतना ही पता लगा सके हैं कि "माता माई का दलिया" की इस रूढ़ि में गर्भाधान के उपरांत होनेवाले पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कारोंका संबंध पाया जाता है। आधुनिक विज्ञान के आलोक में अब हिंदू ज्योतिष शास्त्र की भी एक स्वतंत्र सत्ता मानी जा चुकी है। प्राणिमात्र के शरीर पर सूर्य, चंद्र, पृथ्वी की गति, १२ राशियों का तथा ग्रहोपग्रहों का प्रभाव दोहरे और तेहरे रूप से पड़ता ही रहता है। हिन्दू सामाजिक विधान के अंतर्गत ग्रहोपग्रहों के प्रकोप तथा उनके नेष्ट प्रभाव के शमन के लिये विशिष्ट दान, जप और भोजन छादन के जो नियम चलते देखे जाते हैं, वास्तव में उन सबका आयुर्वेदिक तथा मनो वैज्ञानिक आधार है। हमारी "नसेरी" की रूढ़िके अन्तर्गत भी पूजा के विधान में कुछ ऐसे ही तथ्य पाये जाते हैं। कुलवधुओं के अतिरिक्त पुरुष अथवा कुमारिका या परिवार की लड़कियों से इस पूजा विधि को छिपा रखने का रहस्य यही है कि उस समय गर्भिणी के मानसिक भावों में व्रीड़ा का किंचित् संचार न हो, उपस्थित समाज शतप्रतिशत उसकी मनःस्थिति के साथ मेल खाने वाला हो जिससे कि स्वयं गर्भिणी तथा गर्भस्थ बालक के शरीर तथा उसके संस्कारों में व्यतिक्रम न पैदा हो।

इस संबन्ध में जब परिवर्तन का प्रश्न उठता है तो साधारण वैज्ञानिक आधार पर अभी केवल इतना ही कहने का हमारा अधिकार है कि जयपुर अथवा बीकानेर में वहीं के वायुजल तथा उपज के अनुकूल पूजन और भोज्य सामग्री की व्यवस्था की जाती है तो कलकत्ता या बंबई में रहने वाले भाइयों के लिये यह आवश्यकता नहीं है कि वे उस बिधि की पूर्ति तभी समझें जब कलकता बंबई में भी मारवाड़ी कुलवधू को "नसेरी" में जयपुर या बीकानेर की हो सामग्रो से काम लिया जाय। जब हम इस प्रकार के विचारों में चिपकने की कोशिश करते हैं तभी हमारी प्रगति में वाधा का अवसर आता है और तभी हम अन्य वर्गों की दृष्टि में हास्यास्पद भी हो जाते हैं।

प्राचीन आर्य सभ्यता या हिन्दू-धर्म-शास्त्रों में प्रत्येक कार्य्यानुष्ठान के पूर्व

संकल्प तथा प्रतिष्ठा का प्रमुख स्थान निर्धारित है। संकल्प और प्रतिष्ठा का यही विधान आधुनिक मनोविज्ञान के You become what you think. (संकल्प ही हम में अपना मूर्त स्वरूप पैदा कर देता है) का रहस्य है। हमारे संकल्प तथा प्रतिष्ठा को ही आधुनिक अर्थ शास्त्र मितव्यय ; समय की बचत (Economical, time saver) सूचक (Make your programme and proceed well with it)—कार्यक्रम निर्धारित करके उसके सम्यक प्रतिपालन द्वारा आगे बढ़ो—का शब्दान्तर स्वरूप स्थिर करता है। अपनी चीज़ को पहचानने की जो दृष्टि अपनी शताब्दियों की गुलामी से हम खो चुके हैं, आधुनिक विज्ञान के चक्करदार जङ्गलों में भटकने के बाद वही हमें फिर मिल जाती है और हमें साफ़ दिखाई देने लगता है कि यदि हमारी यह दृष्टि खोई हुई न होती तो हमें पास ही वह चीज़ मिल जाती, जिसे खोजते हुए हमें इतना भटकना पड़ा। हमारे शास्त्रीय संकल्प तथा प्रतिष्ठा के विधान का प्रकरण कुछ ऐसा ही है और उससे निष्कर्ष यही निकलता है कि हमें अपनी हरएक चीज़ को ठीक ठीक पहिचानने की प्रबल आवश्यकता है।

"नसेरी" की हमारी रूढ़ि के अवसर पर नवग्रहादि का आह्वान गर्भ तथा गर्भिणी पर अनुकूलता उत्पन्न करने की भावना स्थिर करता है। मातृपूजन का भाव तथा उसके उद्देश्य का स्पष्टीकरण उस शब्द से ही हो जाता है। मातृत्व के महत्व, उसकी विशालता तथा उसकी सदाशयता पर जितना भी कुछ सोचा समझा जा सकता है, मातृपूजन विधान में वह सब सन्निहित होता है। इस रूढ़ि के साथ प्रसव काल की व्यवस्था की सतर्कतामूलक कार्यवाही भी प्रारम्भ हो जाती है।

इसी अवसर पर "साध" नामक एक रूढ़ि का प्रसङ्ग आता है। इस प्रचलन के अनुसार बधू की माता अपनी पुत्री के प्रसव-अवसर की साधना करती हुई बधाइयां देती है तथा एक पोशाक अपनी पुत्री के लिये तथा एक अपनी पुत्री की सास के लिये भेजती है। इसके अतिरिक्त इसी के साथ सवा मन मिठाई भी भेजती है। इसी अवसर पर प्रसव के समय काम करने के लिये दाई की नियुक्ति भी की जाती है जिसके लिये उसे १।) 'साई' दी जाती है।

हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में यह देखा जाता है कि माता पिता का कर्तव्य कन्यादान से ही समाप्त न होकर कन्या तथा जामातृ को पूर्ण ग्रहस्थावस्था तक पहुंचाने तक अंशतः चलता रहता है। हमारे समाज के अन्दर विवाह की विधि मनुष्य को रचनात्मक कार्य का दायित्व सौंपती है और कन्यादान करने वाले माता-पिता वर-बधू को उस दायित्व के संभालने में एक हदतक सहायता प्रदान करते हैं। "साध" के प्रचलन के रूप में बधू की माता से मिलने वाले उपहार उसी सहायता के रूप में होते हैं जिनका प्रभाव भावी पिता को अपने रचनात्मक अभ्यास की प्रेरणा प्रदान करता है। दाई की नियुक्ति के लिये दी जाने वाली 'साई' वही चीज है जिसको आजकल Contract कहा जाता है। कण्ट्राक्ट पक्का हो जाने के बाद सम्बन्धित पार्टी समय पर अपना काम कर उठाने के लिये एक नैतिक बन्धन से आबद्ध हो जाती है। "साई" की पद्धति भी कार्यक्रम निर्धारण एवं संकल्प की ही एक शाखा है।

मारवाड़ी समाज में वधू की इसी दशा से पारिवारिक स्वजनों का बुलावा प्रारम्भ हो जाता है। मारवाड़ी समाज की मनोवृत्ति की एक खास बात यह है कि वह नर्स, धात्री आदि के रूप में इतर लोगों को नौकर रख कर उनकी सेवा को उतना ग्राह्य नहीं समझता। मारवाड़ी अपने स्वजन सम्बन्धियों की सेवा का ग्रहण ही अधिक पसन्द करता है। हमारी यह मनोवृत्ति उचित और ठीक है अथवा अनुचित और गलत है, इस बात का उत्तर केवल 'हाँ' या 'नहीं' से नहीं दिया जा सकता। यह विषय विवादास्पद है, फिर भी इस सम्बन्ध में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि पद्धति या रूढ़ि को जैसी की तैसी मानकर नहीं चलना चाहिये। हम अपने सभी प्रचलनों की तह में संकीर्ण वृत्ति का अभाव पाते हैं इस लिये रूढ़ि के अर्थ का निर्वाह करने में भी हमें संकीर्णता से यथाशक्ति बचना चाहिये। नीति शास्त्र तो कहता है कि येनकेन प्रकारेण गुण को ग्रहण ही कर लेना चाहिये। राजनीतिक घटनापूर्ण अवसरों पर नीति के ही रास्ते में कल्याण होता है अतएव यदि पैसे के बदले ही कोई गुण मिल रहा हो तो स्वजन-स्नेह के अतिरेक में उस गुण से पराङ्मुख होना बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती। संसार का सारा व्यापार अन्योऽन्य

सम्बन्ध पर ही टिका हुआ है। मनुष्य का काम पशु से और पशु का काम मनुष्य से चलता हुआ देखा जाता है। आकाश मण्डल के सभी ग्रह और उपग्रह एक दूसरे की आकर्षण शक्ति से ही अधर में अवलम्बित हैं। जड़ और चेतना के इन सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए यदि स्वजन सेवा का पालन किया जाय तो वह एक आदर्श का विषय होगा तथा एकांगी स्वजन सेवा हमें संकीर्णता के गर्त में डालकर स्वयं भी आदर्श न बन सकेगी। हम आज भी प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि हमारी कई एक महत्वपूर्ण संस्थायें, ऐसे महत्वपूर्ण समय में इसीलिये बन्द पड़ी हैं कि मारवाड़ी समाज के किसी उपयुक्त व्यक्ति को अवकाश ही नहीं कि वह उन संस्थाओं के कार्यभार को आकर सम्भाले। यह एक विडम्बना है, यदि समाज के आदमियों को फुरसत नहीं है तो संस्था का कार्य केवल इसलिए बन्द कर देना कि इतर वर्ग के आदमियों को नहीं रखा जायगा, कितनी बड़ी मूर्खता है। हमें उचित यही है कि हम इतर वर्ग के योग्य आदमियों से अपना कार्य निकालें; इससे हमें स्पष्ट ही दोगुना लाभ होगा।

प्रसव काल में प्रसवस्थान का जैसा कुछ निरूपण हमारे समाजमें होता है, आधुनिक विज्ञानके अनुसार निरूपित प्रसवस्थान में कुछ भेद अवश्य होता है परन्तु दोनोंमें से अधिक उपयुक्त कौन है, यह विषय चिकित्सा शास्त्र से संबद्ध है। चिकित्सा शास्त्र, औषध-विज्ञान भी देशकालानुसार विभिन्न उपायों का निर्देश देने के लिये विवश है। वस्तुतः अपनी अपनी परिस्थिति तथा अपने अपने नियमों के अनुसार दोनों ही तरीके अपने अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण हैं। इन दोनों तरीकों में से खास भेद इस बात का है कि मारवाड़ी समाज में प्रचलित प्रसवस्थान के निरूपण का ढंग यह है कि प्रसवस्थान Air conditioned अर्थात् सर्दी गर्मी के प्रभाव से रक्षित रखा जाता है जब कि आधुनिक रीति के अनुसार प्रसवस्थान में मुक्त वायु का प्रवेश अधिक उपयोगी समझा जाता है। दोनों ही रीतियों में प्रसवा को कोलाहल से परे रखने की विधि निर्धारित है। प्रसवा तथा नवजात शिशु की निर्बल अवस्था में वायु के झोंके न लगें, और उस कमरे में गर्मी बनी रहे, इस विचार से हमारी शास्त्रीय विधि अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है जिसके अनुसार प्रसवस्थान में मुक्तवायु का प्रवेश वर्जित रहता

है। प्राचीन भारत में अकालमृत्यु या बालमृत्यु नाम की कोई चीज़ समाज की कल्पना में भी नहीं आती हुई जानी जाती और इसके कारणभूत नियम-संयम ब्रह्मचर्यादि साधनाओं के साथ ही साथ प्रसवकाल के संस्कारों का भी सम्बन्ध अकालमृत्यु निवारण की दिशा में बहुत कुछ योगदान देनेवाला रहा है।

इसके पश्चात् पुत्र अथवा पुत्री के जन्म से सम्बन्धित प्रचलनों का विषय आता है। पुत्र या पुत्री के जन्म के समय पुरुषों के ज्ञान से पृथक नारीवर्ग कई प्रकार के आचार और क्रियायों में प्रवृत्त होता है। उन कई एक आचार विधियों का भी अलग अलग महत्व और कारण हैं। इस सिलसिले में मोटी बात पुत्र तथा पुत्री के जन्म पर प्रदर्शित होनेवाले भाव का भेद है। हमारे यहाँ पुत्र के जन्म पर अधिक खुशी मनाई जाती है जब कि पुत्री का जन्म उतना उल्लासमय नहीं होता। इस विषय पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

सबसे मूल बात इस विषय की यह है कि हिन्दू धर्म-शास्त्रों ने पुत्र-लाभ को सांसारिक सुखों में सर्वोत्तम स्थान दिया है। शास्त्रकारों ने पुत्र की परिभाषा **"पुमात् यस्त्रायते स पुत्रः"** से की है। इसका साधारण अर्थ यह है कि नर्क से बचाने वाले की संज्ञा पुत्र है। मनीषियों ने 'नर्क' और पुत्र के सम्बन्ध की विवेचना में कहा है कि पौरुषहीन, बलवीर्यहीन, विहित अर्धाङ्गहीन, निरुद्देश अपावन जीवन-काल व्यतीत करनेवाला व्यक्ति वस्तुतः नर्क भोगी है; यही दशा मनुष्य को इहलौकिक नर्क यातनाओं का अनुभव कराती हैं और मृत्यु के उपरान्त उनकी आत्माओं को सद्‌गति नहीं मिलती कारण कि वर्तमान जीवन के शुभ संस्कारों पर ही शरीरान्त के पश्चात् आत्मा की सद्‌गति सम्भव होती है। हमारे यहाँ उपर्युक्त दोषों वाले व्यक्ति के ही सम्बन्ध में यह निर्णय किया गया है कि उसके पुत्र नहीं हो सकता, अथवा फिर उसके विहित अर्धाङ्ग में वन्ध्यत्वादि दोषों का भाव होगा। यदि पुरुष में उक्त दोष वर्तमान है तो स्पष्ट ही यहां कितने भी सुख साधनों से युक्त होते हुए भी वस्तुतः वह रौरव यातना ही भोगता है, और यदि अर्धाङ्ग में दोष है तो भी पुरुष नर्क यातना ही भोगता है कारण कि जीवन का सच्चा साथी ही उसका सच्चा साथी नहीं है। इस प्रकार पुत्रलाभ के अधिकारी का निरूपण आयुर्वेद तथा लोक-व्यवहार की दृष्टि से ही किया हुआ सिद्ध होता है।

दूसरी चीज़ नर्क की व्याख्या में धर्माचार्यों ने "लुप्त पिण्डोदक" की बताई है। हिन्दू-दर्शन के सिद्धान्त मरण के पश्चात् आत्मा के शरीर रहित अस्तित्व की कई दशाओं का निरूपण करते हैं। दो मुहूर्त में शरीर त्याग के उपरान्त जीवात्मा का यमलोक पहुँच कर वहां से संस्कारवश चान्द्रमसादि ज्योतियों में रहना तथा बाद में पर्जन्य में, पर्जन्य से वृष्टि के साथ पृथ्वी पर अवतरण, पृथ्वी से अन्नादि बनस्पतियों में, फिर वहाँ से पिता के रक्त और वीर्य में, तत्पश्चात् गर्भ में जीवात्मा की स्थिति बताई जाती है।

पिण्डोदक का रहस्य

पिण्डोदक अथवा श्राद्ध तर्पण के विषय में धर्म शास्त्र स्पष्ट यह विधान देते हैं कि पुत्रहीन अथवा वर्ण संकरता की दशा में मृत व्यक्तियों की आत्मायें पिण्डोदक के अभाव में अधोगति को प्राप्त होती हैं। इस प्रकरण की मीमांसा में कहा गया है कि श्रद्धा, संकल्प और अनुष्ठान के सहित पुत्र द्वारा समर्पित पिण्ड और जल प्रकारान्तर से मृत पूर्वजों तक पहुंचता है। उसकी विधि यह है कि जिस प्रकार सूर्य के समक्ष संकल्पानुष्ठान सहित अर्घ्य दिया जाता है तो रश्मि-सम्पर्क से वह सूर्य तक पहुंच जाता है। यहां यह बात ध्यान में रखनी होगी कि सूर्यादि देवों के सम्बन्ध में हमारे धर्माचार्य जड़त्वबोध का प्रतिपादन नहीं करते। इस प्रकार श्रद्धा भक्ति पूर्वक प्रदत्त जलार्घ्य सूर्य ग्रहण करता है। स्वयं भगवान भी श्रद्धा और भक्ति के साथ समर्पित "पत्रं पुष्पं फलं तोयं" ग्रहण करते हैं। ठीक उसी प्रकार पुत्रादि बंशजों द्वारा श्रद्धानुष्ठान और संकल्प पूर्वक जो पिण्डोदक पितरों को समर्पित किया जाता है वह सूर्य अथवा चन्द्र रश्मियों, जल और गगन के तत्त्व सूत्रों द्वारा प्रकारान्तर से पितरों तक पहुंचता है। जो पितर आत्मायें चान्द्रमसादि जोतियों में ही रहती हैं उनके लिये पिण्डोदक तोष-भाव बनता है तथा जो पितर आत्मायें इतर शरीर ग्रहण कर लेती हैं उनके लिये वही पिण्डोदक सुख-सुविधा की सामग्री बनकर उन्हें प्राप्त होता है।

पुत्र की महत्ता का दूसरा आधार यहां सन्निहित है। यहां भी एक विशेष बात यह स्पष्ट हो रही है कि संकल्पानुष्ठान विधि से अलग आत्मज को पिण्डोदक प्रदान

करने का न तो अधिकार ही है और न उसके द्वारा प्रदत्त पिण्डोदक पितरों तक पहुँ-चता ही है। इसका कारण यही है कि आत्माओं का पारस्परिक सम्बन्ध संस्कार से ही बनता है। संकल्प और शास्त्रीय विधि से रहित होकर जो नाजायज़ संतान पैदा की जाती है, संस्कारों के अभाव से उसकी आत्मा का सम्बन्ध पितरों की आत्मा के साथ कदापि नहीं बनता। इसी प्रकार वर्णसंकर संतान में भी अवैधता एवं संकल्प हीनता ही प्रधान रहती है, इसलिये पितरों की आत्मा के साथ ऐसी संतान का कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता।

पुत्रलाभ की महानता का तीसरा कारण यह है कि सृष्टि के नारीत्व का अस्तित्व जनन, लालन-पालन, सम्मोहन तथा विघटन का तत्त्व माना गया है। विघटन शब्द का आशय यह है कि जहां जनन का क्रम है वहीं विनाश का भी क्रम मौजूद रहता है। युवा पुरुष युवती के संपर्क में आकर अपनी शक्ति का विघटन करता है अर्थात् एक ओर से शक्ति अपहृत होकर दूसरी ओर नयी शक्ति की उत्पत्ति का हेतु होती है। इसी आधार पर सृष्टि विनाश करने वाले रुद्र देव का अर्द्ध शरीर नारी रूप में है। सृष्टि के पुरुष तत्त्व में विघटन का भाव नहीं है। दूसरी ओर संसार को कर्मक्षेत्र की संज्ञा दी गई है जिसका अधिकांश कार्यक्रम सुचारु रूप से संचालित करने का उत्तरदायित्व पुरुषतत्व पर अधिक है।

एक विशिष्टता यह है कि नारी तत्व पुरुष तत्व की अपेक्षा अधिक पूर्ण है। इसका स्थूल उदाहरण यह है कि यदि आज यह मान लिया जाय कि संसार के पुरुष तत्व का अचानक पूर्ण विनाश हो गया, तो देखने में यह आयेगा कि इस महद् (काल्पनिक) दुर्घटना के बावजूद भी नारी तत्व थोड़े ही दिन बाद फिर सृष्टि के क्रम को पूर्वावस्था में ला देगा! क्योंकि जितना भी नारी तत्व विद्यमान रहेगा उसमें अनेकों मातायें और बहिनें ऐसी होंगी जो गर्भाधान की स्थिति में होंगी; समय पर उनसे पुत्र या पुत्री रूप में संतान होगी और फिर पुरुष और स्त्री का अस्तित्व ज्यों का त्यों हो जायगा। परन्तु यदि यह मान लिया जाय कि आज अचानक नारी तत्व का पूर्ण विनाश हो गया तो पुरुष तत्व के पास सृष्टि का क्रम बढ़ाने का कोई मार्ग नहीं रह जाता!

इस प्रकार सृष्टि के अन्दर पुरुष तत्व को नारी की अपेक्षा अधिक दुर्लभ (Rare) माना गया है।

पुत्र लाभ की चौथी महानता इस सिद्धान्त पर है कि सारी सृष्टि-रचना भगवान की माया का खेल है और नारी तत्व माया का मूर्त स्वरूप है। माया का सब से प्रिय और अभीष्ट साधन है पुरुष। साधारण बोधात्मक अभिव्यंजना में इसे कहा जायगा—"पुरुष, परमात्मा की माया-नटी, नारीका एक परम प्रिय खिलौना है।" इसीलिये पुत्र का जन्म अधिक हर्षोल्लास का विषय बहुत प्राचीन काल से बनता आया है। कन्या जन्म की अपेक्षा पुत्र जन्म के अवसर पर अधिक हर्षोल्लास प्रदर्शन की परिपाटी पुरुष द्वारा चलाई हुई नहीं प्रत्युत नारी द्वारा ही चलाई हुई है। गर्भाधान से लेकर प्रसव और पालन तक के विषय नारी क्षेत्र के ही हैं और अपने उस क्षेत्र में प्रचलन और रूढ़ि चलाने का सारा कार्यकलाप नारीका ही निजी विधान है, आज से नहीं, अतिप्राचीन समय से।

राजस्थान में एक समय वह भी आया जब राजनीतिक आपत्तियों के समय, कर्मक्षेत्र के प्रचंड संघर्षों के समय पुरुष तत्व की आवश्यकता चरम सीमातक पहुंच गई तथा नारी तत्व के सम्मोहन और सृजन का रचनात्मक महत्व विषम संकटों के कारण शून्य विन्दुतक जा पहुंचा, इसके अतिरिक्त सम्मान और मर्यादा का क्षेत्र अति विस्तीर्ण हो गया और घोर संकट काल में उसकी रक्षा का कार्य भी अति दुस्तर बन गया। ऐसी परिस्थितियों में नारी का महत्व तथा उसकी आवश्यकता बहुत घट गई और फल स्वरूप कन्या का जन्म अति अनावश्यक और चिंताका विषय बन गया, यहांतक कि उस स्थल से राजस्थानी राजघरानों में कन्या को मार डालने का प्रचलन प्रारंभ हो गया जो बहुत दिनों तक चलता रहा और परिस्थिति के बदलने पर वह उठ गया। इस प्रकार विशेष परिस्थितियों के कारण पुत्र जन्म के अवसर पर उल्लास तथा कन्या जन्म पर विषाद का क्रम राजस्थान में अधिक अवश्य हुआ परन्तु उल्लास और विषाद का यह क्रम वस्तुतः मौलिक है।

राजस्थान के इतिहास में पितृ-सम्मान और मर्यादा की रक्षा के लिये बीर बाला कृष्णा कुमारी द्वारा सहर्ष विषपान करके आत्मोत्सर्ग का जो ज्वलंत आदर्श प्रस्तुत

किया गया है, वह संकटापन्न राजनीतिक परिस्थिति के समय प्रचलित प्रथा का ही रूप था। परिस्थिति से संबंध रखने वाली इस प्रथा के संबन्ध में एक भारतीय रेज़ीडेंट ने अपनी एक रिपोर्ट लिखकर इंगलैंड भेजी थी जिसका विवरण था :—

—rather than incur the danger and trouble of finding a son-in-law and others, the people of Rajasthan even preferred that their daughter should perish. But a far more powerful reason is immemorial custom, which Manu declares to be transcendent law and the root of all piety. These people have gone on killing their children generation after generation because their forefathers did so before them, not only without a thought, that there is anything criminal in the practice, but with the conviction that is right. But although these benevolent efforts were undoubtedly useful, their practical results were not great, and it gradually became clear that it was only by a stringent and organised system of coercion that these practices would even be eradicated.

अर्थात् :—"......राजस्थान निवासी लड़की के लिये वर आदि खोजने के खतरे में पड़ने की अपेक्षा यह अधिक पसंद करते थे कि लड़की का नाश हो जाय। परन्तु इससे भी अधिक प्रबल कारण वह अज्ञात प्राचीन समय से चली आने वाली रूढ़ि है जिसे मनुमहाराज ने परम्परागत नियम तथा सब प्रकार की ईश्वर भक्ति का मूल घोषित किया है। यह राजस्थानी पीढ़ी दर पीढ़ी तक बराबर अपनी कन्याओं का बध करते रहे, केवल इसलिये कि उनके पूर्वज भी वैसा ही करते रहे थे। इस कार्य में अपराध की ओर उनका ध्यान नहीं जाता था उलटे उनका विश्वास था कि यह उचित ही है।......परन्तु, यद्यपि दयालुता के यह प्रयास निस्सन्देह लाभ प्रद थे फिर भी उनका क्रियात्मक परिणाम बहुत व्यापक नहीं हुआ और शनैः शनैः यह बात स्पष्ट हो गई कि ऐसी रूढ़ियों का उन्मूलन तभी होगा जब व्यवस्थित रूप से कड़े दंड और दमन से काम लिया जायगा।"

इन अंग्रेज़ रेज़ीडेण्ट महोदय की रिपोर्ट से भारतीय सभ्यता और संस्कारों के प्रति दुर्भाव पैदा करने की नीयत जाहिर होती है अन्यथा वे किसी राजस्थानी विद्वान से इस विषय की खोज करते तो उन्हें प्रत्येक विषय की विधिवत जानकारी हो जाती और वे मनु एवं मनु-स्मृति के मर्म को भी यथार्थ रूप से समझ लेते, परन्तु ऐसा करे कौन, वहां तो येनकेन प्रकारेण सत्य पर परदा डालने का ही उद्देश्य था। अस्तु।

पुत्र के जन्म पर उल्लास तथा कन्या के जन्म पर विषाद प्रदर्शन के सम्बन्ध में इस हद तक आगे बढ़ जाने के उपरांत, हम देखते हैं कि प्रसव के पश्चात् हमारे समाज में छठवें दिन 'छठी' अर्थात "षष्ठी" का संस्कार होता है। इस दिन वधू को प्रसव गृह से छुट्टी मिल जाती है। प्रसूतावस्था में भी हिन्दू धर्म-शास्त्र के अनुसार सूतक माना जाता है। सूतक की यह अवस्था हिन्दुओं में किसी समाज के अन्दर छठवें दिन और किसी में १२ वें दिन समाप्त हो जाती है। स्मृतियों में दोनों ही अवधियों में सूतक समाप्ति की सम्मति मिलती है। हमारे समाज में छठवें दिन प्रसूता वधू स्नानादि से पवित्र होकर परिवार के अन्य आदमियों में सम्मिलित होती है। इस अवसर पर गणिक और ज्योतिषी बुलाये जाते हैं, नवजात शिशु का नाम संबंधित बंशावली में दर्ज किया जाता है।

इस प्रकरण में प्राचीन काल में, जब हमारे देश में विद्या का विकास था, त्रिकालज्ञ ऋषि मुनि और मनीषी विद्यमान थे, तब नवजात शिशु के एक एक लक्षण का ठीक ठीक निरूपण होता था, सामर्थ्यानुसार राजा से रंक तक दान-दक्षिणादि किया करते थे। परन्तु आजकल उन बातों का कहीं-कहीं अंशतः विचार होता है, अन्यथा वही लकीर पीटने का स्वांग होता है और वस्तुतः यही टीका टिप्पणी का विषय बन जाता है। हमें उचित यह है कि या तो हम यथासंभव विद्वान की खोज करके उन विधियों का रस्म पूरा करावें, अथवा अपने घर में ही साधारण यज्ञ हवनादि से अपने प्राचीन आदर्श की स्मृति मनालें जिस से कि हमारे उस विद्वत्तापूर्ण आदर्श की जानकारी का लोप न हो जाय, परन्तु पीर-मदार, फकीर और ओझा लोगों के जंजाल से अपने संस्कार को विकृत बनाना बिल्कुल अनुचित है।

हम देखते हैं कि हमारे यहां का प्रायः प्रत्येक संस्कार आधुनिक प्रगतिशील

समाजों में भी किसी न किसी रूप में देखने में आता है। हमारे यहां "छठी" के अवसर पर जैसी कुछ विधियां होती हैं उन से मिलते जुलते कृत्य ईसाइयों के यहां Baptism (बतिस्मा) के रूप में किये जाते हैं। बतिस्मा की विधि हुए बिना कोई शिशु-ईसाइयत का सदस्य नहीं माना जाता। नयी पद्धति के Registration (रजिस्ट्रेशन) में भी "छठी" से ही सम्बंधित कुछ आंशिक कृत्य होते हैं।

छठी के उपरांत "जलवापूजन" नामक एक प्रचलन है। मांगलिक अवसरों पर मातृ-पूजन की व्यवस्था प्रमुख है और वह मातृत्व के प्रति समादर और प्रतिष्ठा की ही सूचक है। मांगलिक कृत्य की अवधि समाप्त हो जाने पर संकल्प और प्रतिष्ठानुसार मातृ विसर्जन का भी विधान है। "जलवा-पूजन" का प्रचलन मातृ-विसर्जन का ही पूरक है क्योंकि प्रसवकाल को प्रसूति-सूतक मानकर मातृ आह्वान नहीं किया जाता इसलिये मातृ विसर्जन का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता फिर भी जलाशय के निकट वरुणादि देवों के प्रति सम्मान प्रदर्शन आवश्यक होता है अतएव इस आधार पर प्रसव के पश्चात् "जलवा-पूजन" की पूरक विधि सम्पन्न की जाती है। इस अवसर पर स्त्रियों का परिचित समाज एकत्रित होता है और वे सब मिल कर गङ्गा अथवा किसी भी जलाशय तक जाती हैं जहां पर पूजा की विधि समाप्त होने के बाद से प्रसव से सम्बन्धित सभी रीतियां समाप्त हो जाती हैं।

जीवन के आयुष्य में मानव-जीवन की पूर्णता के मुख्य ४ भाग वैदिक काल से निर्धारित रहे थे और उन्हें ४ आश्रमों का नाम दिया गया था। वैदिक काल में भी राजवंशों तथा कुछ विशिष्ट वर्णों की आश्रम व्यवस्था में अन्तर रहता था। वह सभी व्यवस्थायें आज टूट गई हैं। हजारों पीछे एकाध हिन्दू ऐसा पाया जाता है जिसे आश्रम व्यवस्था के पालन का अवकाश मिलता है। राजस्थान की आश्रम व्यवस्था कालान्तर में इस प्रकार रही :—जन्म से लेकर ५ वर्ष की आयु तक बालक पर माता का अनुशासन रहता था। ५ से ११ वर्ष तक की अवस्था तक पिता का, ११ से २५ वर्ष तक गुरू का अनुशासन रहता था जिसके उपरांत युवावस्था में मनुष्य दम्पति रूप में अपनी पत्नी, मित्र, पिता और गुरू की मन्त्रणा से ही अनुशासित

रहता था। गृहस्थाश्रम का क्रम ४५ वर्ष की अवस्था से विराग और अभ्यास की ओर झुकता था। इसी सिलसिले से बाणप्रस्थ, यम नियम, व्रत और तप का क्रम प्रारम्भ होता था जिसके साथ भ्रमण या तीर्थ यात्रा का कार्य क्रम रहता था। ६५ वर्ष की अवस्था में पूर्ण बाणप्रस्थ की विधि पर चलना होता था और ७५ वर्ष की आयु में पूर्ण सन्यास ले लिया जाता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तक में यह व्यवस्था टूटे-फूटे रूप में विक्रम की ११वीं शताब्दी तक पाई जाती रही है। इस व्यवस्था का कुछ थोड़ा बहुत पता अयोध्या, काशी तथा जगन्नाथपुरी के गद्दीधर महन्तों के रेकार्डों से मिलता है तथा कुछ पता चित्रकूटादि क्षेत्रों में रहने वाले सन्त महात्माओं से श्रुति के रूप में मिलता है।

भारतीय इतिहास के संघर्षकाल से सर्वप्रथम राजवंशों से उस व्यवस्था का लोप प्रारम्भ हुआ और राजकीय प्रश्रय क्षीण हो जाने पर ब्राह्मण और वैश्यों का आचार भी विवश होकर छूट गया, फिर भी जितना कुछ अवसर तथा अवकाश सुलभ होता है, उपर्युक्त आदर्श पर ही जीवन के प्रारम्भिक दिनों में अनुशासन का क्रम अभी भी वैसे ही चलता है; परन्तु बाणप्रस्थ और सन्यास की व्यवस्था बहुत कुछ छिन्न-भिन्न और विकृत हो गयी है।

राजनीतिक पट-परिवर्तन के साथ सभी सामाजिक आचारों में परिवर्तन होता गया। शिक्षा के संस्कार में राजस्थान भारतीय इतिहास के मध्ययुग तक अपनी प्राचीन परिपाटी की दृष्टि से अपना स्थान प्रथम श्रेणी में रखे हुए था; परन्तु वैज्ञानिक प्रगति के आधुनिक युग में उसका स्थान बहुत पिछड़ चुका है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। महाजनी के कार्य की पटुता राजस्थानियों में मध्य-कालतक वैसे ही चली आई, उसमें किञ्चित अवनति नहीं हुई और आज पाश्चात्य शासन व्यवस्था, क्रिया तथा विज्ञान के युग में वही पटुता और भी विकास को प्राप्त हो गई। आज मारवाड़ियों का व्यवसायी वर्ग अर्थशास्त्रीय (Economical) ज्ञान के क्षेत्र में संसार-प्रसिद्ध हो गया है। हम यह भी देख रहे हैं कि ज्यों-ज्यों इस समाज के व्यक्ति पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा और विज्ञान से दक्ष होते जा रहे हैं त्यों-त्यों दुनियां के अर्थ शास्त्रीय ज्ञान और उसकी दक्षता में एक क्रान्ति की लहर-सी उठ

रही है। यह लहर संसार के अन्य व्यवसायी वर्गों में उत्पन्न होने वाले भय से उठ रही है।

महाजनी क्षेत्र में इस वर्ग की प्रगति का मुख्य कारण यही है कि गुरु के पास रहकर शिक्षार्जन की प्रणाली में महाजनी का क्रम सब समय साध्य रहा। ६ या ७ वर्ष की अवस्था से बालक को कुशल महाजन की दूकान पर ही पढ़ने को भेज दिया जाता रहा है, जहां बालक को महाजनी की सैद्धान्तिक और क्रियात्मक दोनों ही प्रकार की शिक्षा मिलती रही है। लुहार, बढ़ई, खाती आदि कारीगरी के कामों में भी शिक्षा की यही पद्धति मध्यकाल से आज तक चलती रही है। द्वितीय महासमर छिड़ने के पूर्व तक, जब देश में भीषण बेकारी का जोर था, समाज के वयोवृद्धों की प्रवृत्ति यही रहती थी कि आधुनिक स्कूल, कालेजों में लड़कों को पढ़ाने से कोई लाभ नहीं। इस प्रवृत्ति से लाभ और हानि बराबर रही। लाभ यह रहा कि हमारी प्राचीन वर्ण व्यवस्था का वैश्यत्व समय की चपेटों में पड़कर भी नष्ट न हो सका। हानि यह हुई कि बदलते हुए जमाने में हम अपने को आधुनिक बनाने में पिछड़ गये। इतना होते हुए भी यदि हम इस लाभ हानि की गुरुता का संतुलन करें तो हमें लाभ का पलड़ा कुछ भारी ही मिलेगा।

शिक्षा के ही प्रकरण में, ब्रह्मचर्याश्रम के विचार से आज भी राजस्थान अपनी मर्यादा का निर्बाह उतनी सीमा पर कर रहा है जितनी पर अन्यत्र के वर्ग नहीं पहुँच पाते। उसका स्पष्टीकरण यह है कि वैश्यत्व ने अपना अस्तित्व, उलटी सीधी परिस्थितियों में भी बचा ही लिया और अपने भाग में आने वाले कर्म का निर्बाह यथार्थ रूप में करके दिखलाया है। उधर क्षत्रिय राजवंश में भी जीवन के प्रारम्भिक भाग के नियमों का पूर्ण रूप से पालन होता रहा है। सभी राजपूत रजवाड़ों और सामन्तों के बालकों को कम से कम २० या २५ वर्ष तक शिक्षार्जन में ही लगा रखा जाता है और उन्हें क्षत्रियोचित सभी कौशलों का अच्छे से अच्छा ज्ञान कराया जाता है। आज राजस्थानीय राजपूतों की प्रत्येक शाखा को "सैनिक जाति" की उपाधि प्राप्त है; प्रत्येक राजपूत युवक में स्वाभाविक रण-प्रियता पाई जाती है और आवश्यकता पड़ने पर वे अपने शौर्य का परिचय अपने गौरव के अनुकूल ही देते

हैं। इस क्रम में यदि राजस्थान में कोई पाया आजकल कमजोर बैठता है तो वह ब्राह्मणों का ही है परन्तु सामूहिक अर्थ में जहां देश के अन्य भागों में वर्णाश्रम संबन्धित विकृति अधिक है, उसके सामने राजस्थानीय विकृति बहुत कम है।

विवाह

जीवन के प्रारंभिक प्रकरण के पश्चात् गृहस्थ में पदार्पण का प्रारम्भ विवाह से होता है। मारवाड़ी समाज में विवाह का संस्कार तथा उससे सम्बन्धित रूढ़ियां अति विस्तीर्ण व्यय-साध्य तथा महत्वपूर्ण हैं। यह संस्कार इस समाज में भी वैसा ही अत्यावश्यक तथा अति महत्वपूर्ण है जैसा कि संसार के अन्य मानव समाजों के लिए है, रंग, ढंग और रस्म रिवाज में भेद अवश्य है। हमारे समाज में विवाह का संस्कार युद्ध की स्मृति लिये हुए सम्पन्न होता है। शेष सब बातें—वर वधू का सम्राट और सम्राज्ञी से भी बढ़कर पद रखना, बारात का सैनिक आशय आदि—हिन्दू समाज के समष्टिगत वैवाहिक आदर्श के अनुरूप होती हैं।

राजस्थानीय विवाह संस्कार पर प्राचीन काल की स्वयंवर प्रणाली की छाप अधिक है। स्वयंवर प्रथा के अनुसार जीवन-संग्राम के प्रबलतम व्यक्ति को ही पाणि-ग्रहण का अधिकार मिलता था। प्रबलता का निर्णय शारीरिक बल, कौशल और युद्ध-बल से ही होता था और विजय प्राप्त करने वाले को ही लड़की सौंपी जाती थी। हमारे समाज में विवाह के समय रण-सज्जा के सभी लक्षण आज भी जुटाये जाते हैं और यह ठीक है कि आजकल विवाह के अवसर पर तलवार नहीं चलती फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि युद्ध नहीं होता। आज भी हमारे समाज में विवाह के समय या उसके पूर्व युद्ध होता है, और वह युद्ध होता है आर्थिक युद्ध। आजकल के विवाहों में "पैसे" के ही फैसले पर जय और पराजय का निर्णय होता है।

राजस्थान में संकट कालीन ऐतिहासिक समय से जब लड़कियोंका अभाव बढ़ गया था तब से योग्य वधू की प्राप्ति में अनेक योग्य वरों की होड़ लग जाती थी इस-लिये भी विवाह की समस्या एक असाधारणता ही बनी रही।

आजकल योग्य वरके लिये योग्य कन्या तथा योग्य कन्या के उपयुक्त वर ढूंढ़

निकालने की कठिनाइयों ने भी हमारे समाज के वैवाहिक संस्कार को एक विषम समस्या बना दिया है।

राजस्थानी विवाह पद्धति के संबन्ध में सर जार्ज ने लिखा है :—

...I cannot describe the marriage customs of Rajasthan now, but there is a very interesting account of them in Sir Alfred Lyall's Asiatic studies. A Marwari cannot marry a woman who does not belong to a Rajasthan family, but at the same time he cannot marry one of his own class, like mohammadans.

The custom makes marriage difficult by narrowing the field of selection, for neither can a man go very far among strange tribes to seek his wife, except that a father to seek a husband for his daughter, and even so that a poor man often does not marry at all, whilst a rich man or his son of high birth (or with plenty of money even debarred from other qualities) is beseiged with application for his hand, in order that the stigma of an unmarried daughter may at least be formally removed.

Thus, while an unmarried daughter is looked upon in India as hopelessly disgraced and this is true of almost all classes and not of Rajputana only, a son-in-law cannot always be found unless the father of the girl is prepared to pay highly and the marriage of a daughter may mean the ruin of a family.

In March 1888, the representatives of all the ruling Chiefs met together and agreed to rules limiting the expenditure on marriages. These rules were declared binding on Rajputana of all ranks except

the Chiefs themselves. Many previous attempts with the view of suppressing the motives to infanticide in Rajputana, have been failed and even if the Chiefs were anxious to enforce such rules their power to do so would be more than doubtful on the nature of their subjects. I fear that the sanguine hopes that have been expressed in regard to the results of this movement are not likely to be fulfilled. The Chiefs at the same time agreed that no boy under 18 and no girl under fourteen shall hereafter be married. It is impossible to anticipate that this rule passed with the avowed object of preventing child marriages can have any immediate or important effect on one of the most prevalent a most tamentable of Indian customs by which thousands of girls hardly out of their infancy are every year condemned to lives of perpetual widowhood. The proposal we are told was made spontaneously by the aged Chief of Bundi, and we may hope that the agent to the Governor General in Rajputana is right in the belief which he stated, that "it, shows at all events that a feeling is getting abroad, even among those who are the greatest upholders of ancient customs, against the evils caused by these marriages."

आशय यह है कि—"मैं अभी राजस्थान की वैवाहिक रीतियों का वर्णन नहीं कर सकता परन्तु उनके संबंध का एक अत्यंत रोचक बर्णन सर अल्फ्रेड लायल की "एशियाटिक स्टडीज़" में आया है। एक मारवाड़ी किसी ऐसी औरत के साथ विवाह नहीं कर सकता जो राजस्थानीय परिवार की न हो, साथ ही वह अपनी ही जाति की किसी औरत के साथ भी, मुसल्मानों की भाँति, विवाह नहीं कर सकता।

मारवाड़ी वर्ग के किसी पुरुष को पत्नी ढूंढ़ने नहीं जाना पड़ता। लड़की के बाप

को ही वर की खोज करनी पड़ती है। गरीबों के युवक बिना ब्याहे रह जाते हैं परन्तु धनीवर्ग के बूढ़े और अंगहीनों के साथ भी लड़की ब्याह दी जाती है और इसी बहाने कहने को हो जाता है कि लड़की पर से कुमारपन का कलंक तो हटा।

कुछ मारवाड़ियों में या राजपूताने में ही नहीं, समग्र भारत वर्ष की सभी जातियों में, जहां अविवाहिता लड़की एक अभिशाप समझी जाती है, वहीं लड़की के लिये वर खोजना भी बहुत कठिन बात होती है। लड़की वाले के पास यदि दहेज में देने के लिये काफ़ी धन न हो तो उसे जल्दी लड़का नहीं मिल सकता और इस प्रकार एक साधारण स्थिति वाला लड़की के विवाह में तबाह हो जाता है।

मार्च सन् १८८८ ई० में राजपूताना के सभी देशी नरेशों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें विवाह के समय किये जाने वाले खर्च की एक सीमा बना दी गई। इस संबन्ध में जो नियम बनाये गये उनपर सभी प्रतिनिधियों ने अपनी स्वीकृति दी। यह नियम राजपूताना की प्रत्येक श्रेणी पर लागू होने वाले तथा देशी नरेशों पर न लागू होने वाले घोषित किये गये। इससे पूर्व भी राजपूताना में कुछ ऐसे नियम बनाये जा चुके हैं जब कि बाल-हत्या के कारणों के प्रतिरोध का प्रयत्न किया गया परन्तु ऐसी चेष्टायें सदैव असफल ही रहीं।

स्वयं देशी नरेश भी इस बात के लिये उत्सुक हुए कि ऐसे नियमों को कार्यान्वित किया जाय परन्तु इस कार्य से उनकी प्रजामें राजा की सत्ता के प्रति सन्देह और अविश्वास बढ़ने लगा। मुझे दहशत है कि ऐसे नियमों के संबन्ध में जिस सुन्दर भविष्य की कल्पना की जाती है, शायद वह पूर्ण नहीं होगा। उसी दर्म्यानमें देशी नरेशों ने इस बात पर अपनी स्वीकृति दी कि १८ वर्ष से कम अवस्था वाले बालक तथा १४ वर्ष से कम की बालिका का विवाह न हो। इस नियम से यह सोचना असंभव है कि भारतवर्ष में प्रचलित उस रूढ़ि पर कुछ भी प्रभाव पड़ेगा जिसके अनुसार हज़ारों दुधमुहीं बालिकाओंका विवाह करके उन्हें अनवरत वैधव्य जीवनके गर्तमें डाल दिया जाता है। सुनने में आता है कि वयोवृद्ध बूंदी नरेश ने स्वेच्छा से ही उक्त प्रस्ताव तैयार किया था। मेरा विश्वास है कि राजपूताना स्थित गवर्नर जनरल के एजेण्ट ने ठीक ही कहा है कि—"इन बातों से प्रगट यह हो रहा है कि

प्राचीन रूढ़ियों पर सब से ज्यादा चिपके रहने वाले वृद्ध लोगों में भी यह भावना व्याप्त होने लगी है कि बाल विवाह अनिष्टकारी है।"

उपर्युक्त अवतरण से तत्कालीन राजस्थान की वैवाहिक पद्धति पर प्रकाश पड़ता है। सर जार्ज साहब ने जिस समय की दशा का वर्णन किया है, आज वैसी दशा नहीं है और न देश की परिस्थिति ही उस समय जैसी है। उस समय की सामाजिक दशा तत्कालीन राजनीतिक स्थिति से प्रभावित थी और आज की सामाजिक दशा आज की राजनीतिक स्थति से प्रभावित है। सवर्ण जातियों में आजकल बाल विवाह को प्रथा उठ गई है। शूद्र वर्ण में अवश्य ही आज भी वह कुरीतियां मौजूद हैं जिन्हें हम अपनी वर्तमान परिस्थति में सुधार नहीं सकते। देश की सत्ता देश के ही आदमियों के हाथ में आ जाने के बाद ही हमारा सामाजिक ढांचा एक नई बुनियाद पर निर्मित हो सकता है। अभी हमारे सामाजिक नियमों में यत्र तत्र कुछ हेर फेर ही होते रहेंगे। वृद्ध और अनमेल विवाह के संबन्ध में हम यह तो नहीं कह सकते कि ऐसे विवाह अब होते ही नहीं परन्तु यह ज़रूर देखा जाता है कि अब इन कार्मों को समाज का बहुसंख्यक वर्ग अपराध ही समझने लगा है। आमतौर से देखा यह जा रहा है कि आजकल सवर्णों में जहां भी कहीं बृद्ध अथवा अनमेल विवाह का प्रसंग आता है तो बिना किसी आन्दोलन अथवा अपवाद के ऐसे काम संपन्न नहीं होते और इस प्रकार अब हर एक भले आदमी के दिल में ऐसे कामों के प्रति एक भय और घृणा का भाव भर चुका है।

विवाह-पद्धति

ऊपर विवाह के संबन्ध में जैसी कुछ चर्चा हो चुकी है, सामाजिक कुरीतियों से ही उसका संबन्ध है। जहांतक विवाह संस्कार के आदर्श का संबन्ध है, उसके परम श्रेयस्कर महत्व की बात अब ऐसी नहीं रह गई है जिसे किसी को समझाने की आवश्यकता हो। इतने पर भी इस संस्कार की एक महत्ता ऐसी है जिसका उल्लेख आवश्यक है। वह महत्ता यह है कि सबसे पहले जब मानव समाज को सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता मालूम हुई तो सब से पहले विवाह का ही एक नियम बनाया गया था और सामाजिक व्यवस्था के अन्य सब नियम और संस्कार बाद में बनाये

गये। उस युगमें, जब स्त्री पुरुष केवल एक ही वर्ग में उच्छृङ्खल जीवन बिताते थे तो उनके वर्ग में सघर्ष, कलह और बिनाश का कारण किसो युवती का ही प्रश्न होता था। शक्ति के अनुपात से सुन्दर और युवा तरुणी का कम वेश भाग व्यक्ति विशेष के हिस्से में पड़ता था फल यह होता था कि अपेक्षाकृत निर्बलों को अपने उचित भाग से भी बंचित रह जाना पड़ता था जब कि सबल को उचित से भी अधिक भाग प्राप्त कर लेने का अवसर और अवकाश था। इसी विषय की खींचातानी, तृष्णा और द्वेष के फल स्वरूप संघर्ष और रक्त-पात का वेग बढ़ा और मानवता के विचारशील व्यक्तियों को स्पष्ट दिखाई देने लगा कि यदि स्थिति ऐसी ही रही तो सम्पूर्ण विनाश निश्चित है। समाज रचना का श्री गणेश यहीं से हुआ और सब से पहले समाज में युवक युवतियों के उचित विभाजन और वितरण का नियम विवाह के रूप में निर्धारित किया गया।

विवाह संबन्ध की जिन विचित्रताओं को अपवाद बना कर विदेशी लोग हमारे समाज की टीका टिप्पणी करते हैं, यदि हम ठीक ठीक पता लगावें तो वे इतनी सुचारु और विहित सिद्ध होती हैं कि दूसरी पद्धतियां उनके मुक़ावले कभी ठीक हो ही नहीं सकतीं। मनुस्मृति के अनुसार ऐसी कन्या के साथ विवाह उचित माना जाता है जो मातृकुल में कमसे कम ६ पीढ़ियों में से न हो तथा समगोत्र वाली भी न हो। मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार प्रत्यक्ष पदार्थ की अपेक्षा अप्रत्यक्ष पदार्थ पर ही आसक्ति और प्रेमका झुकाव अधिक हुआ करता है। इसी विषय का एक सूत्र शतपथ ब्राह्मण में भी मिलता है जिसका उल्लेख महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रंथ "सत्यार्थ प्रकाश" में किया है। इसी प्रकार निकट और दूर विवाह करने के संबन्ध में स्वामीजीका मत इस प्रकार है :—"जो बालक बाल्यावस्था से निकट ही रहते हैं, परस्पर क्रीड़ा लड़ाई, प्रेम करते हैं, एक दूसरे के गुणदोष, स्वभाव बाल्यावस्था के विपरीत आचरण जानते और जो नङ्गे भी एक दूसरे को देखते हैं, उनका परस्पर विवाह होने से प्रेम कभी नहीं हो सकता। दूसरे—समगोत्र के विवाह से धातुओं में अदल बदल नहीं होने से उन्नति नहीं होती और न विलक्षणता ही आती है। एक देश के रोगी को दूर देशका जलवायु जिस प्रकार स्वस्थ कर देता

है वैसा ही प्रभाव दूर देशस्थ विवाह से भी होता है। निकट संबन्ध होने से सुख दुःख का मान और विरोध होना भी संभव है, परन्तु दूर देश की स्थिति में प्रेम सूत्र दीर्घ होकर दृढ़ होता है। "दुहिता दुहिता दूरेहिता भवतीति" (निरु० ३।४) अर्थात कन्या का नाम दुहिता इस कारण से है कि इसका विवाह दूर देश में होने से हितकारी होता है, निकट रहने में नहीं। यह भी संभव है कि कन्या के पितृ-कुल में दारिद्र्य हो और निकट रहने से उन्हें बारंबार कुछ न कुछ देना पड़े। निकट होने पर वर कन्या में से किसी एक को अपने पितृ कुल की संपन्नताका अभिमान भी हो सकता है फलतः कटुता बढ़ सकती है। वैमनस्य होते ही स्त्री झट पितृ गृह को चल दे सकती है। एक दूसरे की निन्दा अधिक होगी और विरोध भी, क्योंकि प्रायः स्त्रियों का स्वभाव तीक्ष्ण और मृदु होता है। इन सब विचारों से जाति कुल गोत्र तथा स्थान, दोनों ही विचार से विवाह संबन्ध दूर ही होना अच्छा है।"

विवाह संस्कार का दूसरा अपवाद विवाह के योग्य वर कन्या की अवस्था के संबंध का है। भारतवर्ष की वैवाहिक अवस्था का यथोचित निरूपण पुरुष के लिये २५ वर्ष तथा स्त्री के लिये १६ वर्ष किया गया है। हमारे यहां आयुर्वेद के आचार्यों ने भी शरीर के रसतत्वोंका सूक्ष्म विचार करके यही निर्णय दिया है कि २५ वर्ष से कम अवस्था वाले पुरुष और १६ वर्ष से कम अवस्था वाली स्त्री से स्थिर होने वाला गर्भ विपत्ति को प्राप्त होता है। ऐसा गर्भ यदि पूर्ण समय में उत्पन्न भी हो तो संतान अल्पायु अथवा दुर्बलेन्द्रिय होगी।

हमारे समाज में विवाह की इस अवस्था का व्यवहार बराबर चलता रहा परन्तु देश पर मुसलमानी सत्ता स्थापित होने के बाद से व्यतिक्रम प्रारंभ हुआ यहां तक कि १० वर्ष के लड़के तथा ८ वर्ष की लड़की का विवाह भी होने लगा। ब्रिटिश शासन के समय में बाल विवाह की गति में कुछ स्थिरता आई और आम तौर से १५ वर्ष के लड़के तथा १३ वर्ष की लड़की का विवाह ठीक समझा जाता रहा। इधर २५ वर्षों से जब हमारे देश में राजनीतिक जागरण और आन्दोलन की लहर फैली तो समाज पर भी उसका प्रभाव पड़ा। बाल विवाह के प्रश्न पर तो विशिष्ट रूप से सामाजिक आन्दोलन भी चला। इन सब घटनाचक्रों के समकक्ष आजकल मारवाड़ी

समाज में १८।१४ की अवस्था का विवाह प्रचलित है और सामाजिक प्रवृत्ति से आशा की जाती है कि बहुत जल्द २०।१६ या २०।१७ की अवस्था में ही विवाह होंगे।

बाल-विवाह

बाल विवाह का अपवाद हमारे देश या समाज का मौलिक विषय नहीं है। मुस्लिम संस्कृति के वेग की प्रति क्रिया में ही हमारे देश में बाल विवाह होने लगे। बालकपन में ही विवाह कर देने के कार्य में समाज के कर्णधारों को कौन सा श्रेयस्कर परिणाम दिखाई देता था, यद्यपि उसका यथार्थ कारण बताना तो कठिन है फिर भी बाल विवाह की पद्धति में अनुमानतः निम्न कारण सन्निहित रहे होंगे :—

मुसलमान शासक या सामन्त आम तौर से किसी ऐसी हिन्दू युवती को बल प्रयोग द्वारा प्राप्त करने में दिलचस्पी नहीं लेते थे जिसके बाबत उन्हें मालूम हो जाता था कि उसका विवाह हो चुका है अतएव अपनी इज्जत आबरू बचाने के लिये हिन्दू लोग बचपन में ही अपनी लड़कियों को 'विवाहिता' बना देने लगे।

वयस्क होने पर योग्य वर या वधू ढूंढ़ने की कठिनाई को हटाने के निमित्त भी बाल विवाह किये जाने लगे।

अक्षत वीर्य पुरुष का अक्षत योनि तरुणी से ही समागम हो, इस उद्देश्य को लेकर भी बाल विवाह का प्रचलन हुआ।

पिछले दो कारणों में भी पहला कारण विद्यमान है। इतना होते हुए भी राजस्थानीय बाल-विवाहों में यथा शक्ति वर-वधू को उपयुक्त अवस्था तक पहुंचा देने का प्रयास जारी रख कर प्राचीन व्यवस्था के पालन का उद्योग यथाशक्ति चलाया ही जाता रहा है। वह उद्योग यह था 'मुकलावा' अथवा द्विरागमन की रूढ़ि प्रायः विवाह के पश्चात् ७ वर्ष बाद ही पूरी की जाती थी। इस विधि के पालन में कड़े अनुशासन से काम लिया जाता था परन्तु समय के प्रवाह के साथ इस नियम में भी शिथिलता आने लगी। धीरे-धीरे मुकलावा की अवधि ७ वर्ष से ५ वर्ष, फिर ५ से ३ वर्ष रह गई। घटते घटते यह अवधि एकदम समाप्त ही हो गई। मारवाड़ी समाज की प्रवृत्ति भी अंगरेजी तर्ज तरीके की ओर दिन पर दिन अधिक होती जा रही है और इस अन्धानुकरण को देखते हुए भय है कि कहीं विवाह के

मामले में अंगरेजों की भांति हमारे समाज में भी "मुकलावा पहले और विवाह पीछे" की दशा न पैदा हो जाय। ईश्वर न करे, कहीं समाज उस अधोगति में जा गिरे तो क्या हम अपनी रूढ़ियों पर दोष लगा सकते ? कदापि नहीं, दोष के भागी वहीं होंगे जो अंगरेजी तहजीब की ओट में समाज को लोलुपता और कामुकता के कीचड़ में ढकेलने की कोशिश करते हुए सबसे पहले फिसल कर गिरेंगे।

बाल विवाह का सब से बड़ा दोष

परिस्थिति विशेष में बाल विवाह का चाहे जो कुछ भी औचित्य क्यों न रहा हो, साधारण और सहज परिस्थिति में यह एक भीषण दोष ही है। बालकपन और किशोरवय शिक्षा बल और शुभ संस्कार अर्जित करने की अति मूल्यवान और दुर्लभ अवस्था है। जिस देश में जीवन की इस प्रारम्भिक अवस्था का उपयोग शिक्षा, शक्ति और तेज की वृद्धि के लिये किया जाता है, वह देश उतना ही उन्नत होता है अन्यथा वह देश या समाज निश्चित रूप से पतित हो जाता है। हमारे समाज की वैदिक संस्कृति में तो पुरुषवर्ग के लिये ४८ वर्ष तक का ब्रह्मचर्य पालन उत्तम माना जाता था और जिस समय इन नियमों का पालन होता था उस सामाजिक और राष्ट्रीय स्थिति की सुचारुता का सुयश आज भी गाया जा रहा है। इन नियमों की शिथिलता का अर्थात् बाल विवाह का सब से भारी दोष वह है जिसकी पीड़ा से आज हमारा समाज जर्जर हो रहा है और वह भीषण दोष है "वैधव्य जीवन का विस्तार"। वैधव्य जीवन के कलुषित इतिहास के जितने पृष्ठ भारत देश भर में रंगे गये हैं, राजस्थान के भाग में आने वाले पृष्ठों की संख्या मामूली और कम शोचनीय नहीं हैं।

वाल विवाह के अन्य साधारण दोषों में—शरीर के गुण कर्म और स्वभाव के पूर्ण विकास न होने से वर-वधू को आदर्श दांपत्य सुख नसीब नहीं होता और उनका गार्हस्थ्य जीवन एक नर्क बन जाता है।

असमय ही ओज के भंडार पर आघात पड़ने से मानसिक और शारीरिक अधःपतन प्रारम्भ हो जाता है फलतः समाज और देश निर्बल, निस्तेज तथा क्षीणायु बन जाता है।

सौभाग्य से देश के राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ ही साथ सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध भी कदम उठाये जा रहे हैं और इस दिशा में भी सुधार के लक्षण प्रगट हो रहे हैं फिर भो अभी हम उस स्थिति तक नहीं पहुँचे हैं कि हम उपर्युक्त दोषों को किसी हद तक मिटा देने का श्रेय प्राप्त करने के अधिकारी हों।

हमारा तात्पर्य यह है कि जहां आधुनिक युग में शताब्दियों के जर्जर समाजों को अपनी दशा सुधारने का एक स्वर्ण सुयोग मिल रहा है, वहां कहीं हम अपनी असली चीज़ों के प्रति अनभिज्ञ ही रह कर, दूसरों के अन्धानुकरण में सुधार के धोखे संहार की दशा में न जा गिरें। आधुनिक समय में सुधार की जो आंधी चल रही है, हमारी वैवाहिक पद्धति पर उसके कुछ ऐसे झोंके लग रहे हैं जिससे उसके जड़ से उखड़ कर गिर जाने की आशङ्का है। ऐसे झोंकों में एक झोंके का परिचय पहले दिया जा चुका है। दूसरा झोंका है "अपना जीवन साथी स्वयं चुनने के अधिकार" का। आजकल इस प्रश्न में भी काफ़ी ताक़त आई हुई है और वह प्रश्न भी समाज के सामने एक समस्या बन कर खड़ा हो गया है। जीवन साथी स्वयं चुन लेने का अधिकार तथा इस विषय की स्वतन्त्रता योरपीय देशों में अवाध रही है, एशियाई देशों में उसका अभाव ही रहा है। अभी तक के अनुभव से निष्कर्ष यही निकला है कि जिन योरपीय देशों में ऐसी स्वतन्त्रता है वहां का दाम्पत्य जीवन अशांत, दुःखमय और संघर्ष-पूर्ण सिद्ध हो रहा है जब कि भारत जैसे देशों में—जहां वैसी स्वतन्त्रता नहीं रही है—दाम्पत्य जीवन एक बहुत बड़े प्रतिशत अनुपात में मधुर, आदर्शपूर्ण तथा सफल रहता है।

तथाकथित प्रणय बन्धन (Love marriage) का चुनाव, उसकी उच्छृंखलता, उसका आदर्श और उसकी खुशी तथा उसकी वासनातृप्ति सम्बन्धी बुनियाद हमारी शास्त्रीय परम्परा के दृढ़ बन्धनों के सामने बिल्कुल कच्ची साबित हो रही है। हम प्रति दिन तथाकथित प्रणय बन्धनों के अनेकों दुखान्त प्रकरणों का हाल अखबारों में पढ़ते और आंखों से देखते भी हैं जब कि उनका प्रारम्भ बड़ा ही मधुर, आशाओं से भरा और स्वर्णिम स्वप्नों वाला समझ पड़ता है।

हमारे मारवाड़ी समाज में, विशेषतः वैश्यवर्ग में वर-वधू चुनाव का सम्पूर्ण भार

माता-पिता की शुभाकांक्षाओं तथा उनके प्रौढ़ अनुभव के ही आधार पर टिका हुआ रहता है। वर और कन्या दोनों ही पक्ष के माता-पितादि वयोवृद्ध अभिभावक अपने अपने आदर्श तथा मर्यादा की पूर्ण रक्षा को अपना ध्येय बनाये रखते हैं। अपने इसी रास्ते से वे लोग अपनी शक्ति भर अच्छे से अच्छा चुनाव करने से बाज़ नहीं आते। अपनी सन्तान के प्रति शुभ-चिन्तना तथा उनके भावी जीवन को सुख-मय बनाना ही वे अपना कर्तव्य समझते हैं।

उत्तरदायित्व की अनुभूति का अभाव

इस स्थल तक पहुँचने पर हमें हठात् ठहरना पड़ता है। हम यह देखने और लिखने को विवश हैं कि इस संबन्ध के भारतीय आदर्श की प्रशंसा का गीत भी अविराम गति से नहीं गाया जा सकता क्योंकि उसमें भी विकार मौजूद है। अनेक उदाहरण हमारे सामने ऐसे भी आते रहते हैं जिनमें देखा जाता है कि अनेक अभिभावक अथवा माता-पिताओं की ओर से अपने बड़प्पन के अधिकार का कुछ ऐसा दुरुपयोग किया जाता है जो कहने में नहीं आता। अनेक स्थलों पर अनेक माता और पिताओं द्वारा अपने पुत्र और पुत्रियों के सम्बन्ध के ऐसे कार्य किये जाते हैं जिनसे अधम से अधम मनोवृत्ति का परिचय मिलता है और उस मनो-वृत्ति एवं उनके कामों का वर्णन लेखनी की क्षमता से बाहर है। यदि हम बहुत संयत रूप से कुछ कहें तो "कन्या-विक्रय" के शब्द का उल्लेख करना ही होगा। यह एक ऐसा जघन्य कार्य है जो समाज विशेष को क्या, मनुष्य जाति पर कलंक की कालिख लगाता है फिर भी उसका अस्तित्व हमारे समाज में मौजूद है। जिस प्रकार कन्या विक्रय करने वाला व्यक्ति राक्षस है, उसी प्रकार कन्या को खरीदनेवाला भी उससे कहीं अधिक भयंकर राक्षस होता है। बेचने वाला भौतिक द्रव्य को ही संसार की और मानव जीवन की सबसे उत्तम चीज़ समझने की भूल करता है जबकि वास्तव में भौतिक द्रव्य संसार की अति तुच्छ और उच्छिष्ट वस्तु है, और संसार तथा मनुष्य जीवन की सबसे उत्तम वस्तु होती है अपने ध्येय और कर्म के प्रति तथा अपनी आन-बान-शान के प्रति अपना अध्यवसाय। कन्या विक्रय करने वाला नराधम समाज या मनुष्यता की मान मर्यादा की हत्या कुछ चाँदी के टुकड़ों के लिये

कर देता है। उधर खरीदने वाला पिशाच बिक्री करनेवाले पिशाच के ग्राहक के रूप में मुख्य अपराधी नेता है। जिन चाँदी के टुकड़ों के द्वारा वह समाज का सहायक बन कर उस नीच वृत्ति को रोकने का शुभ कार्य कर सकता है, उन्हीं के द्वारा वह उस नीच वृत्ति का जन्मदाता बनता है! ऐसे मदमत्त धनिकों की यह वृत्ति उस समय विकरालता की पराकाष्ठा तक जा पहुँचती है जब एक ओर परिस्थिति से विवश हुए गरीबों की बहिन बेटियाँ खरीद कर अपनी बासना की धधकती हुई आग बुझाई जाती है और दूसरी ओर मुख से "राम नाम," की ध्वनि निकलती है, हाथ में तुलसी की माला घूमती है, धर्मशालायें बनवाई जाती हैं, संस्थाओं के लिये चन्दा देकर दानवीर कहलाने का भी प्रयत्न चलता रहता है।

हमारे समाज को अधः पतित अवस्था में डालने के जितने भी कारण हो सकते हैं उनमें सबसे बड़ा कारण है गुरुतापूर्ण पद का निर्वाह करने की अक्षमता। यह दोष रक्षक को भक्षक बनाकर इतना अनर्थ कर सकता है जितना अन्य किसी दोष से सम्भव नहीं है। समाज के जिन वयस्क वयोवृद्धों पर समाज को उचित रास्ता बताने का दायित्व है, वे ही यदि वासना, स्वार्थ और धन की मस्ती में अंधे हो जायं तो समाज के कल्याण की आशा कहां रह सकती है? आज समाज की विधवाओं की संख्या देखकर पता लगाया जा सकता है कि जितनी विधवायें बाल-विवाह के दोष के कारण होंगी उतनी ही संख्या उन विधवाओं की होगी जो वयोवृद्ध धनगनों की अनुचित तृष्णा का शिकार बनने से हुई हैं। समाज के बड़े बूढ़ों के इस प्रकार के उत्तरदायित्व हीन कार्यों से व्यभिचार और गुप्ताचार भी बढ़ते हैं।

समाज के उत्तरदायी वयोवृद्ध सज्जन, अभिभावक के रूप में जब अपना उत्तरदायित्व न समझकर वर-वधू के गुण, कर्म और स्वभाव की परख न करके धन के विचार से योग बैठाते हैं तभी व्यतिक्रम पैदा होता है। इसी तरह की त्रुटियों की प्रतिक्रिया में पाश्चात्य शिक्षा और संस्कारों के प्रभाव से विद्रोह की ज्वाला उठने लगती है और तब उस ज्वाला के कारण दोष और गुण सभी के जलकर स्वाहा हो जाने की आशंका पैदा हो जाती है। वर-वधू निरूपण में प्रायः ऐसा होता है कि लड़के का अवगुण धन के सामने देखे ही नहीं जाते परन्तु लड़की का मूल्य

मिट्टी के बराबर भी नहीं समझा जाता। हिन्दू समाज में प्रचलित बहु-विवाह (Polygomy) के औचित्य से अनुचित लाभ उठाकर भी कन्या तथा कन्या-पक्ष को बुरी तरह तिरस्कृत किया जाता है। इसी प्रकार "Hindu Law" में विहित ठहराये हुए बहु-विवाह की ओट में, प्राचीन भारतीय संस्कृति के दशरथ, भगवान कृष्ण आदि के बहुविवाहों के तथा अर्वाचीन भारतीय देशी नरेशों के एकाधिक पत्नी रखने के उदाहरणों की ओट में कुत्सित वृत्ति चरितार्थ करने का जो ढोंग किया जाता है उसीसे उत्तरदायित्व की अनुभूति का अभाव झलकने लगता है। दशरथ और भगवान कृष्ण का नाम लेने पर उसी समय की सारी परिस्थिति का भी ध्यान रखना आवश्यक है। दशरथ और भगवान कृष्ण के बल, पुरुषार्थ तथा आत्म-निग्रह आदि के भावों की बात को छोड़कर केवल विषयशक्ति के ही एक पक्ष का भाव ग्रहण करना यही बतायेगा कि हमें अपना इतिहास भी ठीक ठीक पढ़ना नहीं आता। इसी प्रकार देशी नरेशों के एकाधिक विवाहों की बात कहकर भी हम अपनी अज्ञानता का ही परिचय देते हैं। यदि हम भगवान कृष्ण का नाम लेते हैं तो हमें यह भी ज्ञान होना चाहिये कि जरासंध के प्राक्ज्योतिष बङ्ग और कलिङ्ग देशों की लगभग १६ हजार युवती कन्याओं को कैद में डाल रखा था जिनकी सारी जवानी जेल में ही वीत गई थी और जब भीमसेन द्वारा भगवान कृष्ण ने जरासंध का बध कराकर उन कन्याओं का भी उद्धार किया तो उन सब ने भगवान कृष्ण से यही कहा था—"योगिराज, आपने हमारा उद्धार किया, यह तो ठीक है, परन्तु हमारा यौवन तो कारागार में ही बीत गया इसलिये, मुक्त संसार में भी तो हमारे लिये कोई आकर्षण नहीं रहा, हम कहां जायं, या तो आप हमें अपनी सेवा में लें अथवा फिर किसी कारागार में बन्द कर दें।" भगवान कृष्ण ने उन १६००० कन्याओं की मर्म वेदना से विद्ध होकर ही उन्हें अपनी पत्नी के दर्जे पर सम्मानित किया था। साधारण इन्द्रियलोलुप, क्षुद्र कलियुगी जीव कृष्ण के इस कार्य के उच्चतम आदर्श की छाया का भी अनुमान कर सकता है क्या? महाराज दशरथ की ३ रानियों की बात सुन लेना एक अलग बात है तथा उनके विवाहों का कारण, परिस्थिति और प्रकरण की पूर्ण

जानकारी एक अलग बात है। यदि महाराज दशरथ की भुजाओं में प्रौढ़ावस्था में भी इतना बल विद्यमान था कि वे बड़े से बड़े बली यक्ष किन्नरों की सेनाओं को क्षण भर में परास्त कर सकें तो कैकयी से विवाह करके उन्होंने कोई अनुचित कार्य नहीं किया। उनके आदर्श को यदि हम ठीक ठीक अपने सामने रखें तो आजकल के किसी नौजवान को एक भी विवाह करने का अधिकार नहीं मिल सकेगा। वर्तमान देशी नरेशों के भो सम्बन्ध में ऐसी ही कुछ बातें हैं और हमें चाहिए कि पहले हम उनके विषय की पूरी जानकारी प्राप्त करें। समाज सुधारकों तथा समाज के वयोवृद्ध पुरुषों को देशकाल का विचार रखना आवश्यक है परन्तु उससे भी अधिक आवश्यक यह है कि वे जिस पद या दर्जे पर हैं उसका उत्तरदायित्व बहुत जोखिम की चीज़ है।

वैधव्य की समस्या

आदर्श हमारा अपना ही होना चाहिए। देशकालानुसार परिवर्तन करना ही होगा। यदि प्राचीन काल में बहु विवाह का प्रचलन था तो विधवाओं का कहीं नाम निशान भी नहीं था। पुरुष वर्ग में अधिकांश की प्रवृत्ति आजन्म ब्रह्मचर्य पालन तथा वैराग्य की ही ओर रहती थी यहां तक कि पुरुषों के त्याग और तपस्या को भंग करा देने के लिये विशेष प्रवीण नायकायें नियुक्त की जाती थीं और इस दृष्टिकोण से आज की स्थिति सर्वथा उल्टी सिद्ध हो रही है। ऐसी स्थिति में रहकर हम अपने कार्यों का औचित्य प्राचीन काल के उदाहरण देकर कभी भी सिद्ध नहीं कर सकते, हमें यह मान लेना पड़ेगा कि आज हम बिल्कुल प्रतिकूल परिस्थिति में हैं इसलिये हमें अपने आदर्श को बनाये रखकर अपनी कार्य पद्धति बदलनी पड़ेगी।

इस प्रकरण में हमें मुख्य तथ्य यह मिलता है कि हमारे समाज में वैधव्य का अभिशाप बीच में पैदा होने वाली एक महाव्याधि है।

इस तथ्य का एक पूरक तथ्य यह है कि व्यभिचार अथवा गुप्ताचार भी हमारा वह शत्रु है जिसको हमने ही, बहुत पीछे से, पैदा कर लिया है।

प्राचीन काल में जिस प्रकार वैधव्य की व्याधि समाज के अन्दर नहीं थी उसी प्रकार गुप्ताचाररूपी शत्रु का भी अस्तित्व नहीं था। प्राचीन काल में जितने भी अविहित कार्य हुए हैं, उनमें से कोई भी छिपाया नहीं गया है और न किसी अनु-

धचित कार्य को उस जमाने में छिपाया ही जा सकता था। जितने भी ऋषि मुनियों या महापुरुषों से अविहित कर्म हुए, उनके जीवन के साथ ही उनके उस चरित्र का अध्याय भी सदा के लिये जुड़ जाता रहा है और उन्हें उसका प्रायश्चित्त भी तत्काल करना पड़ता था। इस प्रकार गुप्ताचार कुछ भी नहीं था, जो कुछ था सब प्रगटाचार ही था।

अतएव यदि वैधव्य आदि के रोग बीच में पैदा हुए तो परिस्थिति के अनुसार उनका प्रतिकार भी करना ही होगा। जब हम साधारण स्थिति में भी अपने शास्त्रीय विधान में यह देखते हैं कि अवस्था विशेष में नियमोल्लंघन दोष नहीं माना जाता तो विशेष परिस्थिति में कार्य पद्धति बदलना दोष कैसे हो सकता है। स्नान-पूजन आदि जैसे सर्वथा अपरिहार्य कृत्यों का भी बीमारी अथवा प्रवास की दशा में जिस समाज में सुलभ और संक्षिप्त रास्ता बनाया गया हो, वही समाज अपनी घातक व्याधि के प्रतिकार के लिये अपने नियमों में आवश्यक परिवर्तन न करे तो इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या हो सकती है। हमारे समाज में वैधव्य की समस्या एक ऐसी समस्या है जिसके प्रति उदासीन रहने से काम नहीं चलेगा। इसके सुलझाने के दो मार्ग हैं। एक मार्ग है संयमात्मक और दूसरा है औषधात्मक। संयमात्मक रास्ते पर जाने के लिये आवश्यक होगा कि हम अपने चारित्रिक संयम को इतना व्यापक कर दें कि मनुष्य के हृदय में एक क्षण भी दुराचार के विचार स्थान न पायें, समस्त समाज के मनोभाव पूर्ण पावन बन जायं और सर्वसाधारण भोग अपेक्षा त्याग को ही सार वस्तु समझने लग जायं। औषधात्मक उपाय का काम है कि अपूर्ण और अभाव वाले तत्वों को पूर्णता प्राप्त तथा सम्पन्न तत्वों के बीच वितरित कर दिया जाय।

हम यह देखते हैं कि संयमात्मक उपाय के लिये वर्तमान समय उपयुक्त नहीं है। आधुनिक विज्ञान युग प्रवृत्ति के ही मार्ग पर चल रहा है। त्याग की भावना का लोप है और आधिभौतिक पदार्थों में लिप्त रहने की अभिलाषा नित्य नये उपायों से चरितार्थ की जा रही है अतएव समाज की वैधव्य समस्या का केवलमात्र सुलझाव औषधात्मक तरीके में ही है। रूढ़ि का आडम्बर करते हुए चाहे हम जितने समय

तक ज़बानी जमा खर्च करते रहें, एक हद तक अपनी हानि कर चुकने के बाद एक समय वह आयेगा जब हम वैधव्य समस्या को सुलझाने के लिये क्रियात्मक कार्य कर उठाने के लिये विवश हो जायंगे, परन्तु अच्छा यह था कि हम विवश होने की स्थिति न आने देते और स्वेच्छा से ही समाज के अन्दर से वैधव्य के रोग को औषधात्मक उपाय से मिटा देते और समाज को नीरोग कर देने का यश प्राप्त करते विशेषतः इसलिये कि मनु, नारद और पाराशर जैसे स्मृतिकारों ने भी परिस्थिति के अनुसार विधवाओं के विवाह की अनुमति दी है।

वर-वधू निर्वाचन के अन्य दोष

वर-वधू के निर्वाचन की स्थिति भी हमारे मारवाड़ी समाज में बदली हुई है। मध्यकाल में जब राजस्थान में कन्याओं का अभाव था तब पुत्र पक्ष वाले ही सुयोग्य वधू ढूंढ़ने का प्रयत्न करते थे परन्तु आजकल खुद कन्या पक्ष वालों को ही वर खोजना पड़ता है। आजकल कन्या पक्ष के लिये वर खोजने का काम काफी परेशानी और परिश्रम का विषय बन रहा है। इस विषय की कठिनाई को देखते हुए ऐसा मालूम होता है कि मरुदेश भी बङ्गाल बन रहा है। कहीं कहीं तो लड़के को नीलाम पर चढ़ा दिया जाता है और उनका सौदा २० से लेकर २५ लाख रु० तक पटता हुआ देखा जाता है। साधारण धनिक वर्ग को लाख डेढ़ लाख तथा उससे कम वाले को २० से ५० हजार रु० की रक़म मिलने का अवसर इसलिये प्राप्त रहता है कि उसके यहां विवाह करने के योग्य एक लड़का है। उसके बाद की स्थितिवालों के लड़कों का मूल्य घटता जाता है क्योंकि किसी भी लड़के के दाम उसके सौंदर्य या उसके गुणों के आधार पर नहीं होते वरन् उसके पिता के धनवान होने के हिसाब से होते हैं। धनवान घर ढूंढ़ने का आशय यही रहता है कि पुत्री सम्पन्न घर में जाकर सुखी रहे परन्तु यह आशा अपने पूर्ण अंशों में सफल नहीं होती। आजकल चुनाव की सफलता का एक अङ्ग यह भी समझा जाने लगा है कि वर तथा कन्या दोनों पक्ष धन की दृष्टि से समान हों और इसका फल यह हुआ है कि चुनाव का क्षेत्र संकीर्ण बन गया है।

चुनाव का क्षेत्र संकीर्ण होने के कारण हमारे समाज के लिये विवाह संस्कार

एक कठिन यज्ञ का विषय बन गया है। हमारे वैश्य वर्ग में भी सब वैश्य सभी वैश्यों के साथ रोटी वेटी का सम्बन्ध नहीं कर सकते। अग्रवाल समाज अपने १७॥ गोत्रों के अग्रवालों में ही अपना सम्बन्ध करेगा परन्तु समगोत्र तथा मातृ-पक्ष की कन्या से विवाह नहीं कर सकता। माहेश्वरी और ओसवाल वैश्यों में भी वही बात है। चुनाव की दूसरी कठिनाई जन्मपत्री के प्रश्न पर भी उपस्थित होती है। सुना जाता है कि प्राचीन समय में जन्मपत्री का विचार पूर्ण पुष्ट और प्रामाणिक होता था परन्तु आजकल यह विद्या भी केवल रूढ़ि अथवा Tradition के रूप में ही रह गई है। चार चार, आठ आठ आने पैसे लेकर रोज़गारी पंडितजी—चाहे वे हनुमान चालीसा भी ठीक ठीक न पढ़ सकते हों—जन्मपत्री तैयार कर डालते हैं और उसकी दशायें भी ऐसी विचित्र और हास्यास्पद होती हैं कि कुछ कहा नहीं जा सकता। लड़का एकदम गौर वर्ण रहता है फिर भी उसके जन्माङ्ग में राहु की दशा प्रधान बता कर जन्मपत्री तैयार कर दी जाती है। पेशेवर पंडित तथा उनके आश्रय दातागण यह भूल जाते हैं कि इस प्रकार के अनर्गल कार्यों से अपनी विद्या का भी अपमान होता है क्योंकि किसी विद्या को विज्ञान की श्रेणी में उसी दशा में स्वीकार किया जा सकता है जब समय के प्रभाव से परे रहकर वह सदैव अपने रूप में एक सी उतरे। अभिभावकों की लापरवाही से—बालक के जन्म का ठीक ठीक समयनोट न करने आदि से—पेशेवर पंडित लोग फलित ज्योतिष को सब समय ठीक नहीं उतर पाते इसीलिये आजकल गणित ज्योतिष विज्ञान के रूप में स्वीकार किया जाता है जब कि फलित ज्योतिष को केवल विद्या की एक कला ही समझा जाता है।

जन्मपत्र की मांगलिक दशा आजकल अपना एक अलग ही कठिन प्रश्न पैदा कर देती है। जब १।४।८।१२ स्थानों पर मंगल की दशा आती है तो वह जन्मपत्री मंगलवाली मंगली अथवा मांगलिक हो जाती है। ऐसी दशा में कठिनाई यह हो जाती है कि मांगलिक कन्या के लिए वर भी मांगलिक ही होने की आवश्यकता हो जाती है। जिस आदमी की एक स्त्री मर जाती है वह स्वयं ही मांगलिक हो जाता है। जन्मपत्री बनानेवाले पंडितों की दशा यह है कि वे अपने को बहुत बड़ा गुणज्ञ

सिद्ध करने के लिये अंग्रेज़ अफसरों के प्रमाण पत्र एकत्र करने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक किया करते हैं।

वर वधू के चुनाव के संबंध में आजकल हमारे समाज में लड़का और लड़की को देखने से सम्बंधित एक नई प्रणाली प्रचलित हो गई है। किसी जमाने में केवल जन्मपत्री देखकर ही लड़का और लड़की के देखने और सुनने का अर्थ पूरा हो जाता था परन्तु आजकल यह विद्या इतनी विकृत हो गई है कि जन्मपत्री से लड़का और लड़कीके गुणावगुणों का प्रकाशन किंचित् भी नहीं होता अतएव प्रत्यक्ष रुप से लड़का और लड़की को देखने को आवश्यकता पड़ती है। अभी बहुत पीछे के समय तक प्रचलन यह था कि नाई अथवा उपरोहित लड़का और लड़की देख आते थे और उन्हीं की रिपोर्ट पर संबंध तै हो जाता था। नाई और उपरोहित के ही जिम्मे यह काम सौंपने के कई कारण थे। पहले कुछ ऐसा नियम था कि किसी शहर या गांव का संबंध उसी शहर या गांव में नहीं होता था। गांव के किसी आदमी की बेटी को सारा गांव बेटी के ही रूप में समझता था इस लिये लड़की का रहन सहन वधू की तरह नहीं होता था और सब कोई उसे देख सकता था। आज भी छोटे छोटे गावों में ऐसा ही व्यवहार देखने में आता है। इस कारण से नाई तथा उपरोहित किसी भी बालिका को देख सकते थे और उसके गुण कर्म और स्वभाव की जानकारी प्राप्त कर सकते थे। यातायात की कठिनाई तथा यात्रा के कष्टों के कारण भी नाई अथवा उपरोहित ही भेजे जाते थे। बिना सम्बन्ध हुए एक दूसरे के यहां जाना भी उचित नहीं समझा जाता था और इसके लिये नाई और उपरोहितों को दूत कर्म के सभी अधिकार और सभी सुविधायें प्राप्त रहती थीं। उस जमाने में बिना संवंध और संपर्क के लड़की या लड़के को कहीं भेजने का भी नियम न था। सीधे संबंध वाले की ओर से किसी लड़की या लड़के को नापसन्द कर देने का अपमान भी अभीष्ट नहीं होता था, इसीलिये नाई अथवा उपरोहितों के मध्यस्थ प्रतिनिधित्व से काम लिया जाता था।

लड़का और लड़की देखने के प्रश्न पर आजकल यह होता है कि मौखिक स्वीकृति हो जाने पर पुरुष वर्ग के देखने के लिए लड़का और लड़की को एक दूसरे

के घर में कुल वधुओं के बीच में भेज दिया जाता है और यहीं से विवाह पर अंतिम स्वीकृति हो जाती है। अंग्रेजी व्यवहार में इस विधि को Estimation कहते हैं। हमारे यहां इस विधि में दोष यह है कि जिस लड़का और जिस लड़की का विवाह होनेवाला होता है वे स्वयं एक दूसरे को नहीं देख सकते चाहे वे टट्टी की ओट से नाना प्रकार के शिकार भले ही खेलते रहें। अभी की हालत यह है कि इस प्रकार से आये हुए केस ९८ प्रतिशत पक्के ही हो जाते हैं। समाज के अन्दर इस दिशा में भी कुछ प्रगति की जा रही है परन्तु उस प्रगति को तभी सुन्दर कहा जायगा और तभी वह स्थायी भी होगी जब उसमें भारतीय आदर्श को ही प्रमुख स्थान दिया जायगा।

"नेग" तथा विधि

उपर्युक्त विधि पूरी होनेके बाद विवाहसे संबन्धित अन्य प्रचलन प्रारम्भ होते हैं। इन प्रचलनों में अधिकांश को "नेग" की संज्ञा दी जाती है। विवाह की मौखिक स्वीकृति के बाद पहला नेग "मुंदे" का होता है जिसे सगाई भी कहते हैं। कहीं कहीं इसे "कचौले का नेग" भी कहते हैं। इस विधि के अनुसार वर पक्ष की बहनें तथा लड़कियां आदि अपनी भावी "भाभी" के यहां जाती है और उसे अंगूठी पहनाती हैं। यह विधि अंग्रेजी की Engagement तथा Wedding Ring के समकक्ष है, भेद केवल यह है कि अंग्रेजी विधि में लड़का खुद अपने हाथ से लड़की को अंगूठी पहनाता है और हमारे यहां लड़के की बहन लड़की को अंगूठी पहनाती है।

जब वर पक्ष की लड़कियां वधू पक्ष में जाती हैं तो वहां से उन्हें चोली, कब्जे और अतिरिक्त रुपये की (ऊपर) भेंट मिलती है। हमारे समाज का यह एक नियम विशेष है कि जब कोई किसी के यहां जाता है तो उसको बिना उचित सत्कार विमुख भेज देना अच्छा नहीं समझा जाता। प्राचीन काल में जब यातायात के साधन लिये बैलगाड़ी या ऊंटों की सवारी में जाना पड़ता था और वधू के गांव में ठहरना भी पड़ता था अस्तु वधू पक्ष की ओर से उनका यथावत आतिथ्य सत्कार किया जाता था। आजकल उसी आदर्श पर "कचौले का नेग"

चल रहा है और उसी आधार पर चोली, कब्ज़े तथा ऊपर की रक़में दी जाती हैं।

आजकल इस नेग में २०) से लेकर २० हज़ार रुपये तक की रक़म खर्च हो जाती है। वर पक्ष में जितनी भी लड़कियां होंगी, कन्या पक्ष की ओर से उतने ही कब्ज़े और उतनी ही चोलियां तथा प्रत्येक लड़की को ऊपर की रकम के रूप में कम से कम ११-११ रु० तथा अधिक से अधिक जितनी सामर्थ्य हो, उसी के अनुसार देने का प्रचलन है। यह क्रम एक ही दिन में दो बार होता है।

इस नेग के पश्चात सगाई की मिलनी की नेग आता है जिसमें कन्या पक्ष के पुरुष एकत्र होकर वर पक्ष के मकान पर जाते हैं। उधर वर पक्ष वाला भी अपने इष्ट मित्र परिवार और सबन्धी को निमन्त्रित करता है। दोनों मिलते हैं, पचायत की ओर से सौदा पक्का होता है। लड़के के पिता या बुजुर्ग को "मिलनी" दी जाती है जिसकी निर्धारित रक़म ४) की होती है, वर को इच्छानुसार चाहे जो कुछ भी दे सकते हैं।

निश्चय का प्रकाशन, जिसे (Confirmation by publicity) कह सकते हैं, हमारे देश के प्रायः सभो वर्गों और जातियों में एक न एक रोति या विधि में पाया जाता है। सगाई की यह रीति मारवाड़ी जाति में अधिक खर्चीली सिद्ध होती है। अंगरेज़ों के यहां एक अंगूठी जो सामर्थ्यानुसार मूल्य की होती है तथा लगभग ५ रु० विज्ञापन (Advertisement) में खर्च करके सगाई की विधि पूरी कर दी जाती है।

मुसलमानों के यहां सगाई की विधि में मुल्ले का "आपका रिश्ता मंज़ूर और क़बूल फरमाया गया" का वाक्य ही पर्याप्त होता है।

विवाह का आधार और "हिन्दू-लॉ"

हिन्दुओं की श्रुति-स्मृति और शास्त्रों में ८ प्रकार के विवाह बतलाये गये हैं। दैव-विवाह, आर्ष-विवाह, ब्राह्म विवाह, गान्धर्व-विवाह, प्राजापात्य विवाह, आसुर-विवाह, राक्षस विवाह, तथा पैशाच-विवाह के आठों प्रकार के विवाहों का वर्णन पुराणों में मिलता है। वेदाध्ययन तथा वैदिक कर्मकाण्डों के लुप्त होते ही आर्ष और दैव

विवाहों का अस्तित्व जाता रहा। स्त्रियों की स्वतंत्रता नष्ट होने के बाद से गान्धर्व और प्राजापात्य विवाह भी बंद हो गये तथा ब्रिटिश क़ानून के युग में जब भारतीय दंड-विधान बना तो राक्षस और पैशाच विवाह दंडनीय और अवैध ठहरा दिये गये।

वैदिक काल में हिन्दू नारी का स्थान पुरुष के समकक्ष और बराबर का था। उस समय नारी का अधिकार और उसकी स्वतंत्रता कुछ अंशों में पुरुष से भी बढ़-चढ़कर थी। यज्ञ-मंडप, शास्त्रार्थ, युद्ध तथा वेदाध्ययन, सभी विषयों में उनकी गति पुरुष के बराबर थी। दैव, आर्ष, गांधर्व और प्राजापात्य विवाहों के अस्तित्व से ही वैदिक कालीन नारी के अधिकार तथा उसकी स्वाधीनता का प्रमाण पुष्ट हो जाता है। वर्तमान हिन्दू लॉ के अनुसार अब हिन्दू समाज में केवल ब्राह्म और असुर विवाहों की ही विधि शेष रह गई है।

स्मृतियों के रचना काल में ब्राह्म, दैव, आर्ष एवं प्राजापात्य विवाह साधारण रूप से प्रचलित थे शेष ४ प्रकार के विवाहों का प्रचलन बन्द हो गया था फिर भी उस ज़माने में भिन्न वर्णों के लिये भिन्न प्रकार के विवाहों का विधान वैध था। आम तौर से राक्षस विवाह क्षत्रियों में तथा असुर विवाह शूद्रों के लिये विहित समझा जाता था। पैशाच और राक्षस विवाहों के निंद्य समझने की भावना इस युग में जोर पकड़ गई थी। पैशाच और राक्षस विवाहों में स्मार्त काल में वैदिक विधियां मनाने का भी प्रचलन उठ चुका था।

धर्मशास्त्रों की टीकाओं के समय तक प्रचलित तथा अप्रचलित विवाहों के परिणाम में भेद उत्पन्न हो गया। जो स्त्रियां प्रचलित विवाह-विधि से ब्याही जाती थीं वे ही पत्नी होती थीं, उन्हें ही पत्नीत्व के अधिकार प्राप्त होते थे, वे ही पति के साथ यज्ञ में बैठ सकती थीं तथा सपिण्डा होकर पति की उत्तराधिकारिणी बन सकती थीं।

वर्तमान हिन्दू लॉ ने प्रचलित और अप्रचलित विवाह के भेदों को मिटा दिया है। विवाह की विधि पूर्ण हो जाय, बस स्त्री को पत्नित्व का अधिकार मिल जाता है। अब यह भेद भी नहीं रहा कि ब्राह्मण केवल ब्राह्म विवाह करे अथवा शूद्र आसुर विवाह ही करे। बम्बई और मद्रास के हाईकोर्टों में इसी सम्बन्ध के कई

मामलों का निर्णय किया गया है जिनके अनुसार यह जरूरी नहीं पाया गया कि ब्राह्मण केवल ब्राह्म विवाह की ही विधि से आबद्ध है अथवा शूद्र केवल आसुर विवाह की ही विधि पूर्ण करने के लिये बाध्य है। आजकल ब्राह्म तथा आसुर विवाहों में भी केवल ब्राह्म का ही स्थान प्रशस्त रह गया है और इसलिये विवाह की विधि पूरी हो जाने पर आमतौर से यही मान लिया जाता है कि विवाह ब्राह्मविधि से ही हुआ है। किसी अदालत के सामने यदि यह विवाद पैदा हो जाय कि विवाह ब्राह्म-विधि से नहीं हुआ है तो जितने समय तक यह सिद्ध न हो जाय कि विवाह आसुर विधि से हुआ है, उतने समय तक अदालत यही मान लेगी कि विवाह ब्राह्म विधि से ही हुआ है, चाहे वर और कन्या शूद्र वर्ण के ही क्यों न हों। तात्पर्य यह कि बचे हुए दो प्रकार के विवाहों में भी ब्राह्म विवाह की ही प्रधानता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्म विवाह भी केवल नाम के ही लिये ब्राह्म विवाह रह गया है क्योंकि ब्राह्मविवाह की यथार्थ विधि तो वेद के अध्ययन के साथ ही हम से विदा हो गई है। ब्राह्म और आसुर बिवाह विधि में अब केवल इतना ही भेद शेष रह गया है कि ब्राह्म-विवाह में कन्यापक्ष वरपक्ष से बिना कुछ लिये ही कन्यादान देता है जबकि आसुर विवाह में कन्यापक्ष वरपक्ष से कुछ दान या शुल्क लेकर विवाह करता है। इतना होते हुए भी खुद कन्या को अथवा कन्या की माता को उपहार रूप से वरपक्ष की ओर से दी हुई कोई वस्तु शुल्क नहीं समझी जाती और न इन उपहारों के देने से यही समझा जा सकता है कि विवाह की रीति आसुर हो गई। वस्तुतः आसुर विवाह को एक प्रकार का कन्या-विक्रय हो कहा जा सकता है अतएव कन्यादान के बदले में मिले हुए द्रव्य को ही शुल्क कहा जायगा।

भारतीय दंड-विधान के नियम ऐसे हैं कि उनके अनुसार दासों की बिक्री भी अपराध और दण्डनीय है, कन्या-विक्रय की तो बात ही क्या है। इतने पर भी विवाह का विषय इतने विस्तार में सामाजिक हो चुका है कि इसके लिये चलने वाले लेन-देन को कानूनी दण्ड के अन्तर्गत लाना एक दुस्साध्य विषय है। यह ठीक है कि कन्यापक्ष कन्या को किसी जायदाद की भांति नहीं बेच सकता तो भी वरपक्ष से एक निश्चित रक़म लेकर वह आसुरविधि से विवाह कर देगा और इसे अदालत

ब्राह्मविधि ही ठहरा देगी, हिन्दू लॉं का कोई भी नियम इस कार्य में बाधा नहीं डाल सकता। इसके उपरान्त यह बात अवश्य शेष रह जाती है कि विवाह के उपरान्त या विवाह-विधि से पूर्व कन्यापक्ष वरपक्ष के विरुद्ध यह दावा नहीं कर सकता कि उसे विवाह के लिये कथित रक़म नहीं दी गई है अर्थात् शुल्क लेकर विवाह-विधि पूरी कर देने का रास्ता साफ है साथ ही शुल्क रूप में दी हुई रक़म भी ऐसी अवैध नहीं सिद्ध हो सकती कि वरपक्ष कन्यापक्ष पर नालिश करके उसे वापस ले सके।

ब्राह्मविवाह के अतिरिक्त अन्य प्रकार के विवाह विधियों को अग्राह्य और अवैध बतानेवाली कोई स्पष्ट धारा हिन्दू लॉं में नहीं है। अवशिष्ट प्रकार के विवाहों की विधि लुप्त हो गई है तथा हमने स्वयं ही उन विधियों को उठा दिया है अतएव राक्षस अथवा पिशाच विधियों से भी जो विवाह सम्पन्न हो सकते हैं उन्हें हिन्दू लॉं यह नहीं बता सकता कि वे अवैध ही हैं। जिस पक्ष के साथ बलप्रयोग किया गया हो अथवा उसके साथ छल किया गया हो, यदि वह चाहे तो विवाह को अवैध बता सकता है। उदाहरणार्थ मान लिया कि किसी ने किसी की कन्या का अपहरण करके उसके साथ विवाह कर लिया है और उसे भारतीय दंड विधान के अनुसार सजा भी हो गई तो भी जबतक कन्यापक्ष उसके विरुद्ध यह अभियोग न लगावे कि विवाह अवैध है, तबतक अदालत उसके विवाह को अवैध नहीं ठहरा सकती। कन्यापक्ष जब अभियोग लगायेगा तो अदालत यही विचार करेगी कि कन्यापक्ष को कोई विशेष क्षति तो नहीं पहुँची है अथवा विवाह की कोई विशेष विधि सम्पन्न होने से छूट तो नहीं गई। यदि कोई छोटी ही त्रुटि समझी गई तो उसके लिये विवाह अवैध नहीं ठहराया जाता।

हिन्दू लॉं तथा साधारण जाब्ते के अनुसार किसी नाबालिग को अपने वारिस या संरक्षक की स्वीकृति के बिना कोई काम करने का अधिकार नहीं प्राप्त है। प्रायः किसी नाबालिग अथवा अवयस्क की जटिल परिस्थिति की दशा में स्वयं अदालत की ही ओर से संरक्षक नियुक्त कर दिये जाते हैं। इन दशाओं में भी यदि नियुक्त संरक्षक की अनुमति के बिना ही किसी ने उसकी आश्रित कन्या से विवाह कर लिया तो वह विवाह-यदि अन्य सब विधियों से उचित है तो—केवल इसीलिये अवैध नहीं हो

सकता कि उसके लिये संरक्षक की स्वीकृति नहीं मिली है। यदि अवयस्क कन्या की भी अस्वीकृति सिद्ध हो जाय तब विवाह अवश्य अवैध करार दे दिया जायगा। स्त्री पक्ष की अस्वीकृति से किया हुआ विवाह-चाहे वह कितना भी योग्य अथवा आवश्यक क्यों न हो—अदालत द्वारा वह प्रत्येक दशा में तोड़ ही दिया जायगा। ऐसे मामलों में न्यायालय को विशेष ध्यान देना पड़ता है कि विवाह के टूटने से कन्या को विशेष हानि तो नहीं पहुंचेगी और यदि कन्या कुछ समझ बूझ रखती है तो उसकी सम्मति पर भी ध्यान दिया जायगा परन्तु यदि सहवास का आरंभ हो चुका हो तो मामला सूक्ष्म रूप से विचारणीय बन जाता है, क्योंकि वहां कन्या की वास्तविक स्वीकृति और सम्मति पर ही सारा दारमदार रहेगा। राक्षस और पैशाच विवाहों की स्थिति इतने ही संक्षिप्त रूप में रह जाती है।

दैव, आर्ष, प्राजापात्य और गांधर्व विवाह अब नहीं होते किन्तु यदि इन प्रथाओं के अनुसार विवाह हो जायं तो हिन्दू लॉ को कोई आपत्ति नहीं होती। कम से कम गान्धर्व विवाह तो पूर्ण रूप से नहीं उठा है फिर भी वर्तमान हिन्दू लॉ के अनुसार विवाह को इस पद्धति को वैसा ही गर्हित माना जाता है जैसे किसी रखेली को घर में रखकर उसके साथ व्यभिचार करना। यथार्थ में गान्धर्व विवाह यह नहीं कहता कि विवाह की विधि पूरी होने से पूर्व ही स्त्री और पुरुष का सहवास हो जाय। प्राचीन काल में जो गान्धर्व विवाह होते थे, किसी भी प्रकार उनपर स्वेच्छाचारिता या उच्छृ-ङ्खलता का दोष नहीं लागू होता। प्राचीन काल के गान्धर्व विवाह वैसे ही दृढ़ और वैध होते थे जैसे कि ब्राह्म आदि परन्तु कालान्तर में स्वेच्छाचारिता बढ़ती गई फलतः गान्धर्व विवाह निन्दास्पद माना जाने लगा और इसी क्रम से उसका लोप भी होता गया। प्राचीन काल में राज कन्याओं का जो स्वयंबर होता था, वह गान्धर्व विवाह का ही नामांतर था इसलिये अब भी यदि वर-कन्या अपनी इच्छा और स्वीकृति से एक दूसरे को पसन्द कर लें एवं वैवाहिक जीवन बिताने का दृढ़ संकल्प कर लें तो हिन्दू कानून की ओर से कोई आपत्ति नहीं है परन्तु आवश्यकता यह होगी कि पारस्परिक स्वीकृति के पश्चात विधिवत विवाह की रीति सम्पन्न हो और उसके बाद ही दाम्पत्य संयोग हो। अंगरेजी शिक्षा के प्रसार से भी गान्धर्व विवाह का क्षेत्र

"अन्यां चेद्दशयित्वान्यां वोढुः कन्या प्रदीयते।
उभे ते एक शुल्केन वहे दित्यब्रवीन मनुः॥"

अर्थात् यदि कन्या का पिता किसी कन्या को दिखाकर उसके विवाह करने का निश्चय करे और पीछे वह कन्या न देकर दूसरी कन्या को विवाह के लिये उपस्थित करे तो वर को अधिकार है कि उसी शुल्क में दोनों कन्याओं को व्याह ले।

वाग्दान के पश्चात् संभावित दुर्घटना के संबन्ध में मनुस्मृति आदेश देती है कि:—

यस्या म्रियते कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः॥

अर्थात् वचन से कन्या दान (वाग्दान) कर चुकने पर यदि वर की मृत्यु हो जाय तो उसका छोटा भाई उसी विधि से उसका पाणिग्रहण करे।

वाग्दान की दृढ़ता के विषय में मनुस्मृति में और एक व्यवस्था इस प्रकार से दी गई है—

न दत्वा कस्यचित् कन्यां पुनर्दद्यात् विचक्षणः।
दत्वा पुनः प्रयच्छन्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम्॥

अर्थात् वचन से एक वार कन्या दान कर चुकने पर फिर दूसरे को वह कन्या नहीं देना चाहिये क्योंकि इसमें झूठा होने का दोष लगता है।

यहाँ यह बात विचार करने की है कि यदि कोई मनुष्य वाग्दान के पश्चात कन्या दान नहीं करता था तो सामाजिक दृष्टि से वह पाप का भागी होता था फिर भी राजकीय व्यवस्था द्वारा वह दंडित नहीं होता था। याज्ञवल्क्य स्मृति में इस विषय का स्पष्ट प्रमाण इस प्रकार दिया गया है :—

सकृत्प्रदीयते कन्या हरंस्तांश्चोर दण्डभाक्।
दत्तामपि हरेत्पूर्व्वात् श्रेयांश्चेद्वर आ व्रजेत्॥

अर्थात् कन्या एक ही वार दी जाती है, देकर वापस लेने वाले को चोरी का दण्ड मिलना चाहिये। परन्तु यदि उससे श्रेष्ठ वर आ जाय तो दी हुई कन्या को भी लौटा लेना चाहिये।

इससे स्पष्ट है कि अकारण सगाई या मंगनी को तोड़ना यद्यपि चोरी के समान

दंडनीय है, तथापि उत्तम वर के मिलने पर स्वतंत्रता पूर्वक पहिले के वाग्दान को तोड़ा जा सकता है।

वर्तमान हिंदू लॉ में ऐसी कोई बात नहीं है कि कन्याओं को इस व्यवहार के अधिकार से बंचित किया जा सके। हां, जब तक कन्या वयस्क नहीं हो जाती तब तक वह स्वयं ऐसा करने में विवश है।

इस प्रकार का विवाह इस प्रकार का व्यवहार किसी पक्ष के लिये कानूनी विवशता उपस्थित नहीं करता। इसलिये यदि कोई पक्ष, चाहे वर कन्या स्वयं हों अथवा उनके अभिभावक हो, मंगनी या सगाई के अनुसार विवाह करने पर उद्यत नहीं हैं तो दूसरे पक्ष के लिये एकमात्र यही उपाय है कि वह प्रतिपक्षी पर क्षति-पूर्ति का अभियोग लावे। अदालत उसकी क्षति उस पक्ष से पूर्ण करा देगी ; अर्थात् सगाई या तिलक के उपलक्ष में जो कुछ रुपया इत्यादि दिया गया था, वह लौटा दिया जायगा। परन्तु ऐसे रुपये, जेवर, कपड़े या जवाहरात, जो बिना किसी मांग या प्रतिज्ञा के, केवल प्रीति निदर्शन के लिये दिये गये थे नहीं लौटाये जा सकते। इस प्रकार की भेंटें जो वर या कन्या के लिये नहीं, प्रत्युत उनके अभिभावकों की राय को अपने पक्ष में लाने को दी जाती है, उनके विक्रय को बढ़ाने वाली समझी जाती है, इसलिये ऐसा निर्णय हुआ है कि ऐसी भेंट लौटाई न जायँ। इतना होते हुए भी हिंदू-लॉ के अनुसार कई अदालतों ने इसके विरुद्ध भी निर्णय दिये हैं।

कन्यादान

वाग्दान केवल कन्यादान का ठहराव मात्र है, परन्तु विधिपूर्वक कन्यादान करना ही यथार्थ विवाह है। हमारे शास्त्रों में यद्यपि इसका निर्णय नहीं है कि वाग्दान कौन करे, तथापि कन्यादान के विषय में पूर्ण विधान है। वर या कन्या के संरक्षक के रूप में कोई भी व्यक्ति वाग्दान कर सकता है परन्तु कन्यादान का अधिकार सबको नहीं है। याज्ञवल्क्यस्मृति में इस सम्बन्ध की व्यवस्था इस प्रकार दी गई है :—

पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा।
कन्या प्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः॥

अर्थात् पिता, पितामह, भाई, सगोत्री अथवा माता को क्रमशः अधिकार है।

कन्यादान के कार्य में माता का स्थान सगोत्री से भी पीछे रक्खा गया है जिसके लिये आधुनिक मनीषीगण कई प्रकार की आपत्तियां उपस्थित करते हैं। विशेषतः इसलिये कि दत्तक पुत्रदान के समय स्मृतियाँ माता का स्थान पिता के बाद ही निर्धारित करती हैं। वर्तमान हिंदू-लॉ इस प्रश्न के विवाद को छोड़कर इस क्रम को केवल अर्थवाद मानता है। बम्बई हाईकोर्ट के एक जस्टिस महोदय ने कन्यादान के क्रम को केवल वेदी पर कन्यादान की विधि मात्र पालन करने के लिये उपयुक्त समझा है। उक्त जस्टिस महोदय के मत में विवाह का निश्चय ही मुख्य वस्तु है और कन्यादान एक विधि मात्र है।

हमारे वैदिक साहित्य में स्त्रियों के अधिकार और उनकी स्वतन्त्रता पुरुषों के समकक्ष और उससे भी श्रेष्ठ रूप में स्वीकृत थी। उसके पश्चात सूत्र-काल और स्मृति-काल तक स्त्रियों के अधिकारों का क्षेत्र संकुचित होता गया, परन्तु इसके पश्चात एक बार फिर स्त्रियों के अधिकार का क्षेत्र पूर्ण विकास के रूप में आया जिसका क्रम सन् ११०० ई० तक रहा। इसके पश्चात हमारे समाज पर पुनः अविद्या कर तिविड़ अन्धकार छा गया। परिणामस्वरूप हम वेद शास्त्र और श्रुति स्मृतियों के ज्ञान से हाथ धो बैठे। समाज की दशा उत्तरोत्तर विकृत ही होती गई। अँग्रेजी शासन काल में न्यायालयों द्वारा हिंदू-विधान के व्यवहार से स्त्रियों को बहुत दुःख सहना पड़ा और वे अपनी प्रारंभिक स्थिति से भी बहुत नीचे गिर गईं। इस बात की घोषणा हुई कि हिन्दुओं का शासन उसके अपने विधान से किया जायगा। इसके लिये एक कृतिम मनुस्मृति का अनुवाद किया गया और उसके नियम उस समाज पर लागू किये गये जो मनु के समय से बहुत दूर आ चुका है।

कुशल यही है कि इस काल में कानून जीवन का प्रतिबिम्ब नहीं रह गया है जैसा कि पहले हिंदू-विधान के समय था। यह रूप समाज की वर्तमान अवस्था की अपेक्षा शास्त्रों के पुराने अशुद्ध अर्थों के अनुसार गढ़ा गया है। फलतः स्त्रियों के प्रति यह विधान अत्यन्त निष्ठुर हो गया है और उनके अधिकारों तथा उनके दरजे को बहुत नीचे कर दिया गया है। प्रचलित कानून ने हमारे समाज के उस आधार

पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया है जिसके अनुसार स्त्रियाँ आज भी आदर, सम्मान और पूज्य दृष्टि से देखी जाती हैं।

हमें स्त्रियों को विधान में वे हक़ और अधिकार लौटा देने चाहिये जिन्हें हम लोगों ने उनसे छीन लिया था। कानून के नाम पर उनपर जो अन्याय हुये हैं उन्हें दूर कर देना चाहिये। चूँकि जीवन में हम उनका सम्मान करते हैं इसलिये विधान में भी उन्हें अपने बराबर बनाना चाहिये। तभी विधान वास्तव में जीवन का प्रतिबिम्ब, समाज का सेवक, हमारी उन्नति और प्रगति में सहायक और महान एवं शक्तिशाली हिन्दू सभ्यता का निर्माण कर्त्ता होगा।

विवाह के कुछ प्रचलन

सगाई अथवा Marriage Contract के पश्चात मारवाड़ी समाज में पाणिग्रहण के पूर्व ही "मर्द-मिलाई" का एक प्रचलन होता है जिसे ठेठ मारवाड़ी भाषा में "मोट्यारां की मिलाई" कहते हैं। इस प्रचलन में लड़की वाले पक्ष को लड़के (वर) को, वर के पिता को तथा वर के मातुल (मामा) को जिसे मारवाड़ी में "भाती" कहते हैं ४-४ रु० की भेंट दी जाती है। वर के पिता के मातुल को (बड़े भाती) भी यह भेंट ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त रहता है।

इस प्रचलन के बाद "हरा भरा" का नेग होता है जिसमें लड़की वाले की ओर से १ थाल में हरा पुदीना तथा एक थाल में धनिया भरकर साथ ही फल, रुपये और लड्डू रख कर लड़के वाले के यहां भेजे जाते हैं।

इसके पश्चात "लुगायां की मिलाई" अर्थात् स्त्रियों की भेंट का नंबर आता है। लड़की के पक्ष की स्त्रियां वर के घर जाती हैं जहां रुपये देकर उनको सम्मानित किया जाता है। इस प्रकरण में दिये जाने वाले रुपये की रक़म २०-२५ रुपये से लेकर ४-५ हजार तक पहुँच जाती है।

इसके बाद "आंगी मेवा" की विधि होती है जिसके अंतर्गत कन्यापक्ष को वर पक्ष के लिये २ ओढ़ने और ४ कब्जे वधू की सास के लिये, तथा वरके लिये पोशाक गहना, खिलौने, चौपड़, शतरंज, गंजीफा, इतर, सेण्ट, लड्डू और नगद रुपये दिये जाते हैं। नगदी रक़म १०१) से लेकर ११ हजार तक होती है। इस

"आंगी मेवा" की विधि से वर पक्ष को यह प्रमाण मिलता है कि कन्या पक्ष विवाह में कितना खर्च करेगा। "आंगी मेवा" में नगद तथा वस्तु रूप में जितनी रकम मिलती है उससे ५ गुनी रकम विवाह में देने का हिसाब रहता है।

"व्याह हाथ लेना" की रूढ़ि के अनुसार लड़की वाले की ओर से पापड़ तथा मंगौड़ी लड़के वाले को भेजी जाती हैं। इसी समय गीत बैठाला जाता है और गाने बजाने वाली किराये की औरतें नियुक्त की जाती हैं। उधर "नालपूरे" की रूढ़ि से वर-पक्ष में भी गाने बजाने वाली औरतें नियुक्त की जाती हैं।

"हरदात" की विधि के अनुसार वर-पक्ष में ७ सुहागिनें एकत्र होकर नमक छूती हैं तथा वर के शरीर पर सातों मिलकर पीठी लगाती हैं तथा फिर जौ कूटे जाते हैं। इसके पश्चात् "राती जुगा" (रात्रि-जागरण) तथा "थापा" की विधियां पूरी की जाती हैं और संबंधी जनों को बुलाकर प्रीति-भोज दिया जाता है जिसे "वान" कहते हैं। इसके उपरांत गणेश पूजन होकर वर को हंसली व अंगूठी पहनाई जाती है और "रोल चढ़े" तथा "झोल घाले" (केशों में तरल द्रव्य छोड़ने की विधि जिसे हम Shampooing कह सकते हैं) की विधियां सम्पन्न होती हैं और बाद में वर की आरती अथवा "आरता" उतारी जाती है।

इसके उपरांत वर तथा कन्या दोनों ही पक्षों में "वान" (बंधु बांधव एवं इष्ट मित्रों को भोज) की विधि होती है जिसके बाद "टीका ओढ़ना" की विधि में पुनः लड़की वाले की ओर से वर पक्ष की औरतों के लिये कब्जे, चोली और रुपये भेजे जाते हैं।

इतनी विधियों के सम्पन्न हो जाने के बाद लड़के वाले के यहां लड़की वाले की ओर से लगन भेजी जाती है। पश्चात् "चाब" का नंबर आता है जिसके अनुसार एक पत्र में विवाह का दिन, घड़ी, मुहूर्त आदि लिखकर लड़के वाले को दिया जाता है और इस स्थल से लड़की का विवाह उस मुहूर्त में अनिवार्य समझ लिया जाता है। इसके बाद की विधियों का परिचय इस प्रकार है :—

मेल के जीमनवार—लड़के वाले के यहां बंधु बांधव इष्ट मित्रों का भोज [illegible]वाह के २-३ दिन पूर्व होता है।

मांडा भांकना—इसे प्रचलित रूप में हम ब्राह्मण भोजन कहते हैं।

कोरथ—शादी के दिन कन्या-पक्ष के लोगों द्वारा वर पक्ष की बारात का स्वागत, जिसे कहीं कहीं "अगवानी" भी कहते हैं।

घुड़चढ़ी—वर को घोड़ेपर चढ़ाकर लड़की पक्ष के स्त्री-पुरुष तथा सब बारात को किसी मंदिर में ले जाते हैं, फिर वहां से स्त्रियां वापस चली आती हैं। इस स्थल से वर के लिये यह प्रतिबन्ध लग जाता है कि वह वधू को अपने साथ विदा करा लेने के पूर्व अपने घर में प्रवेश नहीं कर सकता।

टोंटिया—वर के घर की औरतें बारात चल देने के बाद रात के समय अपने एक नाटक-स्वांग द्वारा विवाह करतीं हैं।

फेरे—मंडप के नीचे पाणिग्रहण, ७ भांवरे होती हैं। इसी समय गहना-चढ़ाव लड़की को दिया जाता है। पश्चात् कन्या पक्ष की स्त्रियां वर को अंदर ले जाती हैं और उससे श्लोक पढ़ाया जाता है, बदले में उसे पारितोषिक दिया जाता है।

कमर कलेवा—विवाह के दूसरे दिन कन्या के घर में वर का भोज। इसी अवसर पर "कांगना जुआ" तथा कंगन खोलने की विधियां होती हैं।

सजनगोठ—लड़की वाले के घर में वर-पक्ष के लोगों की जीमनवार।

विदा या पहरावनी—विवाह की सब विधियां पूरी हो जाने पर दे लेकर लड़की को विदा कर देना। वधू को लेकर जब वर अपने घर पहुंचता है तो वर-पक्ष की स्त्रियां "टोडारमल जीत्याजी" का गीत गाती हैं। इस गीत का आशय यह होता है कि पुत्र विवाह रूपी समर में जाकर विजयश्री के साथ सकुशल आ गया।

नव-वधू ३ दिन तक वर के घर में रहकर पुनः पितृ-गृह चली जाती है। नियम ऐसा रहा है कि इस अवधि में वर-वधू को मिलने नहीं दिया जाता रहा है। वर-वधू के मिलने का अवसर मुकलावा के बाद ही वंध रहता था परन्तु आजकल विवाह में विदा के ही समय "फेर-पाटा" की एक विधि पूरो कर मुकलावा की विधि भी पूरी कर दी जात्ती है और इसके फलस्वरूप वधू मुकलावा की अवधि के पूर्व भी पतिगृह जा सकती है।

आज कल की प्रगति शीलता के प्रवाह से मारवाड़ी समाज के कई एक शिक्षित

और धनवान खानदानों में दो चार विवाह इस प्रकार से हुये हैं कि एक ही दिन कन्या और वर पक्ष के सब आदमी एक निर्दिष्ट स्थान पर एकत्र हो जाते हैं और विवाह से संबन्धित सारे विधि विधान संक्षिप्त रूप से संपन्न कर दिये जाते हैं तथा देन लेन के सब नेग पूरे करने के लिये कन्या पक्ष की ओर से एक चेक काट कर दे दिया जाता है और इस प्रकार अति स्वल्प समय में विवाह का कार्य समाप्त हो जाता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इस आधुनिक शैली में समय तथा फिज़ूल खर्ची की उल्लेखनीय वचत हो जाती है। परन्तु अपने हरेक कार्य में तथा जातीय संस्कार में एकांगी अर्थ-शास्त्रका नियम लागू करना अपनी संस्कृति के विचारसे कोई बहुत अच्छी बात नहीं कही जा सकती। इसपर भी विवाह को इस आधुनिक संक्षिप्त शैलीमें—हमारे बिचार से—शायद फिज़ूल खर्ची और समय को वचत के आदर्श के निर्वाह की भावना नहीं के बराबर ही रहतो है जब कि विवाह की शास्त्रोय विधियों को 'व्यर्थ का बखेड़ा' समझ कर एक दम हटा देने और विवाह को आवश्यक समझते हुये भो बिल्कुल साधारण जानकर उसे शोघ्र से शीघ्र पूरा कर डालने की भावना ही प्रधान रहती है। वस्तुतः यही हमारी भूल है। हमारे लिये आवश्यक यह है कि पहले हम सभी विधियों के कार्य और कारण का यथार्थ रहस्य समझें फिर उस संबन्ध के शास्त्रीय प्रमाणों का पता लगावें और इतना कर चुकने के पश्चात फिर किसी नवीन श्रेयस्कर शैलो का प्रचलन इस प्रकार से प्रारम्भ करें कि देश कालानुसार हमें कोई असुविधा भी न हो साथ ही हमारी वैदिक संस्कृति के श्रेष्ठतम आदर्श पर किंचित मात्र व्याघात भी न पहुँचे। समाज के सामूहिक और वैयक्तिक हित को हानि पहुँचाने वाली रूढ़ियों और प्रचलनों को रोक देना प्रत्येक दशा में उचित और क्षम्य हो सकता है परन्तु एक तरफ से सभो विधियों को मिटा देना अपने सामाजिक नियमों के प्रति अपनी अज्ञानता का प्रदर्शन ही सिद्ध होगा।

विवाह और गर्भाधान संस्कारों से संबन्धित रूढ़ियों और प्रचलनों के अतिरिक्त हमारे समाज में अन्य संस्कारों के साथ भी अनेक प्रचलन पाये जाते हैं। परन्तु इन प्रचलनों में कोई विशेष नवीनता नहीं होती, आम तौर से सभी प्रचलन गर्भाधान और विवाह संबन्धी प्रचलनों के ही सदृश होते हैं। मृतक संस्कार से संबन्धित प्रचलन अवश्य ही भिन्न प्रकार के होते हैं।

हमारे समाज के अन्य संस्कारों में मुंडन है—जिसे बाल या जड़ूला उतराना कहते हैं। मुंडन संस्कार के साथ-साथ हमारे समाज में कुछ रूढ़ियाँ पाई जाती हैं जिनके अनुसार कोई २ अपने बालकों को किसी इष्ट देव स्थान, तीर्थस्थान अथवा किसी सम्बन्धी के यहाँ ले जाते हैं और वहीं बालक का मुंडन अथवा 'चूड़ाकरण' संस्कार संपन्न होता है। इस रूढ़िको "जड़ूले की जात" भी कहा जाता है। वास्तव में यह रूढ़ि कुल-रीति की ही श्रेणी का विषय है।

कर्ण छेदन अथवा कर्ण वेध संस्कार को मारवाड़ी समाज में 'पिरोजन' भी कहा जाता है। कहीं-कहीं इस संस्कार के साथ भी कुल-रीति से सम्वन्धित कई प्रकार के प्रचलनों का काम पूरा किया जाता है।

यज्ञोपवीत या जनेऊ का संस्कार आजकल वैश्यवर्ग में विवाह के ही अवसर पर अत्यन्त सूक्ष्म रीतिसे संपन्न कर दिया जाता है। तो भी यह संस्कार हिंदू संस्कृतिका सब से महान् संस्कार है जिसके आधार पर ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य वर्गों को 'द्विज' माना जाता है तथा उन्हें वेद पढ़ने और यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त है। इस संस्कार की महत्ता का कुछ परिचय वेदमूर्ति पं० मोतीलालजी शास्त्री के निम्न लेख से जातीय वन्धुओं को मिल जायगा।

यज्ञोपवीत का मौलिक रहस्य

"ज्ञात्वा कर्म्माणि कुर्वीत नाज्ञात्वा कर्म आचरेत्।
अज्ञानेन प्रवृत्तस्य स्खलनं स्यात् पदे पदे॥"

भारत वसुन्धरा के वक्षस्थल पर निवास करने वाली तत्तज्जातियों का यह सामान्य दृष्टिकोण बन गया है कि राजपूताने को अलंकृत करने वाली मारवाड़ी जाति में सिवाय अर्थ संचय के अन्य किसी साहित्यिक क्षेत्र में अपना कोई विशेष अधिकार रखने की न तो योग्यता ही है, एवं न इसके लिये वह कोई प्रयास ही करती है। उक्त दोनों हेतुवादों में से दूसरे हेतुको हेतु मानते हुए भी प्रथम हेतुको हम हेत्वाभास कहे बिना नहीं रह सकते। प्रसन्नता की बात है कि धीरे-धीरे साहित्य क्षेत्र के सम्बन्ध में होने वाली अपनी भूलों को समझते हुए क्रमशः इस क्षेत्र में भी वे आशातीत सफलता प्राप्त कर रहे हैं। इस सफलता के सम्बन्ध में अपनी

प्राच्यसंस्कृति का सदा से ही समादर करने वाली इस मारवाड़ी जाति का ध्यान इस ओर हम विशेष रूप से आकर्षित करना चाहते हैं कि कहीं पश्चिमी शिक्षा के प्रवाह में पड़कर हम भी इतर साहित्य-सेवियों की भाँति अपनी मौलिक संस्कृति का तिरस्कार न कर बैठें। हमें अपनापन सुरक्षित रखते हुए ही आगे बढ़ना है। अपने रुढ़िवादों का संशोधन करते हुए मूल को सुरक्षित रखना है, **"भूल देखना भूल नहीं है परन्तु भूल देखने में भूल न हो"**—उस सिद्धान्त को लक्ष्य में रखते हुए ही हमें अपने समाज का सुधार करना है। **"यान्यस्माकं सुचरितानि तानित्वयोपास्यानि नो इतराणि"**—इस वेद वाक्य को अपना उपास्य बनाना है।

प्रत्येक राष्ट्र का जीवन किसी मौलिक सिद्धान्त की नीति पर अवलम्बित है। मौलिक सिद्धान्त जब तक सुरक्षित रहता है, तभी तक वह राष्ट्र-स्वरूप में प्रतिष्ठित रहता है। सभ्यता, संस्कृति, आचार, व्यवहार ही राष्ट्र के प्राण हैं। किसी भी राष्ट्र के विनाश के लिये उसकी मूल संस्कृति का विनाश पर्याप्त है। यह एक कटु सत्य है कि कुछ एक घातक रुढ़िवादों के संशोधन के नाम पर आवेश में आकर, पश्चिमी देशों के संसर्ग में पड़कर हम कभी-कभी अपनी मूल संस्कृति पर भी कुठाराघात कर बैठते हैं। उदाहरण के लिये शिखा-सूत्र को ही लीजिये। शिखा-सूत्र हमारी संस्कृति के मुख्य परिचायक हैं। अपने दैनिक कर्मों में ९५ प्रतिशत निरर्थक कर्म करते हुये भी हम किस मुख से शिक्षा-सूत्र की व्यर्थता का उद्घोष करने लगते हैं, यह हमारी समझ में नहीं आता। अस्तु, परिलेख में हमे संक्षेप से शिखा-सूत्र के सम्बन्ध में ही कुछ निवेदन करना है।

"जिन प्राकृतिक तत्वों का आज पश्चिमी विद्वान अन्वेषण कर रहे हैं, जिन अन्वेषणों से पूर्वीय विद्वान आश्चर्य-चकित बन रहे हैं, वे सब प्राकृतिक तत्व आपके मौलिक साहित्य (वेद) में सहस्र शताब्दियों पहले ही उस **छन्दो भाषा** नाम की **आदि भाषा** में संकेत विधया निर्दिष्ट हो चुके हैं"—इन पंक्तियों पर श्रद्धा-विश्वास करने के लिये हमारे समाज को, किंवा राष्ट्र को विलुप्तप्राय वैदिक साहित्य की ही शरण में जाना पड़ेगा। महाभारत काल के पीछे से ही दुर्दैव वश हमारा राष्ट्र क्रमशः वैदिक साहित्य से विमुख होता जा रहा है। एक बार तो इस साहित्य के

लिये ऐसा विषम समय उपस्थित हुआ कि कौत्स जैसे महा विद्वान ने "अनर्थका हि मन्त्राः" (वेद मन्त्रों का कोई अर्थ नहीं होता) यह कहने का साहस कर डाला था। यद्यपि यह ठीक है कि यास्काचार्य ने वेद मंत्रों को सार्थक बतलाते हुए कौत्स की भूल सुधारने की चेष्टा की है, परन्तु वैदिक साहित्य में जो विज्ञान राशि छिपी हुई है, उसे प्रकट करने में स्वयं यास्क भी सर्वात्मना समर्थ नहीं हो सके हैं। उदाहरण के लिये वैदिक देवता वाद को ही लीजिये। वेद में आये हुये अग्नि-वायु-इन्द्र-वरुण-पर्जन्य आदि देवताओं का स्वरूप वतलाते हुये यास्क हमें घबड़ाते हुये प्रतीत हो रहे हैं। कभी वे कहते हैं,—देवता शरीर धारी हैं, कभी कहते हैं, देवताओं के शरीर नहीं होता, कभी "अपि वा उभयविधाःस्युः" (अथवा देवता दोनों ही तरह के होते हैं) इस प्रकार के उभय पक्ष को सामने रखकर देवता स्वरूप से अपना पीछा छुड़ाने की चेष्टा करते दिखलाई दे रहे है। वेदार्थ के सम्बन्ध में सायण महीधर की भी विशेष ख्याति है, परन्तु जब हम ब्राह्मण ग्रन्थोक्त निदान-निर्व-चन-आख्यान-गाथा-कुम्व्या आदि के आधार पर वेदार्थ को वैज्ञानिक मीमांसा करने लगते हैं, उस समय हमें यह मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होती कि सायण-महीधर ने यज्ञ कर्म से सम्बन्ध रखने वाले कर्म काण्ड प्रधान अर्थ को प्रगट कर जहाँ कर्मठों का उपकार किया है, वहाँ विज्ञान सम्बन्ध में या तो उन्होंने अर्थ का अनर्थ किया है, अथवा वैज्ञानिक तत्व प्रतिपादक उन प्रकरणों के सम्बन्ध में "शेषं स्पष्टम्" इस नीति का अवलम्बन किया है।

आगे बढ़िये। वर्तमान समय में भारत-वसुन्धरा के कोमल वक्षस्थल को अपने कर्कश पदाघातों से पीड़ा पहुँचानेवाले विद्वानों की कमी नहीं है। संख्यातीत धर्माचार्य, सन्त, महन्त, मठाधीश, महामहोपाध्याय, महामहोपदेशक, सनातनधर्म शब्द से त्रैलोक्य को कम्पित कर रहे हैं। यह सब कुछ होने पर भी तर्क एवं विज्ञान पूर्ण पाश्चात्य आक्रमण का सामना करने में असमर्थ उक्त धर्मरक्षक, अंशात्मना भी धर्म-रक्षा में सफल नहीं हो रहे हैं। कारण वेदाध्ययनका अभाव! वैज्ञानिक अर्थोंका तिरोभाव !! शुष्क पाण्डित्यका निरर्थक गर्व !!! 'स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्या वेदं न विजानाति योऽर्थम्'। केवल वेदमन्त्र कण्ठ करनेवाला

अर्थज्ञान शून्य वह व्यक्ति (खरवत्) भारवाही मात्र है। इस वेदोक्तिको सार्थक करनेवाले, विंद्वान क्या कभी धर्म का मौलिक रहस्य बतला सकते हैं ? **धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः**—मनु के इस आदेश के अनुसार वेदविज्ञान ही हमारी धर्म जिज्ञासा को पूर्ण कर सकता है। न केवल धर्म जिज्ञासा ही, अपितु धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की सिद्धि एक मात्र वेद विज्ञान पर ही अवलम्बित है। राजनीति-विशारद राष्ट्र परतन्त्रता का कुछ भी कारण बतलाते रहें, हमारी दृष्टि में तो इसका मूल कारण वेदिक विज्ञान का अभाव ही है। ऐसी दशा में राष्ट्रोन्नति प्रवर्तक उन आदरणीय नेताओं से हम निवेदन करेंगे कि **"देश का मौलिक साहित्य ही राष्ट्र का प्राण है, राष्ट्र निर्माण, किंवा राष्ट्र की स्वतन्त्रता उस राष्ट्र के मौलिक साहित्य की स्वतन्त्रता पर ही निर्भर है"**, इस सर्व सम्मत सिद्धान्त को लक्ष्य में रखते हुये राष्ट्र के अभ्युत्थान के लिये वे जहां और और कार्यों को आवश्यक समझते हैं वहां उक्त वैदिक साहित्य की रक्षा के प्रश्न को भी कम महत्व का न समझें। विशेषतः अपने वन्धु उन सम्भ्रान्त मारवाड़ी महानुभावों की सेवा में भी हम यह निवेदन किये बिना नहीं रह सकते कि जहां धर्मशाला, वापी, कूप, तड़ाग,ब्राह्मण-भोजन, मंदिर-निर्माण आदि के लिये वे सदा मुक्तहस्त रहते हैं, वहां अमेरिका, इङ्गलैंड आदि के उन धन कुबेरों के दान के आदर्श को सामने रखते हुए जो साहित्य-प्रचार के लिये अरबों रुपयों का दान करने में अपना गौरव समझते हुये राष्ट्र कल्याण के सूत्रधार बन रहे हैं, अपने इस मूर्छित वैज्ञानिक साहित्य वृक्ष को दान धारा से पुष्पित एवं पल्लवित करते हुये भविष्य में सम्पन्न होनेवाले राष्ट्र के लिये एक अमूल्य निधि संचित करें।

सर्वथा अप्रस्तुत होने पर भी वैदिक साहित्य की हीन दशा के कारण क्षुब्ध बने हुए हम अपने स्वाभाविक उद्गारों का संवरण न कर सके। अब मूल विषय की ओर नीरक्षीर विवेकी पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जाता है। सूत्र शब्द से प्रकृत में **'यज्ञोपवीत'** ही अभिप्रेत है। यज्ञ का उपवीत ही यज्ञोपवीत है। यज्ञोपवीत हमारा ध्यान **आध्यात्मिकयज्ञ, आधिदैविकयज्ञ, आधिभौतिकयज्ञ** इन तीन संस्थाओं की ओर आकर्षित करता है। फलतः यज्ञोपवीत के मौलिक स्वरूप

के परिचय से पहले यज्ञ शब्द का अर्थ जानना आवश्यक हो जाता है। दो वस्तुओं का परस्पर संबन्ध दो तरह से होता है। साधारण संबन्ध **'योग'** नाम से, और अन्तर्याम सम्बन्ध 'याग' नाम से प्रसिद्ध है। शरीर के साथ वस्त्रों का जो सम्बन्ध है, उसे हम योग सम्बन्ध कहेंगे, एवं शरीराग्नि के साथ भुक्त अन्न का जो सम्बन्ध है, उसे 'याग सम्बन्ध' कहेंगे। दो विजातीय वस्तुओं का रासायनिक संयोग ही याग सम्बन्ध है। इस रासायनिक सम्बन्ध में पूर्व के दोनों सम्बन्धियों के पूर्व रूप का उपमर्द है, अपूर्व स्वरूप का उदय है। उदाहरणार्थ बारूद को लीजिये। सोरा और कोयला दोनों का रासायनिक सम्बन्ध ही बारूद रूप अपूर्व भाव के उदय का कारण बना है। यही याग सम्बन्ध ही 'यज्ञ' कहलाता है। सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ यज्ञ से ही उत्पन्न हुआ है, यज्ञ पर ही प्रतिष्ठित है, अन्त में यज्ञ में ही उन पदार्थों का विलियन है। यज्ञ विद्या हमारी विज्ञान विद्या (Chemistry) है, जिन मौलिक तत्वों के समन्वय से यज्ञ का स्वरूप निष्पन्न होता है, वही मौलिक तत्व **'ब्रह्म'** (Physics) नाम से प्रसिद्ध है। ब्रह्म ही यज्ञ की प्रतिष्ठा है। Physics ही Chemistry की आधार भूमि है। यज्ञ सम्बन्ध के स्वरूप समर्पक तत्व, चाहे किसी जाति के हों, उन सबका ऋषियों ने **अग्नि-सोम** इन दो तत्वो में अन्तर्भाव माना है। अग्नि दाहक तत्व है सोम दाह्य तत्व है। अग्नि-सोम का समन्वय ही यज्ञ है। सौर जगत, आधिदैविक जगत है। इसकी प्रितष्ठा सौर अग्निचान्द्रसोम है। दाम्पत्य भाव आध्यात्मिक जगत है, इसकी प्रतिष्ठा स्त्री के गर्भाशय में प्रतिष्ठित अग्नि मूर्ति शोणित, (रुधिर) एवं पुरुष में प्रतिष्ठित सोम मूर्ति शुक्र है। पार्थिव जगत आदि भौतिक जगत है। इसकी प्रतिष्ठा पार्थिव भूताग्नि, एवं औषधि रूप सोम है। इस प्रकार तीनों में अग्नि सोमात्मक यज्ञ का ही साम्राज्य है। प्रजोत्पादक एवं विश्व स्वरूप संपादक इसी अग्नि सोमात्मक यज्ञ की व्यापकता बतलाते हुये भगवान ने कहा है—

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेषवोऽस्त्विष्टकामधुक्॥

(गीता)

इस नित्य सिद्ध त्रिधा-विभक्त प्राकृतिक-यज्ञ के आधार पर ही उन वैज्ञानिकों (ऋषियों) ने वैध यज्ञ का आविष्कार किया है। जो यज्ञ पद्धति विज्ञान (मौलिक उपपत्ति) पुरःसर वेद के कर्मकाण्ड प्रधान ब्राह्मण ग्रन्थों में निरूपित हुई है, जो यज्ञ विद्या प्राकृतिक तत्तयज्ञों के अनुसार **अग्निहोत्र—दर्शपूर्णमास —चातुर्मास्य—अयन—संवत्सर—राजसूय—अश्वमेध—सौत्रामणि—धर्म-चयन** इत्यादि रूप से हमारे सामने उपस्थित हुई है, वही यज्ञविद्या भारतवर्ष का मूल प्राण है। पदार्थ विद्या को न जानने के कारण यह अपूर्व फलप्रदात्री, दूसरे शब्दों में सर्व फल प्रदात्री यज्ञविद्या आज वालक्रीड़ा बन रही है, यह जानकर एवं देखकर किस आर्य-पुरुष के हृदय में अन्तर्वेदना का उदय न होगा। अस्तु···

पहले सौर यज्ञ को ही लीजिये। सौर परिवार से सम्बन्ध रखनेवाले अग्नि सोम दोनों ही **सत्य-ऋृत** भेद से दो भागों में विभक्त हैं। केन्द्र (Centre) एवं शरीरयुक्त पदार्थ सत्य है, अकेन्द्र—अशरीरी (अनियत शरीरी) पदार्थ ऋृत है। इन लक्षणों के अनुसार सूर्य्य सत्याग्नि पिण्ड है, चन्द्रमा सत्य सोम पिण्ड है। "सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्"—इस वैदिक सिद्धान्त के अनुसार सूर्य्य-चन्द्रमा ही विश्व के माता पिता हैं। सत्य सूर्य्य एवं सत्य सोम में से निरन्तर अग्नि एवं सोम प्रवर्ग्य रूप से पृथक होते रहते हैं। जो सौर अग्नि सूर्य्य पिण्ड से पृथक होकर वायु में पृथक हो जाता है, जिसके सम्बन्ध से ग्रीष्म ऋतु में रात्रि में भी वायु गरम बन जाता है, वह विखरा हुआ वायु शरीरीकेन्द्रशून्य अग्नि ही "ऋताग्नि" है। ऋतवायव्याग्नि दक्षिण दिशा में प्रतिष्ठित होकर निरन्तर उत्तर दिशा की ओर, एवं ऋत वायव्य सौम उत्तर दिशा में प्रतिष्ठित होकर निरन्तर दक्षिण दिशा की ओर जाया करता है। इन ऋताग्नि सोमों के समन्वय से अग्नीसोमात्मक ऋत प्रधान जो अपूर्व भाव उत्पन्न होता है, वही विज्ञान भाषा में "ऋृत" नामसे प्रसिद्ध है। ऋतुके अर्द्धपर्व में अग्निका विकास है तथा अर्द्ध पर्वमें सोम का साम्राज्य है। अब क्रमशः प्रकृतिमें अग्निकण प्रवेश करने लगते हैं। प्रवृद्धशीत (सोम)में अग्नि सुहावना लगता है। यही अग्निका माधुर्य है, यही **"यस्मिन् कालेऽग्निकणाः पदार्थेषु बसन्तो भवन्ति स कालो वसन्तः"**—इस निर्वचन के अनुसार अग्नि का यह जन्मकाल 'वसन्त' कह-

लाता है। आगे जाकर अग्नि विशेष रूप से पदार्थों को ग्रहण करता है, अतएव यह अग्नि की युवावस्था—"**अतिशयेनाग्निः पदार्थान् गृह्णाति, तदुपलक्षितः कालो ग्रीष्मः**" के अनुसार '**ग्रीष्म**' नाम से प्रसिद्ध है। जब अग्नि विकास की चरम सीमा पर पहुंच जाता है तो पानी का रूप धारण कर लेता है। प्रवृद्ध शोकाग्नि अश्रु का कारण है, प्रवृद्धपरिश्रमाग्नि पसीने का कारण है, '**अग्नेरापः**' यह सर्वमान्य सिद्धान्त है। अग्नि की यह चरमावस्था ही पानी है। अतएव "**यस्मिन् काले अग्निर्वर्षीयान् भवति स कालो वर्षा**" के अनुसार यह अवस्था वर्षा नाम से व्यवहृत होती है। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा तीनों ऋताग्नि प्रधान हैं। अग्नि ही देवता है। अतएव इन तीनों ऋतुओं को हम देवता कह सकते हैं। (देखिये शत० ब्रा० २।१।३।१)। अब क्रमशः अग्नि क्षीण होने लगता है। यही प्रारम्भिक अवस्था "**यष्मिन्कालेग्निकणाः शीर्णा भवन्ति स कालो शरत्**" के अनुसार '**शरत्**' नाम से प्रसिद्ध है। आगे जाकर अग्नि और भी हीन दशा को प्राप्त होती है। अतएव "**यस्मिन् कालेऽग्निकणा हीनतां प्राप्ता भवन्ति स कालो हेमन्तः**" के अनुसार यह काल '**हेमन्त**' नाम से प्रसिद्ध है। अन्ततः अग्नि सर्वथा शीर्ण हो जाता है, अतः "**पुनः पुनरतिशयेन यस्मिन् काले अग्निकणाः शीर्णा भवन्ति स कालो शिशिरः**" के अनुसार यह **कालावयव** '**शिशिर**' नाम से प्रसिद्ध है। शरत्, हेमन्त, शिशिर तीनों सोम प्रधान हैं। सोम ही पितर है, अतएव इन तीनों सौम्य ऋतुओं को पितर कहा जाता है। अग्नि सोममय ६ ऋतुओं का समन्वित रूप ही संवत्सर यज्ञ है। यही विश्व का उपादानभूत यज्ञपुरुष है।

उक्त लक्षण संवत्सरात्मक यज्ञ पुरुष के **उत्तरायण---दक्षिणायन-विषुवद्---वृत्त** भेद से तीन प्रधान पर्व हैं। उत्तरायण काल देवाग्नि प्रधान है, अतएव षाण्मासिक उत्तरायण काल को देवताओं का **दिन** माना जाता है। दक्षिणायनकाल पितृ सोम प्रधान है, अतएव षाण्मासिक इस दक्षिणायनकाल को देवताओं को **रात्रि** माना जाता है। संवत्सर के यही तीनों पर्व क्रमशः **देव-पितर-मनुष्य** इन तीन प्रजासृष्टियों के प्रवर्तक हैं। तीनों प्रजाओं का संचालन करनेवाले भगवान् सूर्य विषुवद्वृत्त के केन्द्र में प्रतिष्ठित हैं। इनके

साथ पूर्व कथनानुसार चन्द्रमा नित्य संवद्ध है। सूर्य को केन्द्र में रखता हुआ भूपिण्ड सूर्य के चारों ओर जिस नियत मार्ग से परिक्रमा लगाता है, वही भू परिभ्रमण मार्ग "**क्रान्तिवृत्त**" नाम से प्रसिद्ध है। यही क्रान्तिवृत्त और सौर संवत्सर यज्ञ को सीमित करनेवाला एक छन्दोमय सूत्र है। इस सूत्र से संवत्सर यज्ञपुरुष सीमित रहता है अतएव क्रान्तिवृत्त रूप इस सूत्र को '**यज्ञसूत्र**' नाम से व्यवहृत किया जा सकता है। इस क्रान्तिवृतात्मक यज्ञ सूत्र के भीतर उत्तरायण-दक्षिणायन विषुवद् भेद से अवान्तर तीन पर्व बतलाये गये हैं। यही तीनों पर्व क्रमशः यज्ञ सूत्र के तीन अवान्तर सूत्र हैं। तीन सूत्रों से महायज्ञ सूत्र का स्वरूप निष्पन्न होता है।

सौर संवत्सर यज्ञ के साथ चन्द्रमा का सम्बन्ध बतलाया गया है। जिस प्रकार भूपरिभ्रमण वृत्त क्रान्तिवृत्त नाम से प्रसिद्ध है, एवमेव चन्द्रपरिभ्रमण वृत्त "**दक्ष-वृत्त**" नाम से प्रसिद्ध है। इस चान्द्ररथ के तीन पहिये माने जाते हैं। नक्षत्र भोक्ता, अतएव '**उडुपति**' नाम से प्रसिद्ध चन्द्रमा जिस नक्षत्र ग्रह संस्था में परिभ्रमण करता है, दूसरे शब्दों में जिस यज्ञसूत्रात्मक नक्षत्र ग्रहावच्छिन्न संवत्सरमण्डल में परिभ्रमण करता है, यज्ञात्मक उस संवत्सर यज्ञ में प्रतिष्ठित नक्षत्रमार्गों के अवान्तर तीन मार्गों की कल्पना की जाती है। उत्तराकाशस्थ नक्षत्र (दृश्यमण्डल के अनु-सार) सर्वोच्च हैं, अतएव इस नाक्षत्रिक मार्ग को '**ऐरावतमार्ग**' कहा जाता है। ऐरावत (हाथी) पशुओं में उच्चकाय है। इससे छोटा बैल है, अतएव मध्याका-शस्थ नाक्षत्रिक मार्ग को '**जरद्गवमार्ग**' (बुड्ढे बैल का मार्ग) कहा जाता है। दक्षिणाकाशरूप सबसे छोटे नाक्षत्रिक मार्ग को '**वैश्वानरमार्ग**' (बकरे का मार्ग) कहा जाता है। जहां पूर्व प्रदर्शित उत्तर-दक्षिणविषुवद् के क्रम के अनुसार यज्ञसूत्र त्रिपर्वा है, वहां उक्त नाक्षत्रिक मार्गत्रयी के अनुसार भी यज्ञसूत्र को त्रिपर्वा माना जा सकता है। आकाशात्मक संवत्सरयज्ञ प्रजापति के इन्हीं तीनों नाक्षत्रिक मार्गों का दिग्दर्शन कराते हुये महामुनि व्यास कहते हैं :—

"सर्वग्रहाणां त्रीण्येव स्थानानि द्विजसत्तम् ।
स्थानं जरद्गवं मध्ये, तथैरावतमुत्तरम् ॥
वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्वतः ॥" (वायुपुराण)

इन तीन प्रधान नाक्षत्रिक मार्गों में प्रत्येक में आगे जाकर तीन-तीन वीथियां (क्षुद्र मार्ग-गलियां) हो जाती हैं। उत्तराकाशस्थ ऐरावत मार्ग (राजमार्ग-सड़क) में **नागवीथी, गजवीथी, ऐरावतीवीथी** यह तीन अवान्तर वीथियां हैं। मध्याकाशस्थ जरद्गव मार्ग में **आर्षभीवीथी, गोवीथी, जारद्गवीवीथी** यह तीन अवान्तर वीथियां हैं, एवं दक्षिणाकाशस्थ वैश्वानरमार्ग में **अजवीथी, मार्गीवीथी, वैश्वानरीवीथी** यह तीन वीथियां मानी गई हैं। इस प्रकार संभूय तीन मार्गों में ९ वीथियां हो जाती हैं। त्रिमार्गरूप त्रिसूत्र के प्रत्येक सूत्र में त्रिवीथि रूप अवान्तर तीन-तीन सूत्र और प्रतिष्ठित हैं। सौरहिरण्मयरथ क्रान्तिवृत्त के सम्बन्ध से जहां एक चक्र कहलाता है, वहाँ चान्द्ररथ उक्त मार्गों के सम्बन्ध से त्रिचक्र कहलाता है, जैसा कि आप्त पुरुष कहते हैं :—

वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि निशाकरः।
त्रिचक्रोभयतोऽश्वश्च विज्ञेयस्तस्य वैरथः॥

(लिङ्ग पु० ६५ अ०)

आगे जाकर नक्षत्रों के अवान्तर भेद से प्रत्येक वीथिसूत्र में तीन-तीन नाक्षत्रिक सूत्र और हो जाते हैं। संभूय ९ वीथियों के ३-३ क्रम से २७ अवान्तर नाक्षत्रिक सूत्र सिद्ध हो जाते हैं।

निम्न चक्र से नाक्षत्रिक सूत्र स्पष्ट होता है :—
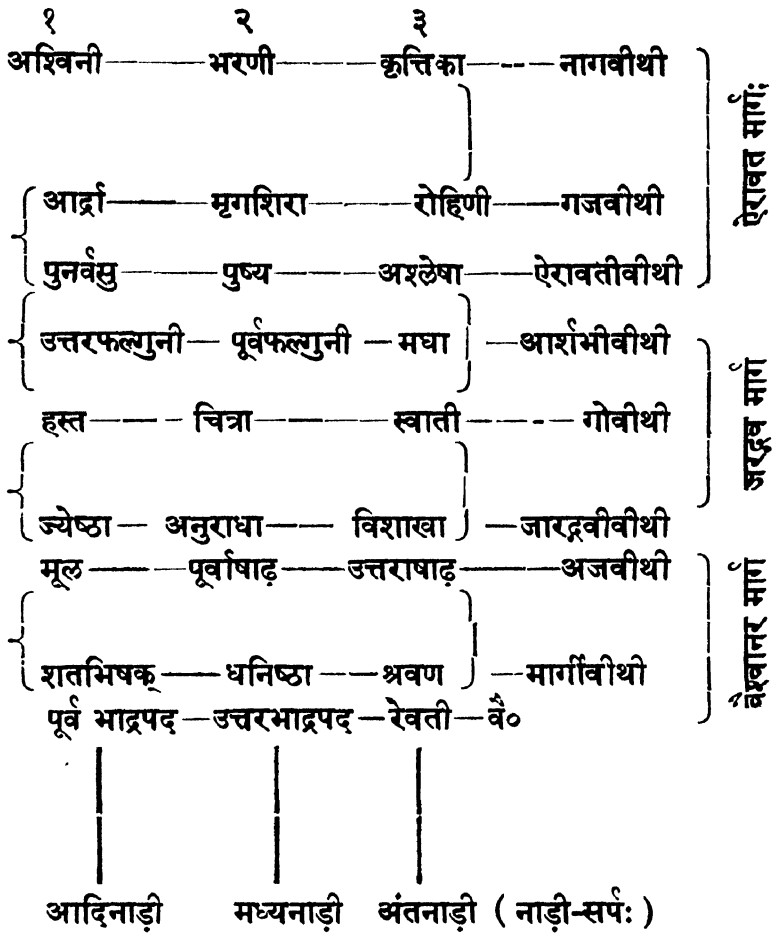
२७ अवान्तरतम सूत्रात्मक, ९ अवान्तरतर सूत्रात्मक, ३ अवान्तर सूत्रात्मक, संवत्सरमण्डलात्मक यज्ञ सूत्र ही अपने **प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन, सायंसवन** रूप तीनों सवनों से क्रमशः ब्राह्मण-क्षत्रिय–वैश्य इन तीनों वर्णों का उपादान बनता है। प्रातः सवन अष्टाक्षर **गायत्रीछन्द्** से, माध्य० एकादशाक्षर **त्रिष्टुपछन्द्** से, एवं सायंसवन द्वादशाक्षर **जगतीछन्द्** से छन्दित (सीमित-परिच्छिन्न) रहता है। ऐसी दशा में निष्कर्ष यह निकलता है कि ब्राह्मण योनिमें उत्पन्न होनेवाले व्यक्तिमें गायत्रछन्दोयुक्त प्रातःसवन का (गायत्री के आठ अक्षरों के सम्बन्ध से) आठवें वर्ष में विकास होता है, अतएव

ब्राह्मण का यज्ञोपवीत संस्कार आठवें वर्ष में विहित माना गया है। क्षत्रिय योनि में उत्पन्न होने वाले व्यक्ति में त्रैष्टुभछन्दोयुक्त माध्यन्दिन सवन का (त्रिष्टुप्के ११ अक्षरों के संबन्ध से) ११ वें वर्ष में विकास होता है; अतएव क्षत्रिय का यज्ञोपवीत संस्कार ११ वें वर्ष में विहित है। वैश्य योनि में उत्पन्न होने वाले व्यक्ति में जागतछन्दोयुक्त सायंसवन का (जगती के १२ अक्षरों के सम्बन्ध से) १२ वें वर्ष में विकास होता है, अतएव वैश्य का यज्ञोपवीत संस्कार १२ वें वर्ष में विहित है।

प्रत्येक द्विजाति (ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य) मौलिक यज्ञपर्वों के अनुसार क्रमशः गायत्री, त्रिष्टुपजगती छन्द से युक्त होकर ही धरातल पर अवतीर्ण होता है। गुण-कर्म से जाति का परिवर्तन नहीं होता, अपितु तत्तच्छास्त्र तत्तद्वर्णानुकूल विहित कर्मों से जाति का विकास होता है, एवं वर्ण विरुद्ध कर्म जाति के आवरक हैं। प्रकृति (जाति) और संस्कार दोनों के समन्वय से वर्ण का स्वरूप सुरक्षित रहता है। इसी आधार पर वशिष्ठ ने "प्रकृति विशिष्टं चातुर्वर्ण्यं संस्कार विशेषाच्च" यह कहा है। इसी नित्य सिद्ध वर्ण व्यवस्था को लक्ष्य में रखकर श्रुति कहती है—

"गायत्र्या ब्राह्मणं निरवर्त्तयत, त्रिष्टुभा राजन्यं,
जगत्या, वैश्यं, न केन चिच्छन्दसा शूद्रं निरवर्त्तयत्"।

अपने गायत्र—त्रैष्टुभ—जागत स्वरूपके विकास के लिये १६ स्मार्त संस्कार एवं ३२ श्रौत संस्कार संभूय ४८ संस्कार अपेक्षित हैं। संस्कारों से संस्कृत द्विजाति साक्षात आधिदैविक संवत्सर यज्ञ प्रजापति की प्रतिमा है। ऐसा संस्कृत पुरुष आधि-दैविक जगत (प्रकृति) पर अपना पूर्ण अधिकार रखने में समर्थ होता है। संस्कार संस्कृत द्विजाति यज्ञ प्रजापति की जीवित प्रतिमा बनाता हुआ विज्ञान द्वारा सब कुछ करने में समर्थ है, इसी आधार पर भगवान याज्ञवल्क्यने **"ब्रह्मविद्यया ह वै सर्वं भविष्यन्तो मन्यन्ते मनुष्याः"** यह कहा है। इसी सर्व विद्याभाव को सूचना के लिये तत्तच्छन्द विकास काल में द्विजाति का यज्ञोपवीत संस्कार किया जाता है। यज्ञोपवीत इस बात का सूचक है कि अमुक वर्ण अमुक छन्द से युक्त है, एवं भविष्य में यह अपने आत्म देवताके बल पर प्राकृतिक विज्ञान पर वह अपना अधिकार करता हुआ अपने समाज, राष्ट्र, अन्तोतोगत्वा विश्वके कल्याणका कारण बनेगा। जिस प्रकार

यज्ञोपवीती प्रजापति यज्ञ सूत्र रूप छन्दोबलके आधार पर कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा कर्त्तुं समर्थ है, एवमेव सूत्रधारी भारतवर्ष का द्विजाति समस्त मानव-समाज का पथ-प्रदर्शक है। ब्राह्मण के इसी सार्वभौम ज्ञान का दिग्दर्शन कराते हुए राजर्षि मनु कहते हैं :—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवः ॥ (मनु०)

प्राकृतिक यज्ञ पुरुषमें उत्तरायणका सम्बन्ध देवताओंके साथ, दक्षिणायनका सम्बन्ध पितरों के साथ एवं विषुवत का सम्बन्ध मनुष्यों के साथ बतलाया है। विषुवत वृत्त ही हमारे शरीर में मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) बनता है। इससे दक्षिण का भाग दक्षिणगोल है, उत्तरका भाग उत्तरगोल है, स्वयं मेरुदण्ड विषुवत है। सूर्यकी व्याप्ति २४ अंश तक है। २४ अंश दक्षिण परमक्रान्ति है, २४ अंश उत्तर परमक्रान्ति है। यही क्रान्ति भाव पर्शु (पंसलियों) का उपादान है, क्रांतिका परम भाव २४ पर समाप्त है, अतएव पंसलियाँ भी २४ ही होती हैं। परमक्रान्ति पर पहुँच कर पृथ्वी की गति अर्वाचीन हो जाती है, अतएव तद्गति-सम पर्शु सीधे न जाकर मुड़ जाते हैं। उत्तर गोल में सूर्य्य का दक्षिणायन है, दक्षिण गोल में सूर्य्य का उत्तरायण है। वामस्कन्ध उत्तरगोल है, यही दक्षिणायन काल है दक्षिणस्कन्ध दक्षिण गोल है, यही उत्तरायण काल है। जैसी स्थिति में यज्ञ सूत्र हमारे शरीर पर प्रतिष्ठित रहता है, इस स्थिति का उत्तरायण स्थिति से सम्बन्ध है, यह देव भाव है। पितृ कर्म में दक्षिण कन्धे पर यज्ञ सूत्र डाल दिया जाता है, यह दक्षिणायन काल का द्योतक है, यही पितृभाव है। एवं माला-वत् यज्ञ सूत्र को गले में डाले रखना मनुष्यभाव है। इन्हीं तीनों प्राकृतिक भावों का दिग्दर्शन कराती हुई वाजि श्रुति कहती है :—

"प्रजापतिर्वै भूतान्युपासीदन् ।........ततोदेवायज्ञोपवीतिनोभूत्वा दक्षिणं जान्वाच्योपासीदन्। अथैनं पितरःप्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वाच्योपासीदन्। अथैनं मनुष्याः प्रावृता उपस्थं कृत्वोपासीदन्"

—(शत० २।४।२।१-२-३-)।

हमारा यज्ञ सूत्र (जनेऊ) क्रान्तिवृत्त है, यज्ञ सूत्रके अवान्तर तीन सूत्र उत्तरायण, दक्षिणायण विषुव, किम्वा देव-पितृ-मनुष्य भाव, किम्वा, ऐरावतमार्ग-जरद्गवमार्ग-वैश्वानरमार्ग—इन पर्वों के सूचक हैं। प्रत्येक सूत्र में रहने वाले तीन-तीन सूत्र उक्त चान्द्र ९ वीथियों के सूचक हैं। पुनः प्रत्येक सूत्र में रहने वाले ३-३ तन्तु अश्विन्यादि नक्षत्रों के द्योतक हैं। इस प्रकार हमारा यज्ञ सूत्र आधिदैविक जगत् की वास्तव में प्रतिमा बन जाता है। यह है यज्ञोपवीत की एक उपपत्ति। इसके अतिरिक्त लगभग १०-१२ मौलिक कारण और हैं, जिनका दिग्दर्शन इस लघुकाय परिलेख में नहीं किया जा सकता। इस विषय की विशेष जिज्ञासा रखने वालों को **"यज्ञवर्तक ऋषि एवं उनका यज्ञोपवीत"** नामक ग्रन्थ देखना चाहिये। उक्त निवेदन से हम अपने प्रेमी वन्धुओं की सेवा में यही भाव प्रकट करते हैं कि वे धार्मिक आज्ञाओं की जब तक किसी योग्य विद्वान से मौलिक उपपत्ति न जान लें, तब तक उनकी अवहेलना न करें। उनका, उनके समाज का, उनके राष्ट्र का, सम्पूर्ण विश्व का इसी में कल्याण है। प्रत्येक आर्य्य संस्कृति के प्रेमी को निम्न-लिखित भगवान रामचन्द्र के आदेश को उपास्य बनाते हुए ही सतत जीवन-यात्रा का निर्वाह करना चाहिये।

नाकारणं हि शास्त्रेषु धर्मः सूक्ष्मोऽपि जाजले।
कारणाद्धर्म्ममन्विच्छन् स लोकानाप्नुते शुभान्॥

"सर्वे सन्तु निरामयाः मा च याचिष्म कंचन"

संस्कारों और उनसे संबंधित रूढ़ियों और प्रचलनों पर इस स्थल तक विचार करने के उपरांत हम अपने समाज की उस रूढ़ि की ओर पाठकों का कुछ थोड़ा सा ध्यान आकृष्ट करते हैं, जिसके कारण समाज के बहुसंख्यक वर्ग को बहुत बड़े कष्ट का सामना करना पड़ता है। यह रूढ़ि और प्रथा समाज के सांस्कृतिक उत्सवों और पर्वों पर आयोजित होने वाली भोजन व्यवस्था है।

जीमनवार (भोजन)

हिन्दू समाज के प्रचलनों में किसी अवसर विशेष पर बंधु-वान्धवों का एकत्र बैठकर भोजन करना भी एक प्रचलन है जिसे कहीं कहीं जेवनार भी कहते हैं। हमारे

समाज में इस रूढ़िको जीमनवार कहते हैं। प्रीति-भोज, उद्यान भोज, आमलवृक्ष छाया भोज आदि हिंदू समाज के जीमनवार के ऐसे अवसर हैं जिनका विशेष अवस्थाओंपर महत्व और माहात्म्य माना जाता है। अङ्गरेज़ी सभ्यतामें भी Garden Party तथा Tea Party आदि नाम से वैसे ही भोजों का प्रचलन है। किसी विशेष अवसर पर स्वजातीय बांधवों का एक स्थान पर उपस्थित होना एक परम उल्लास का विषय होता है। एक साथ बैठकर प्रेमालाप सहित भोजन करना और भी आनंद का विषय बन जाता है। इतना सब होते हुए भी हमारी प्रणाली में कुछ ऐसे दोष आ गये हैं जिनपर प्रकाश डालना उचित समझ पड़ता है।

जीमनवार के समय प्रायः फर्श आदि पर उपयुक्त बिछौने की व्यवस्था नहीं रहती फलतः जहां जिसके जी में आया, वह वहीं बैठकर भोजन करने लगता है। उसे यह सोचने की फुरसत नहीं रहती कि जहां हम बैठ रहे हैं वह रास्ता है, खुली अथवा बिल्कुल बंद जगह है अथवा कोई गंदा स्थान है। कई कई आदमी एक वृत्त सा बनाकर बैठ जाते हैं और बीच में रखे हुए एक ही थाल में सब भोजन करने लगते हैं। इस क्रम में ऐसा भी होता है कि ग्रूप अथवा गोल के दो चार आदमी पूरा भोजन करके उठ जाते हैं, शेष खाया ही करते हैं तथा और नये आदमी भी आकर उसी थाल में खाने लगते हैं। यह सब बातें स्वास्थ्य विज्ञान के अनुसार अनुचित हैं, यदि हम थोड़ी सी भी चेष्टा करें तो यह दोष बड़ी सरलता से दूर हो सकता है। प्रत्येक आदमी, उचित और निर्दिष्ट स्थान पर, सबके साथ ही बैठकर भोजन कर सकता है यदि जीमनवार की व्यवस्था समाज के पढ़े लिखे युवकों के हाथ में पहले से ही दे दी जाया करे।

जीमनवार की उपर्युक्त दोष पूर्ण पद्धति का फल यह होता है कि जीमनवार के समय एक ग़दर सा हो जाता है, परोसने आदि का काम भी अस्तव्यस्त रहता है, कोई किसी की सुनने वाला नहीं होता। कभी कभी भोजन करने वाला भोजन की प्रतीक्षा में घंटों यों ही बैठा रह जाता है। ऐसी स्थिति में जो व्यक्ति सम्मान पूर्ण निमंत्रण पाकर ही भोजन करने आते हैं, घोर अपमान का अनुभव करते हैं और उत्सव या उपलक्ष के प्रति उनका भाव सहानुभूति पूर्ण नहीं रह जाता ; वे उत्सव या

उपलक्ष के व्यवस्थापक के कटु आलोचक तथा कभी कभी भयंकर वाधा पैदा करने वाले बन जाते हैं। बहुत से स्वाभिमानी तथा बहुत से अनजान ऐसी दुर्व्यवस्था देखकर बिना भोजन किये ही वापस लौट जाते हैं।

कभी कभी तो जीमनवार के समय भोजनशाला में वह चिल-पों उठती है कि कुंजड़ों की हाट के शोर-गुल को भी मात कर देती है। इस गदरशाही के कारण प्रायः कुछ लोग भोजन सामग्री से भरे हुए थाल ही अपने पास रखवा लेते हैं, जिससे कि अपने सामने की थाली में भोजन सामग्रीके कम होने पर वे स्वयं और सामान उठा ले सकें। यह सब होते हुए भी कहा यह जाता है कि "न्यात के समय जूठन आदि का विचार नहीं किया जाता।"

भोजन के लिये जो सामान बनाया जाता है, उसकी भी बुरी दशा हो जाती है। बहुत सी खाद्य-सामग्री इधर उधर व्यर्थ ही नष्ट होती है, इसके अलावा जिस स्थान पर वह सामग्री बनती है अथवा जहां रखी जाती है, वहां भी उसका एक बहुत बड़ा अंश नष्ट होता रहता है। इसका कारण यह है कि उस सामान की देख-भाल करने वाला कोई एक आदमी नहीं रहता और न कोई परोसने वाला ही होता है, खाने वाले जैसा चाहते हैं, उस पर हाथ चलाते रहते हैं। घर वाले सामान बनवा देने के बाद उसे पंचों के सिपुर्द करके अपनी जिम्मेदारी से छुट्टी पा जाते हैं, इधर पंच के दायित्व का भार जिन आदमियों पर होता है, उन्होंने एक प्रकार से शपथ सी ले रखी है कि वे 'पंच' शब्द के अर्थ का अनर्थ ही करेंगे। उत्तरदायित्व के निर्वाह की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता, सारे अनर्थों की जड़ यही चीज है। वैभागिक व्यवस्था, व्यवस्था का पूर्ण निर्धारण और शिक्षित व्यक्तियों द्वारा व्यवस्था का कार्य चलानेसे यह सब दोष दूर हो सकते हैं और तब जेवनारके आनन्दका विशुद्ध रूप ही हमें देखने को मिलेगा।

मृतक-भोज

मृतक भोज की विकृत रूढ़ि से भी आज हमारा समाज बुरी तरह पिस रहा है। धर्मशास्त्रों में इस प्रकार के भोजन को 'उच्छिष्ट' संज्ञा दी गई है और "लुप्तपिण्डोदक" वाले प्रकरण के सिद्धान्तों के अनुसार किसी अंश तक ऐसे भोज

की व्यवस्था का विधान है अवश्य, परन्तु देश-काल के न्याय से किसी पर अनिवार्यता का नियम नहीं लागू है। इस प्रकार के भोजन तथा उच्छिष्ट एवं गर्हित दान-ग्रहण करने वालों की एक अलग श्रेणी ही निर्धारित कर दी गई है, जिनमें महापात्र, गंगापुत्र और गोस्वामी ब्राह्मणों के वर्ग हैं। यह वर्ग ऐसे दान ग्रहण करने के उपरांत अपने अतिरिक्त जप तप और कर्मकाण्ड के द्वारा उक्त दान-ग्रहण के संस्कार-गत कुप्रभाव का परिष्कार कर डालते थे। इस प्रकार यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि मृतक-भोज ऐसा कोई संस्कार नहीं है, जिसे संपन्न करना धनी और निर्धन सबके लिये अपरिहार्य हो। दूसरी स्पष्टता यह प्रगट होती है कि जाति-विरादरी के लोगों को तो इस प्रकार के अवसरों का भोजन ग्रहण ही नहीं करना चाहिए। यदि भूल से भी अथवा अवस्था विशेषमें (भूख से मरने की हालत आदिमें) यदि कोई अनधिकारी वैसा अन्न अथवा दान ग्रहण करे, तो शास्त्र उसके लिये प्रायश्चित्त की व्यवस्था देते हैं; ऐसी दशा में हमारे समाज में प्रचलित मृतक-भोज वास्तव में समाज का एक बेतुका कलंक है, जिसे दूर करना समाज के प्रत्येक शिक्षित और विचारशील व्यक्ति का कर्तव्य है। हम देखते हैं कि ऐसे विषयों की ओर समाज के पढ़े लिखे लोग अनुसंधान अथवा जिज्ञासा का कष्ट नहीं उठाते, इसीलिये इस प्रकारकी क्षुद्र कुरीतियां भी समाज से दूर नहीं होती। श्रुति-स्मृति और शास्त्रों के सम्यक पठन पाठन की ओर अंगरेज़ी पढ़े लिखे लोगों की उदासीनता बड़ी भयंकर चीज़ है। किसी भी शिक्षा का तक़ाज़ा है कि विभिन्न विषयों की शिक्षा, उनके पठन-पाठन से ही अपनी शिक्षा को विकसित किया जाय। अंगरेज़ो जैसी इतर देशीय, इतर वर्गीय और समाजेतर भाषा की तो हम मोटी मोटी किताबें चाट जाने में कोई कष्ट नहीं समझते, परन्तु अपने सामाजिक, आचार तथा सांस्कृतिक शास्त्रों की पुस्तकें पढ़ने में हमें सब कष्ट ही कष्ट दिखाई देता है, अन्यथा समाज की ऐसी विकृत और निराधार रूढ़ियां एक घंटे के अन्दर नष्ट हो जायं। ब्राह्मण उपरोहितों ने भी अपना उत्तरदायित्व इतना ही समझ रखा है कि वे "जी, बाबू जी" की पूजा और उनकी स्तुति ठाकुर जी की पूजा और स्तुति से कहीं अधिक इसलिये करते रहते हैं कि "बाबूजी" उनके लिये प्रत्यक्ष देवता हैं, जिनकी कृपा से उनके सदैव-प्रसारित हाथ में दक्षिणा आती रहती है

राजस्थानीय रमणी के प्राचीन वस्त्रालङ्कार ।

और ठाकुर जी तो सिर्फ कहने के लिये ही किसी परोक्ष लोक के देवता होते हैं। अपने जप-तप-विद्या तथा वेद-शास्त्र-स्मृति आदि के अध्ययन द्वारा "भूसुर" नाम पाने वाला ब्राह्मण आज हर समय अन्न-वस्त्र और द्रव्य का लोलुप बन कर "बाबूजी" की ही ओर मुंह बाये रहता है; उनकी आराधना से ही उसे छुट्टी नहीं मिलती, इसलिये समाज की दशा में सुधार की गति और भी मंद है। हम वैश्य हैं, वैश्यकर्म में ही प्रवृत्त रहकर हम सिद्धिके अधिकारी हो जाते हैं; क्योंकि "स्वे स्वे कर्मणि अभिरतः संसिद्धिं लभते नरः" का उपदेश हमें गीता से मिलता है, तो क्या यह ब्राह्मण उपरोहितके सोचने की बात नहीं है कि सारे हिन्दू समाज की तथा आर्यजाति के अभ्युत्थान की दिशा में सबसे बड़ा उत्तरदायित्व ब्राह्मण का ही है? क्यों, कामिनी काञ्चन तथा राजछत्र को एक व्याधि और मिट्टी से भी तुच्छ समझने वाला ब्राह्मण धेले धेले के लिये सेठ साहूकारों का मुंहताज बना हुआ रहता है, क्यों न वह अपने विद्यार्जन, वेदशास्त्रादिके पठन और मनन की ओर झुके, क्यों न विद्या का प्रकाश करे और क्यों न जप-तप और कर्मकाण्ड द्वारा स्वयं तेजस्वी बनकर शेष वर्णों को भी तेजस्वी बनावे?

इधर हमारे सेठ जी का यह हाल है कि उनके कारबार में यदि कहीं एक पैसे पर भी व्याघात दिखाई देता है, वहां वे बाल की खाल निकाल कर रख देते हैं, बालू से भी तेल निकाल लेते हैं; परन्तु सामाजिक कुरीतियों के प्रश्न पर, अशास्त्र-विहित घोर कर्मों की परिपाटी के प्रश्न पर उनकी सारी तर्कबुद्धि न जाने कहां गायब हो जाती है, अन्यथा यदि प्रत्येक सामाजिक कृत्य के असली विधान या शास्त्रीय आदेश के प्रति वे तार्किक और जिज्ञासु बन जायं, तो उपरोहितों को झख मारकर प्रामाणिक विधि पर ही प्रत्येक कार्य कराना पड़े।

जब हम किसी भी अवसर पर किये जाने वाले भोज की स्थिति पर विचार करते हैं, तो पता लगता है कि उसका कार्यक्रम अधिकांश स्थलों पर आवश्यकता से अधिक व्यय-साध्य हो जाता है, जो एक साधारण या गरीब आदमी के लिये सत्या-नाश ही बनकर जबर्दस्ती उसके ऊपर सवार हो जाता है। मृतक भोज के साथ यह भीषणता दो गुनी हो जाती है, क्योंकि संबंधित व्यक्ति अपने पारिवारिक स्वजन

के चिर-वियोग से यों ही दुःख, शोक और चिन्ता की मूर्ति बना हुआ रहता है और तभी उसपर मृतक-भोज का पहाड़ भी टूट गिरता है।

ग़रीबों के लिये भोज की परिपाटी इस प्रकार एक अभिशाप हो रही है; ऊपर हम देखते हैं कि धनिकों के हकमें भी वह एक अभिशाप ही है; क्योंकि एक तो इस परिपाटी से अन्न या धन का सदुपयोग नहीं होता, दूसरे विशेष परिस्थियों में—जैसे आज कल महंगी तथा अभाव की अवस्था में—बहुत कुछ खर्च कर डालने पर भी पेटू भाई कहीं आटे की खराबी का अपवाद फैलाते हैं, तो कहीं घी और तेल की मिलावट की बदनामी फैलाते हैं और कहीं वेजीटेबुल का जहर खिलाने का लांछन लगाते फिरते हैं।

हिन्दू समाज का प्रत्येक नियम इतना विशाल और इतना उदार है कि उसके कारण किसी भी आदमी को किसी भी स्थिति में कष्ट हो ही नहीं सकता। जिन स्थलों पर शास्त्रों ने ब्राह्मण भोजन की व्यवस्था दी है, वहां भी देश-काल और सामर्थ्य की ही व्यवस्था दी गई है। सामर्थ्य न होने से अथवा अभाव की दशा में एक चुटकी भर अन्न संकल्प के साथ गाय को खिला देने में भी वही श्रेय समझाया गया है, जो हज़ार ब्राह्मण खिलाने से मिल सकता है। ऐसी दशा में असमर्थ और गरीब भाइयों को भी साहस के साथ विकृत प्रचलनों का परित्याग कर देना चाहिए। उन्हें यह सोचना चाहिए कि जब उनकी ग़रीबी में हाथ बटाने के लिये समाज का कोई व्यक्ति हित का काम नहीं कर सकता, तो अपने कल्याण के विचार से किये हुए काम में समाज का कोई व्यक्ति अहित क्यों करेगा, तथा कैसे वह अहित करनेमें समर्थ और सफल हो सकेगा।

मृत्यु के उपरांत शास्त्र विहित, दाहकर्म, सपिण्डी, दशगात्र, शय्यादान, एकादशा तथा त्रयोदशा तक के कर्मों में ऐसे ही अनर्गल और व्ययसाध्य प्रचलन स्वार्थ वृत्ति के पापों द्वारा जोड़ दिये गये हैं। समाज के शिक्षित और विचारशील व्यक्तियों को उनके विषय की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करके देशकाल और सामर्थ्य के विचार से ही उन कर्मों के प्रचलन का निर्वाह करना और कराना चाहिए।

अन्य रूढ़ियां एवं प्रचलन

इसके अतिरिक्त जीवन के संस्कारों के साथ तथा पर्व उत्सवों के साथ हमारे समाज में अनेकों रूढ़ियां एवं प्रचलन पाये जाते हैं। हिन्दू सभ्यता की अति प्राचीनता के कारण, वैदिक संस्कृति के अति विशाल विस्तार के कारण तथा हिन्दू समाज के विशाल विस्तार के कारण विभिन्न समाजों के विभिन्न प्रचलन एक दूसरे समाज में प्रविष्ट हो गये हैं, जिनका यथार्थ कार्य कारण हम तभी जान सकेंगे, जब हम अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता तथा अपने विशाल सामाजिक ज्ञान के प्रति आकृष्ट होंगे और उनकी गहराइयों तक पैठने के लिये तैयार होंगे।

हमारे समाज की बहुत सी विकृत रूढ़ियां प्रायः सम्बन्धित मनुष्य की जीवन-संग्राम सम्बन्धी असफलता की भी सूचक होती हैं। जैसे दहेज की प्रथा के कारण पुत्रियों को बहुत बड़ी अवस्था तक बिना व्याहे ही बैठाये रखना, अतिवृद्ध अथवा अयोग्य व्यक्ति के साथ उसका विवाह कर देना अथवा शालिग्राम की मूर्ति, पीपल के वृक्ष अथवा किसी ब्राह्मण बालक या देवता के साथ फेरे दिला कर तथाकथित कन्या-भार से मुक्त हो जाने का नाटक आदि प्रचलन ऐसे ही हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह सब विधियां शास्त्रोक्त हैं, फिर भी उनकी अवस्थायें विशेष हैं। यदि कोई मनुष्य उन अवस्थाओं के बिना ही उक्त विधियों से काम लेता है, तो वह सामाजिक और शास्त्रीय नियम से दोष का भागी है। प्रचलित लोक-व्यवहार से परास्त होकर, रचनात्मक कार्य में प्रमाद-वश असफल होकर, रणभूमि छोड़कर भागे हुए सिपाही की भांति ऐसे लोग उपर्युक्त विधियों से अनुचित लाभ उठाते हुए देखे जाते हैं। अपने वैयक्तिक जीवन में अनेक व्यसनों में अतुल धन-राशि फूंक देते हैं और जब लड़की के विवाह का समय आता है तो समाज की बुराई करते फिरते हैं; दहेज-प्रथा का नाम लेकर चारों ओर रोते फिरते हैं तथा जहां तहां भीख मांगते फिरते हैं। यह बात हम मानते हैं कि आजकल दहेज आदि के दोष समाज को बुरी तरह परेशान कर रहे हैं, तो भी इसका कुप्रभाव केवल दहेज के ही कारण नहीं है वरन् कुछ तो सम्बन्धित व्यक्तियों की अकर्मण्यता और दुराचार के कारण है और बहुत कुछ इसलिये है कि हमारा देश पराधीन है

और उसके फलस्वरूप हमारी सामाजिक अर्थ-दशा बहुत विकृत है। राजनीतिक पराधीनता के दूर होने पर दहेज आदि के अवगुण हमारे गुण भी बन सकते हैं परन्तु सामाजिक, शास्त्रीय और आदर्श सम्बन्धी सर्वतोमुखी महत्व की ही दृष्टि से।

यदि हम सामूहिक रूप से हिन्दू-समाज में प्रचलित रूढ़ियों और रीतियों का उल्लेख करें, तो हमें 'लगन' चढ़ने के समय लड़के या लड़की को लोहे का छल्ला पहनाने, वर और कन्या के मुंह पर रोली, चावल और पान के टुकड़ों को मिलाकर 'मरवट माड़ना', प्रथम बार वर के कन्या के द्वार पर पहुँचने के समय कन्या की जूठन वर पर छोड़ना, लहकौर के समय वर को कन्या की जूठन खिलाना, कन्या के मुंह में कई दिन तक पड़ी रहनेवाली सुपारी को वर के लिये प्रस्तुत पान में छोड़कर उसे खिलाना, फेरे के समय दिये जाने वाले ७ बचनों के प्रति वर और कन्या की अनभिज्ञता, कुलदेव पूजन के बहाने जूतियों की पूजा करवाने का आग्रह, 'श्लोक' अथवा "छन्द" पढ़वाना, विवाह के अवसर पर "गाली" सुनाना, विघ्न बाधाओं की रोक के लिये दीवाल पर दो शिकोरोंको औंधे हुए चुनवा देना, घुड़चढ़ीके पूर्व वर को गधी पर चढ़ाने का प्रचलन, वर-यात्रा के समय माता का रूठना, वर-यात्रा के बाद वर पक्ष की स्त्रियों द्वारा किया जाने वाला "नाटक" अथवा "बूबना" या "खोरिया," बारात वापस आने पर वर पक्ष की बहिन या बेटी द्वारा घर का द्वार बंद करके कुछ नेग लेकर द्वार खोलना, धोबिन द्वारा "खार छुड़ाई" तथा सोहाग-दान की प्रथा, विवाह के समय रंडी का नाच कराना इत्यादि ऐसे विषय हैं, जिनके विरुद्ध आवाज़ उठ रही है, फिर भी इन रीतियों का यथावत कारण और परिस्थिति का कारण जाने बिना इनका मूलोच्छेद कर डालना श्रेयस्कर नहीं हो सकता। राजनीतिक, शास्त्रीय, सांस्कृतिक, आयुर्वेदिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ उनपर विचार करना होगा तथा लोकरीति और कुल-रीति को आदर देते हुए ही उन रीतियों का संशोधन अथवा उनका रूपान्तर करना होगा।

अंत्येष्टि और मरण के समय की भी कुछ रीतियां विभिन्न समाजों में आलोचना का विषय बन रही हैं। किन्हीं समाजों में वृद्ध-पुरुष के मरने पर 'विवाहन', वैकुण्ठी या विमान की विधि पूर्ण की जाती हैं, जिसमें शव को बहुत देर तक रोक कर

उसका विमान सजाया जाता है, उस पर बहुमूल्य कपड़े डाले जाते हैं, जिन्हें भंगी ले लेता है, विमान लौटाने पर उसमें लगा हुआ गोटा पट्टा आदि निकाल कर घर के बच्चों की पोशाकों पर टांका जाता है और उससे आयुष्य बढ़ने का विश्वास किया जाता है। किसी किसी समाज में वृद्ध की मृत्यु हो जाने के समय समधियाने की स्त्रियां शोक-प्रदर्शन के लिये खुद आती हैं और अपने साथ अन्य स्त्रियों को भी ले आती हैं। वह सब मिलकर एक गुट्ठा बनाती हैं और खूब गाती बजाती और नाचती हैं। इस रीति को "हांसे-तमासे" या "खेड़े" की रीति कही जाती है।

किसी किसी समाज में "स्यापा" (स्यापा शब्द शाप का प्रर्ययवाची शब्द है) की रीति चलती है, जिसके अनुसार किसी के यहां मृत्यु होने पर किराये की औरतें "विधवा" वेश बनाकर आती हैं और मृतक के जीवन की एक बात कहकर रोती-पीटती रहती हैं। स्यापे की यह विधि महीनों और सालों तक चला करती है। ऐसी किराये की स्त्रियों को बक़ायदा ट्रेनिंग भी दी जाती है। मृतक के जन्म से लेकर मरण पर्यन्त का इतिहास बताते हुए रोने-पीटने की इस विधि को "बैन-पढ़ना" कहते हैं। इस अवसर पर स्यापे की औरतें एक स्वर के साथ रोती हैं। जो स्त्री 'अच्छा' बैन पढ़ती है, उसकी प्रशंसा की जाती है और जिसे यह विधि ठीक ठीक करनी नहीं आती, उसे मूर्खा कहा जाता है!

इसमें कोई सन्देह नहीं कि "विमान", "स्यापा" और "बैन पढ़ने" की रीतियां नितान्त अधम कोटि की और गर्हित प्रथायें हैं, जो देशकाल के सर्वथा विपरीत और निंद्य हैं, ऐसी रीतियों को अपनाये रहने वाला समाज "अधोगति प्राप्त" होने के कलंक से कदापि नहीं बच सकता। संबंधित वर्ग और समाज के श्रेष्ठ पुरुषों को इस स्थिति में हाथ पर हाथ धर कर बैठना शोभा नहीं देता, उन्हें कर्मवीर बनकर ऐसी रीतियों का तत्काल विनाश कर देना चाहिए।

पर्व-त्योहार और व्रत

हिन्दू-संस्कृति आजकल, जब घोर अविद्या का अन्धकार उसे आच्छादित किये हुए है, पर्वों की ही संस्कृति प्रतीत होने लगी है। साल के ३६० दिनों में एक भी ऐसा दिन नहीं है, जो किसी पर्व के रूप में न हो। पर्वों और त्योहारों की यदि

अलग संख्या गिनी जाय, तो सालभर के दिनों से यह संख्या कई गुना अधिक निकलेगी। इसका कारण यह है कि हमारी संस्कृति अरबों वर्ष की पुरानी हो चली है। इन अरबों वर्षों में हिन्दू-संस्कृति के अन्दर लाखों और करोड़ों वीर पुरुष उत्पन्न हुए तथा लाखों और करोड़ों ऐसी घटनायें घटित हुईं, जिनसे संस्कृति के प्रवाह में भीषण आरोहावरोह हुआ और वीर-पूजा के न्याय से वह सब दिन और समय इस संस्कृति के पर्व बनते गये। वीर-पूजा के न्याय से हमारे इन पर्वों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। उदाहरण स्वरूप, साहित्यिक जागरूकता के कारण आज हम तुलसीदास को भी अपने समाज का एक महान् "वीर" (Hero) मानते हैं, इसलिये श्रावणशुक्ला ७ भी हमारा एक पर्व बन गया। इसी प्रकार १३ अप्रैल, शिव-जयन्ती, प्रताप-जयन्ती, तिलक-पुण्यतिथि, गांधी-जयन्ती और ९ अगस्त की तारीखें भी हमारे त्योहारों की गणना में सम्मिलित होती जा रही हैं।

हमारे वैदिक विज्ञान के अनुसार जिस प्रकार आधि-दैविक, आध्यात्मिक तथा आधि-भौतिक जगत का प्रतिपादन होता है, उसीके प्रतिनिधित्व में वेद-त्रयी, द्विज-वर्ण-त्रयी भी आते हैं। इस त्रिवर्ग के परिचर्यात्मक कार्यक्रम की पूर्ति के लिये त्रिवर्गांश से ही चतुर्थ वर्ण की रचना हुई है। इस प्रकार श्रावणी पूर्णिमा, विजया दशमी, और दीपावली के पर्व भी आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक जगत के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य रूपी प्रतीकों के सांकेतिक लक्षण हैं तथा त्रि-धा जगत के पूरक वर्ण के प्रतीक का चतुर्थ पर्व—जिसमें तीनों वर्णों के समन्वय का विधान है—होलिका के रूप में उपस्थित होता है। इस प्रकार मुख्य चार पर्व हमारी संस्कृति के सनातन अंग हैं। ऐतिहासिक प्रकरणों की आवृत्ति-वश यह चारों अवसर अधिकाधिक महत्व-पूर्ण बनते चले गये। शेष पर्व हमारी संस्कृति की वीर-पूजा के आदर्श और प्रतीक रूप में प्रचलित हुए हैं।

श्रावणी-उपाकर्म अथवा रक्षा-बन्धन—यह पर्व श्रावण पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। इस पर्वमें ब्राह्मण ही उपाकर्म संस्कार द्वारा आधिदैविक शक्ति का संचय करके आधिभौतिक और आध्यात्मिक जगत के तत्वों में ब्रह्मत्व की रश्मियां भरकर जीवन-शक्ति की स्फूर्ति की प्रेरणा करते हैं। आधिदैविक-साधना से अवशिष्ट स्थूल

जगत के कल्याण का उपक्रम होता रहा है और उसका भार ब्राह्मण पर ही रहा है। यज्ञ-यागादि कर्म द्वारा ब्राह्म-शक्ति को केन्द्रित करके ब्राह्मण यज्ञ-सूत्र अथवा रक्षा-बन्धन करके लोक कल्याण की साधना करते थे। कालान्तर में पूज्य और पूजक की श्रेणी निर्मित होने पर घर की बहिन या बेटी द्वारा ब्राह्मशक्ति-अर्जन का भाव माना जाने लगा अतएव बहिन और बेटियां भी रक्षा-बन्धन करती हैं।

जिस आदमी को जो ब्राह्मण या बहिन, बेटी राखी बांधती है, उस आदमी को इस रक्षा-बन्धन के बदले में कुछ दक्षिणा देनी पड़ती है। इस अवसर पर बहिन बेटियों द्वारा राखी बांधे जाने का हेतु बामन-अवतार की कथा से संबंधित है। जब बामन-रूप धारी विष्णु ने राजा बलि से सब राज्य और धन धरती ले ली और उन्हें पाताल भेजने लगे, तो साथ ही उन्होंने बलि की भक्ति से प्रसन्न होकर वर मांगने के लिये भी कहा, इस पर राजा बलि ने यही वरदान मांगा कि स्वयं भगवान भी मेरे साथ पाताल चलें और तपस्या करें (बलि के द्वार तपें)। बचन के अनु-सार जब विष्णु भी पाताल में रहने लगे, तो लक्ष्मी जी अकेली रह गईं और वे पति का वियोग न सहन कर सकीं फलतः वे पाताल गईं और उन्होंने राजा बलि की बहिन बन कर उनके हाथ में राखी बांध दी। इस प्रकार दक्षिणा में लक्ष्मी जी भगवान विष्णु को मांग कर ले आयीं। लक्ष्मी जी ने यह कृत्य श्रावणी पूर्णिमा के ही दिन किया था और कहा जाता है कि इसी उपलक्ष से बहिनों और बेटियों द्वारा राखी बांधने की प्रथा चली।

रक्षा-बन्धन का पर्व आम तौर पर दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग सबेरे से लेकर मध्याह्न तक चलता है तथा दूसरा भाग मध्याह्न के बाद से शाम व रात तक चलता है। प्रथम भाग में मारवाड़ी समाज का प्रत्येक व्यक्ति—जिसका यज्ञोपवीत हो चुका है—अवश्यमेव गंगा-स्नान करने जाता है। जहां से गङ्गा दूर हैं, वहां से भी लोग यात्रा करके गङ्गा तक पहुंचते हैं और अगर गङ्गा स्नान के लिये नहीं जाते, तो किसी जलाशय के निकट जरूर जाते हैं। कलकत्ता जैसे महानगर के ऐसे ऐसे आदमी भी—जो साल के ३६५ दिन दुश्चरित्र और दुराचार में ही व्यतीत करते हैं—ऐसे अभिमानी धनिक भी—जो धन के मद से मस्त होकर धार्मिक पवित्र

भावनाओं का आह्वान करना भी अपनी शान के खिलाफ समझते हैं—हुगली के कीचड़मय जल में लोटते हुए देखे जाते हैं, आस्तिकों के नास्तिक पुत्र भी रक्षा-बंधन के दिन हुगली में गोते लगाते हुए देखे जाते हैं।

श्रावणी का उपाकर्म संस्कार आजकल के नाजुक मिज़ाज वालों के लिये एक बला ही है। विधिःपूर्वक इस संस्कार को करने में पूरा दिन लग जाता है; परन्तु आज-कल काम-चलाऊ पंडित उसे २-३ घंटों में ही पूरा करा देते हैं और यदि पंडित महोदय जरा कुछ और modern style के होते हैं, तो दो घंटे से भी कम समय में वह रस्म-अदाई करा देते हैं।

उपाकर्म संस्कार का प्रारम्भ पञ्चगव्य-सेवन से होता है। अपनी अज्ञानता और अविद्या के कारण जिस प्रकार हम प्रत्येक धार्मिक कृत्य के विषय में कह दिया करते हैं कि "इससे पाप छूट जाते हैं" उसी प्रकार पञ्चगव्य-सेवन की विधि पर भी हम यही सुनते हैं, परन्तु पञ्चगव्य के रासायनिक गुण तथा उन गुणों की शक्ति शायद Electrone से किसी भी अंश में कम नहीं है। सुनते हैं कि हमारे प्राचीन ऋषि मुनि दैनिक-स्नान में भी पञ्च-गव्य का व्यवहार करते थे। आजकल इतना तो निश्चित रूप से जाना ही जा चुका है कि यदि पञ्चगव्य का प्रयोग दैनिक रूप से किया जाय, तो शायद रुग्णता का प्रश्न ही उठ जाय।

गङ्गा-स्नान के उपरांत उपाकर्म में ऋषि-पूजन का कर्म प्रारम्भ होता है, जिसके अनुसार साल भर तक बदलने के लिये यज्ञोपवीत एकत्र करके रखे जाते हैं और उनकी ग्रन्थियों के आह्वान की विधि पूर्ण की जाती है। हिन्दुत्व का मूलाधार यज्ञोपवीत के ही अर्थ में सन्निहित है और उपाकर्म संस्कार के बिना यज्ञोपवीत अथवा जनेऊ अपनी यज्ञोपवीत की संज्ञा नहीं प्राप्त कर सकता। उपाकर्म संस्कार पूर्ण हो जाने पर ब्राह्मणों द्वारा रक्षा-बन्धन का कार्य सम्पन्न किया जाता है। इसके पश्चात उत्तरार्ध भाग में बहिनों द्वारा रक्षा बन्धन का कार्य प्रारम्भ होता है। हमारे समाज में प्रत्येक भाई या भाभी बहनों का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये आवश्यक रूप से राखी बंधवाते हैं।

विजया-दशमी, दशहरा—यह पर्व आध्यात्मिक जगत के क्षत्रिय प्रतीक का

पर्व है, जो आश्विन शुक्ला १० को मनाया जाता है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचंद्र की लंका-विजय से यह पर्व और भी स्थूल महत्व वाला बन गया। शस्त्र-परिष्कार, शस्त्र-पूजन, शस्त्राभ्यास, सैन्य साधन-परिष्कार और प्रदर्शन इस पर्व के लक्षण हैं। क्षत्रियवर्ण ब्राह्मण को इस अवसर पर आमन्त्रित करता है तथा शेष वर्ण क्षत्रिय के समक्ष अपनी भेंटें लेकर उपस्थित होते हैं।

विजया-दशमी का "दशहरा" नाम दश-शीश-हरा से सम्बन्धित मालूम होता है; क्योंकि आजकल भी हमारे मारवाड़ी समाज तथा वैश्य-वर्ग में गोबर का रावण और उसके दश सिर बनाये जाते हैं। जिन पर कुश रखा जाता है। ब्राह्मणवर्ग दश-इंद्रियों पर विजय के अर्थाभास का अनुसरण करते हैं। राजस्थान के राजाओं के यहां, मैसूर नरेश के यहां तथा काली-भक्त बङ्गालियों के यहां यह पर्व बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है।

राजस्थानी नरेशों के यहां इस अवसर पर शौर्य-प्रदर्शन की एक विशेष विधि पूर्ण की जाती रही है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से Roman Olympic Games and Gladiators से कम महत्वपूर्ण कदापि नहीं है। अभी भी यह विधि अंशतः मौजूद है, जिसके अनुसार एक बहुत बड़े और बलवान भैंसे को शराब आदि पिलाकर उन्मत्त करके उसे रङ्ग-स्थल में छोड़ देते हैं और तब रङ्ग-स्थल में उतरने वाले क्षत्रिय के लिये आवश्यक होता है कि वह तलवार के एक ही झटके में उन्मत्त भैंसे की गर्दन अलग कर दे। यदि क्षत्रिय ऐसा न कर सके, तो उसे नपुंसक आदि की अपमानपूर्ण संज्ञायें मिलती हैं तथा वह उपहासास्पद हो जाता है। बड़े बड़े सामन्तों के यहां इस दिन शेर के शिकार को बड़ा महत्त्व दिया जाता है।

दीपावली—कार्तिक की अमावस्या को मनाया जानेवाला यह पर्व आधि-भौतिक जगत का प्रतीक है, जिसका वर्ण "वैश्य" है। सायं-सवन और जगतीछंद शाखा-वाला द्विज (वैश्य) इस अवसर पर लक्ष्मी-पूजन करता है। इस पर्व में वैश्य द्वारा ब्राह्मण और क्षत्रियों को निमंत्रित किये जाने का विधान है। तीनों ऋतुओं के वैदिक-विज्ञान-सम्बन्ध के आधार पर इस अवसर पर दीपक जलाने और प्रकाश करने का प्रभाव परम श्रेयस्कर होता है। भगवान रामचन्द्र के लङ्का से अयोध्या वापस आने के अवसर से इस पर्व की स्थूल महत्ता और भी बढ़ गई है।

भगवान रामचन्द्रजी के अयोध्या-आगमन के समय की दीपावली का वर्णन गोस्वामी तुलसीदासजी ने इस प्रकार किया है :—

सांझ समय रघुबीर पुरी की शोभा आजु बनी।
ललित दीप-मालिका विलोकहिं हितकरि अवध-धनी॥
फटिक भीत सिखरन पर राजति कंचन दीप-अनी।
जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि-सोभित सहस फनी॥
प्रति मन्दिर कलसनि पर भ्राजहिं मनिगन दुति अपनी।
मानहुं प्रगटि विपुल लोहितपुर पठइ दिये अपनी॥
घर घर मंगल चार एक रस हरषित रंक गनी।
तुलसी-दास कल-कीरति गावहिं जो कलिमल समनी॥

रामचरितमानस में इस अवसर पर गोस्वामीजी ने लिखा है :—

समाचार पुरवासिन पाये, नर अरु नारि हरषि सब धाये।
दधि दूर्वा रोचन फल फूला, नव तुलसी दल मंगल मूला।
भरि भरि हेम-थार भामिनी, गावत चलिं सिंधुर गामिनी।
* * * *
अवध पुरी प्रभु आवत जानी, भई सकल शोभा कै खानी।
बहइ सुहावन त्रिविध समीरा, भई सरजू अति निर्मल नीरा।
* * * *
बहुतक चढ़ी अटारिन्ह, निरखहिं गगन विमान।
देखि मधुर सुर हरषित, करहिं सुमंगल गान।
राका ससि रघुपतिपुर, सिंधु देखि हरषान।
बढ़्यो कोलाहल करत जनु, नारि तरंग समान।

हजारों, लाखों वर्षों के इतिहास में अनेकों घटनाओं का संयोग दीपावली के दिन के साथ सम्मिलित हो गया है। अभी थोड़े ही दिनों में "दयानन्द निर्वाण-दिवस" का उत्सव भी दीपमालिका के साथ शामिल हो चुका है। व्यापारी, धनी, उद्योगी और व्यवसायी भारतीय अपना नया खाता इसी दिन से प्रारम्भ करते हैं। बम्बई शहर की दीपावली आजकल संसार-प्रसिद्ध हो गई है।

होलिकोत्सव—भगवान शङ्कर पर कामदेव की चढ़ाई तथा भगवान शङ्कर द्वारा कामदेव का भस्मीकरण इस पर्व का आदि आधार है, जिसके साथ नवान्नेष्टि और नवशस्येष्टि यज्ञ का विधान उससे भी पूर्व का संस्कार है। हिरण्यकशिपु की बहन होलिका का दाह कालान्तर में इस पर्व का दूसरा अध्याय बना। वर्ण-व्यवस्था की रचना के साथ ही परिचारक वर्ण के प्रतीक में इसी पर्व को महत्व दिया गया। इस पर्व में चारों वर्णों को बिना निमंत्रण के समभाव से सम्मिलित होने का विधान है तथा चाण्डाल-स्पर्श का कर्म विहित माना जाता है। छुआछूत और ऊँच नीच की भावना से परे रहकर सामूहिक एकत्र विश्व की और एक ब्रह्म की अनुभूति का आदर्श इस पर्व में सन्निहित होता है।

भगवान शङ्कर पर कामदेव की चढ़ाई के समय का पौराणिक वर्णन बड़ा ही विलक्षण है। उस समय जड़चेतन चराचर विश्व भी कामोन्मत्त हो गया था। होली के अवसर पर उसी भाव की स्मृति मनाई जाती है। इस अवसर पर गाली-गलौज, प्रमत्तता प्रदर्शन, नाच-गान आदि भी सप्रमाण हैं, जिनके अनुसार मानसिक आसुर तत्वों को अन्दर ही अन्दर बढ़ते रहने का अवसर न देकर उन्हें इस अवसर पर निष्कासित कर देने की विधि रखी गई है। रङ्ग-अबीर लगाने की विधि समत्व-व्यवहार का साधन बनाई गई, साथ ही औषध-विज्ञान से भी सम्बन्धित की गई। इस समय में पलाश-पुष्पों के अर्क से स्नान करने तथा एक दूसरे को अभिषिक्त करने की रीति बहुत प्राचीन है। पलाश-पुष्पों के अर्क से स्नान करने के अनेक गुण आयुर्वेदिक ग्रन्थों में पाये जाते हैं।

कई अन्वेषकों ने लिखा है कि होली का उत्सव प्रलय की सूचना का उत्सव है। चारों वर्णों के तथा चारों युगों के अन्त के विचार से साथ ही भारतीय संवत्सर के अन्त के विचार से फाल्गुन पूर्णिमा अन्त का अथवा प्रलय का दिन निश्चित होता है।

होलिका का अग्नि में भस्म हो जाना तथा प्रह्लाद का जीवित रहना इस बात का स्मारक है कि सब कुछ भस्म हो जाने पर भी एक चीज़ बच जाती है, और वह है "सत्य" जिसके बल पर पुनः सृष्टि की रचना होती है।

मारवाड़ी समाज में होली के ठीक दूसरे दिन से प्रारम्भ होने वाला "गनगौर"

का पर्व इसी आधार और आदर्श पर बना हुआ है, जिसमें शिव-पार्वती की प्रतिमा होली की भस्म से ही बनाई जाती है और उनका विवाह रचाकर सृष्टि-निर्माण की अभिव्यक्ति की जाती है।

हिन्दू समाज के इन प्रमुख ४ पर्वों के साधारण परिचय के उपरान्त अब वर्ष के अन्य प्रमुख पर्वों का परिचय यहां दिया जाता है।

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा—हिन्दू संस्कृति के अनुसार यह सृष्टि की रचना का दिन है। विक्रमीय सम्वत्सर भी इसी दिन से प्रारंभ होता है। देवी-माहात्म्य के गूढ़ रहस्यों के आधारपर इस दिन से नवरात्र का आरंभ होता है जो ९ दिन में समाप्त होता है।

चैत्र शुक्ला नवमी—नवरात्र समाप्त होने के दिन यह पर्व "राम-नवमी" के नाम से प्रसिद्ध होता है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्रजी इसी दिन इस संसार में अवतीर्ण हुए थे। कहीं कहीं नववर्षारंभ की सुविधा से व्यापारी, व्यवसायी और महाजन लोग इसी दिन नये खाते की पूजा करते हैं।

वैशाख कृष्ण प्रतिपदा—यह दिन कच्छपावतार का स्मारक है तथा अश्वत्थ या पीपल वृक्ष पर जल चढ़ाने के लिये महत्व पूर्ण है।

वैशाख शुक्ला तृतीया—इसे अक्षय तृतीया या "आखा तीज" भी कहते हैं। परशुराम जयन्ती भी इसी दिन मनाई जाती है। बद्रीनारायणजी के पट इसी दिन से खुलते हैं। इस अवसर पर पतङ्ग उड़ाने का उल्लास पूर्ण प्रचलन है।

ज्येष्ठ अमावस्या—इसे बट-सावित्री या बरगद-पूजा कहते हैं। सावित्री देवी ने इसी दिन अपने पतिव्रत-तेजके बल से अपने पति सत्यवान के प्राणों को यम-पाश से छुड़ा लिया था। सत्यवान जंगल में बड़-वृक्ष पर चढ़कर लकड़ी काट रहे थे, उसी समय उनकी मृत्यु की घड़ी आई और वे वृक्ष से गिरकर परलोक-वासी हो रहे थे, परन्तु सावित्री यमराज का पीछा करती ही चली गई और अन्त में वह पति का प्राण छुड़ा लाई। उसी बट-वृक्ष की छाया में सत्यवान पुनः जीवित हुए, इसीलिये स्त्री समाज में बट-पूजाका इतना महत्व है।

ज्येष्ठ शुक्ला १०—यह दिन गंगावतरण का दिन है। गंगा स्नान का विशेष माहात्म्य है। यह तिथि भी 'दशहरा' नाम से विख्यात है। आमतौर से घोर

ग्रीष्म ऋतु में इसी दिन से गंगाका पानी बढ़ने लगता है और बर्फ के पिघलने के अनुसार वर्षातक शनैः शनैः जल बढ़ता ही जाता है।

आषाढ़ शुक्ला २—जगन्नाथ-पुरी के रथ-यात्रा महोत्सव के प्रसंग से यह पर्व माहात्म्य प्राप्त करता है। इससे पूर्व आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा को कहीं कहीं आस्वाद्य-गरिष्ट भोजन करने की तिथि मानते हैं और उस दिन से ४ महीने के लिये (वर्षाभर) गरिष्ट द्रव्य-सेवन बंद करके शारीरिक व्यायाम प्रारंभ करते हैं।

आषाढ़ शुक्ला एकादशी—इस पर्व को हरि-शयनी एकादशी नाम से गौरव मिलता है।

आषाढ़ पूर्णिमा का दिन गुरु-पूर्णिमा के रूप में पूज्य माना जाता है तथा भगवान वेद-व्यास की पूजा से इसे विशेष महत्व मिलता है।

श्रावण शुक्ला ३—इस तिथि से हिन्दू पर्वों का बाहुल्य प्रारंभ होता है। मारवाड़ी समाज में एक लोकोक्ति इस आशय की है :—

"तीज त्योहारां ले उपजी, ले डूबी गन-गौर"

अर्थात् आषाढ़ शुक्ला ३ से त्योहारों की बाढ़ प्रारंभ होती है और गनगौर से त्योहारों की बाढ़ समाप्त हो जाती है। इस तीज से वर्षा-पूजन, युवतियों के शृङ्गार-भूषण-धारण तथा झूला-झूलन के अर्थपूर्ण प्रचलन प्रारंभ होते हैं। स्त्रियाँ सिधारे और मेंहदी आदि से अपने अंगों को अलंकृत करती हैं तथा पतिगृह-प्रवेश को शुभ मानती हैं। प्रायः बधुयें पितृ-गृह आकर पुनः पति-गृह चली जाती हैं।

श्रावण शुक्ला पंचमी—इसे नाग पंचमी कहते हैं। इस अवसर पर "तक्षक-जयंती" मनाई जाती है तथा नागों की पूजा होती है। शारीरिक व्यायाम का आदर्श भी इसी तिथि से प्रतिष्ठित होता है। वर्षाकाल में हमारे यहां शारीरिक व्यायाम की विशेष आवश्यकता का समर्थन किया गया है। आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार आकाश में मेघों के आते ही मनुष्य शरीर की जठराग्नि मंद हो जाती है, जो शारीरिक व्यायाम से प्रबल होती है। नाग पंचमी के दिन मल्ल विद्या के प्रदर्शन का महत्व माना जाता है।

श्रावण पूर्णिमा—उपाकर्म संस्कार और रक्षा बन्धन के कर्म इसी पर्व से संबद्ध

हैं। नाग पंचमी के दिन अखाड़े की मिट्टी लेकर लड़कियां इसमें जौ बोती हैं और रक्षा बन्धन के दिन तक उगे हुए धान्य के पौधों को गुच्छ रूप से अपने भाइयों और गुरुजनों के कानों में खोंसकर तिलक करती हैं तथा बदले में दक्षिणा लेती हैं। कहीं कहीं इसे "भुजरियों का पर्व" भी कहते हैं। इसका संबन्ध रक्षा बन्धन से ही है। श्रावणी उपाकर्म बनारस में सबसे अधिक दर्शनीय होता है।

भाद्रपद कृष्णा ४-बहुला चौथ—बहुला-नामक गाय के सत्य-व्रत की कहानी इस दिन का विशेष संस्मरण है। पुत्रवती स्त्रियां इस दिन व्रत रखतीं तथा वात्सल्य भाव की स्मृति मनाती हैं। महाराज दिलीप को 'नन्दिनी' नामक गाय द्वारा पुत्र-लाभ का वरदान भी इसी दिन माना जाता है।

भाद्रपद कृष्णा ६—हलषष्ठी नाम से यह पर्व विख्यात है। पुरुष वर्ग कृषि-द्वारा उत्पन्न होने वाले प्रत्येक धान्य को भूनकर खाते हैं तथा स्त्रियां व्रत रखकर कृषिकर्म की स्मृति मनाती हैं।

भाद्रपद कृष्णा ८—(जन्माष्टमी) भगवान श्रीकृष्णचंद्र का जन्म इसी तिथी को हुआ था। वसुदेव-देवकी के कष्टों की स्मृति में दिन भर से लेकर अर्ध रात्रि तक व्रत रखने का विधान है। इस अवसर पर झांकी, हिंडोले और झूला आदि के उत्सव समारोह पूर्वक मनाये जाते हैं।

भाद्रपद कृष्णा १३—यह दिन कलियुग-प्रारंभ का स्मारक है।

भाद्रपद अमावस्या—इसे कुश-ग्रहणी अमावस्या कहते हैं। इस दिन ब्राह्मण लोग कुश खोदकर रख लेते हैं। इस दिन खोदे हुए कुश पूरे सालभर के लिये पवित्र और उपादेय माने जाते हैं।

भाद्रपद शुक्ला ३—यह हिन्दू समाज की स्त्रियों का श्रेष्ठ पर्व है, जिसे "हरतालिका व्रत" या "कजली तीज" भी कहते हैं। निष्ठा के रूप को सर्वोत्तम रूप से चरितार्थ करनेवाली भगवती पार्वती जी की तप-साधना तथा अभीष्ट वर-प्राप्ति के संस्मरण में यह व्रत तथा पर्व मनाया जाता है। इसके एक दिन पूर्व भाद्रपद शुक्ला २ का दिन भगवान कृष्ण के भाई बलराम दाऊ का जन्म दिवस माना जाता है।

भाद्रपद शुक्ला ४—इसे गणेश चौथ, चौक चांदनी या पत्थर चौथ कहते हैं। इस दिन चन्द्रमा का दर्शन वर्जित माना जाता है। श्रीमद्भागवत में इस दिन चन्द्रमा के दर्शन से भगवान कृष्ण को श्यामंतक मणि चुराने का कलंक लगने की कथा लिखी हुई है। इस दिन चन्द्रमा का दर्शन हो जाने पर स्यामंतक-मणि की कथा सुनने से कलंक न लगने का विश्वास माना जाता है। प्रायः लोग चन्द्र-दर्शन कर लेने पर गाली सुनकर नेष्ट प्रभाव नष्ट करने का विश्वास मानते हैं इसलिये वे छिपकर दूसरों के घरों पर ढेले और पत्थर फेंककर तथा ऐसी ही अन्य खुराफातें करके आशा करते हैं कि उन्हें कोई गालियां दे। गणेश जन्म के नाम से भी यह पर्व विख्यात है। हमारे मारवाड़ी समाज के बच्चों का यह एक प्रमुख पर्व है।

भाद्रपद शुक्ला ५—यह दिन ऋषि पञ्चमी का पर्व माना जाता है। इस दिन सप्त ऋषियों की स्मृति मनाई जाती है।

भाद्रपद शुक्ला १४—इसे अनंत चौदश कहते हैं। यह पर्व भी हिन्दू संस्कृति का बहुत प्राचीन पर्व है। १४ ग्रंथियों का एक सूत्र इस दिन मनुष्य अपने दक्षिण-बाहुपर बांधता या बंधवाता है, जिसका आशय भी १४ भुवनों के संबंध से वैदिक विज्ञान के एक ब्रह्म-सूत्र का स्मरण दिलाता है। बाद में अनंत नामक एक सात्विक और आदर्श ब्राह्मण के आत्मोत्सर्ग का प्रकरण भी इसी पर्व के साथ सम्मिलित हो गया।

आश्विन मास का पूरा कृष्णपक्ष पितृ-पक्ष कहलाता है, इन १५ दिनों तक हिन्दू धर्मशास्त्रों के मतानुसार ऐसे सभी मनुष्यों को—जिनके पिता जीवित न हों—श्राद्ध तर्पणादि करना चाहिये, ब्रह्म-चारी के नियमों का पालन करना चाहिये श्राद्ध, तर्पण तथा पिंडोदक के संबंध में पहले ही कुछ प्रकाश डाला जा चुका है।

पितृ-पक्ष का अन्तिम दिन पितृ-विसर्जनी अमावस्या है। इस दिन श्राद्ध तर्पणादि करने वाले मनुष्य पितरों को अर्घ्यादि देकर अपने ब्रह्म-चर्य नियम से छुट्टी पाते हैं, क्षौर कर्मादि कराते तथा यथाशक्ति किसी तीर्थ स्थान में जाकर पितृ-विसर्जन करते हैं। पितृ-पक्ष के इन्हीं दिनों में हिन्दू धर्म-शास्त्र फल्गू नदी तट पर—गया क्षेत्र में—पिण्डदान करने को बहुत बड़ा श्रेय देता है।

आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से पुनः नवदुर्गा अथवा नवरात्र का प्रारम्भ होता है। नवरात्र, दुर्गापूजा, अथवा शक्ति की आराधना का प्रकरण तथा उसका इतिहास बहुत विस्तृत और घटनापूर्ण है। देवीपक्ष के इन दिनों के पश्चात दशमी के दिन विजया-दशमी का क्षत्रियों का वह पर्व मनाया जाता है जिसमें शस्त्रपूजा, मृगया, और शमी-वृक्ष की पूजा भी होती है।

आश्विन शुक्ला १४ का दिन बाराह-अवतार का दिन माना जाता है।

आश्विन पूर्णिमा का दिन शरद उत्सव या शरद पूर्णिमा के नाम से प्रख्यात है। नक्षत्र-विज्ञान से जाना गया है कि इस रात्रि में चन्द्रमा का विशुद्ध सोम-तत्व उसकी रश्मियों द्वारा पृथ्वी पर विकीर्णित होता है, जिसे हिन्दू संस्कृति में अमृत-वर्षा कहा जाता है। इस रात्रि में चन्द्रिका-सेवन बड़ा लाभप्रद होता है। खीर अथवा दूध और सरधा को चन्द्रिका (चांदनी) में रात भर रख कर उसे खाने से बड़ा लाभ होता है। इसे भगवती सरस्वती का दिन मान कर उसकी पूजा की जाती है। साहित्यिक, कवि, चित्रकार तथा संगीतज्ञ इस रोज अपनी लेखनी, तूलिका तथा वाद्य-यन्त्रों की पूजा करते हैं तथा उस दिन उन पर हाथ नहीं लगाते। महाराष्ट्र में "कोजागिरी" नाम से यह पर्व बड़े उत्साह से मनाया जाता है।

कार्तिक कृष्णा ४ को करवा चौथ नाम का स्त्रियों का प्रमुख पर्व मनाया जाता है।

कार्तिक कृष्णा १४ को महावीर हनुमान जी की जयन्ती मनाई जाती है।

कार्तिक की अमावस्या को दीपमालिका, लक्ष्मी-पूजन का महा पर्व मनाया जाता है।

कार्तिक शुक्ल प्रति-पदा को अन्नकूट और गोवर्धन पूजा का माहात्म्य है। गोधन की महत्ता का इतिहास हमारी संस्कृति का अभिन्न अङ्ग है, इसलिये अन्नकूट गोवर्धन पूजा का पर्व भी अति प्राचीन है, जिसके साथ श्रीकृष्ण जन्म की गोवर्धन-धारण की घटना का इतिहास भी शामिल हो गया है।

कार्तिक शुक्ला द्वियीया (भइया दूज) या भ्रातृ-द्वितीया के नाम से प्रसिद्ध है। इस अवसर पर बहिन और भाई के स्नेह का एक बहुत प्रबल भाव जाग्रत होता है और पारस्परिक स्नेह की सूचना में कई एक विधियां पूर्ण की जाती हैं।

कार्तिक शुक्ला एकादशी को देवोत्थानी एकादशी कहते हैं। इस अवसर से कई ाक, तथा वनस्पतियों के सेवन का विधान श्रेयस्कर माना जाता है।

कार्तिक शुक्ला एकादशी से ही भीष्म-पञ्चक नामक पर्व का प्रारम्भ होता है, जो ५ दिन तक चलता है। इस अवसर पर अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले भीष्म-पितामह की स्मृति मनाई जाती है।

कार्तिकी पूर्णिमा—इस पर्व पर गंगा-स्नान का बड़ा माहात्म्य है। अवध-खंड में यह पर्व बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है। देहात के कोसों दूर वाले स्थानों से लोग बैल-गाड़ियां सजा-सजा कर गंगा-स्नान करने जाते हैं। इस अवसर पर बैलों और गाड़ियों की सजावट तथा बैलों की दौड़ की होड़ विशेष उल्लेखनीय होती है। इस दिन से कार्तिक स्नान की विधि दान आदि देकर पूर्ण कर दी जाती है।

मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को गीता-जयन्ती का पर्व माना जाता है तथा मार्गशीर्ष पूर्णिमा का दिन दत्तात्रेय जयन्ती का दिन माना जाता है। इसके १ दिन पूर्व चतुर्दशी को पिशाच-निवृत्ति का श्राद्ध किया जाता है।

पौष शुक्ला ७ को बौद्ध-जयन्ती का दिन पड़ता है। बौद्धधर्म के मुकाबले ब्राह्मण धर्म की प्रबलता तथा भारतवर्ष से बौद्धधर्म के लुप्त हो जाने से यह पर्व नहीं के बराबर ही मनाया जाता है।

पौष पूर्णिमा—दुर्गा-देवी की शाकंभरी शक्ति की स्मृति का दिन है। माघ कृष्णाप्रतिपदा के दिन से १ मास पर्यन्त मूली खाना वर्जित होता है।

माघ कृष्णा ४—इसे तिलकी चौथ, माही चौथ या संकटा चौथ कहते हैं। इस दिन तिल-कूट तथा तिल के लड्डू का दान होता है। संकटा देवी का पूजन किया जाता है तथा विभिन्न प्रकार के धान्यों के पक्वान्न बनाये जाते हैं।

माघ की अमावस्या को पुष्कर-पर्व कहते हैं। मौन होकर गङ्गा अथवा किसी भी जलाशय में स्नान करने का बड़ा माहात्म्य माना जाता है।

बसन्त-पञ्चमी—माघ शुक्ला ५ का दिन बसंत-पञ्चमी नाम से विख्यात है। इसी दिन से होली का कार्यक्रम प्रारम्भ हो जाता है। होली, कजली और फाग आदि के गान का प्रारम्भ होता है; रंग छिड़कने की विधि भी इसी समय से जायज

हो जाती है। शरद पूर्णिमा की ही भांति कहीं कहीं इस दिन भी सरस्वती पूजन होता है। कवि, चित्रकार तथा गायक इस दिन अपनी कलाओं का प्रदर्शन करते हैं। सधवा स्त्रियां इस रोज अपना सुहाग संवारती हैं।

माघ पूर्णिमा—इस दिन भी गङ्गा-स्नान का विशेष माहात्म्य माना गया है। कानपुर आदि के क्षेत्रों में इस अवसर पर गङ्गा-तट पर "माघी" के कई जबर्दस्त मेले लगते हैं। माघ स्नान की विधि इसी तिथि से तिल, पात्र, ऊनी वस्त्र, कम्बल आदि के दान के साथ समाप्त हो जाती है।

फाल्गुन कृष्णा १४ को महाशिवरात्रिव्रत का पर्व होता है, जिसमें चतुर्दशलिंग-पूजा का विधान है। आर्य-समाजियों का ऋषिबोधोत्सव भी इसके साथ मिल गया है।

फाल्गुनी अमावस्या द्वापर की उत्पत्ति का दिन माना जाता है।

फाल्गुन शुक्ला ८ से होलाष्टक आरम्भ होता है और पूर्णिमा तक रहता है। द्वादशी के दिन नृसिंह द्वादशी मानी जाती है तथा उसे ही आमलकी द्वादशी भी कहते हैं, जब घर में उत्तम भोजन तैयार करके उसे आमले के वृक्ष की छाया में बैठकर खाते हैं।

फाल्गुन पूर्णिमा को होलिका-दहन, गीतवाद्यादि काम-महोत्सव, होलिका-विभूति धारण आदि होते हैं। यही महापर्व होली के नाम से विख्यात है। इस पर्व का कार्यक्रम बसन्तोत्सव, श्वपच-स्पर्श, रंगपंचमी आदि के सिलसिले से चैत्र कृष्णा ८ शीतलाष्टमी तक चलता रहता है। शीतलाष्टमी को पुनः होली जलाने तथा देवी-पूजन, नाच, गान, वाद्य का माहात्म्य माना जाता है। भारतवर्ष में होली का उत्सव सबसे अधिक दर्शनीय बृज-मण्डल का माना जाता है और मथुरा की होली देखने के लिये दूर दूर के लोग पहुँचते हैं।

साल के इन विशिष्ट पर्वों के अतिरिक्त हमारी संस्कृति में प्रायः सभी तिथियां कोई न कोई पर्व हैं। इसका कारण यही है कि प्रत्येक दिन ही नहीं प्रत्येक क्षण वैदिक विज्ञान के अनुसार सूर्य-चन्द्र तथा ग्रह-उपग्रहों के द्वारा मनुष्य पर पड़ने वाले प्रभाव का विशिष्ट समय हो जाता है। संस्कृति की प्राचीनता के कारण एक एक दिन

कई कई ऐतिहासिक घटनाओं का स्मारक बन गया है। देवता-वाद के आधार पर भी कोई दिन ऐसा नहीं जाता, जिसका किसी देवता के साथ सम्बन्ध न हो। आयुर्वेद तथा काम-विज्ञान की रीति से भी प्रत्येक दिन स्त्री और पुरुष के लिये विशेष तथा नवीन अवस्था का होता है, जिसका सीधा सम्बन्ध चांद्रमस सोम-तत्व से रहता है, इसलिये मनुष्य के लिये प्रत्येक दिन एक विशेष अवस्था का पर्व ही होता है।

हिन्दू-समाज की प्रचलित १५ तिथियों में सभी कई प्रकार के पर्व हैं। उन प्रकारों में एक साधारण प्रचलित प्रकार यह है :—

अमावस्या—पितरों की, प्रतिपदा–ब्रह्मा की, दूज–अश्विनीकुमारों की, तीज—गौरी की, चौथ—गणेश की, पंचमी—नागों की, छठ—स्वामि कार्तिक की, सप्तमी—सप्त ऋषियों की, नवमी—दुर्गा की शक्तियों की, दशमी—कुलदेवों की, एकादशी—विष्णु की, द्वादशी—बामनावतार की, त्रयोदशी—महादेव की, चतुर्दशी—नृसिंह की तथा पूर्णिमा—चन्द्रमा की होती है।

ऊपर जितने पर्व गिनाये गये हैं, समग्र हिन्दू-समाज में वे चलते हैं। भेद सिर्फ इतना है कि कहीं कहीं कोई पर्व विशेष विकसित रूप में मनाया जाता है और कहीं कहीं वह उतना विकसित नहीं है। देश, काल और वायु, जल तथा भाषा के भेद से विधियां भी पृथक सी जान पड़ती हैं; परन्तु सांस्कृतिक आदर्श सामूहिक रूप से एक ही है। उदाहरणार्थ हम देखते हैं कि चैत्र शुक्ला तृतीया को हमारे मारवाड़ी समाज में "गनगौर" का पर्व कहा जाता है। इस अवसर पर सब सुहागिन स्त्रियां शिव-पार्वती की मूर्ति बनाकर पूजती हैं, समारोह में दान-पुण्य और गान आदि करती हैं। सद्यः विवाहिता ललनाओं के लिये "गनगोर" विशेष अभिलाषा का पूजन माना जाता है, जब कि उत्तर भारत के हिन्दूवर्गों में यह पर्व वैसे समारोह के साथ नहीं मनाया जाता और वहां भाद्रपद शुक्ला ३ को "कजली तीज" नाम से "गनगौर" के समकक्ष मानकर पूजा होती है, फिर भी मारवाड़ में कजली तीज या हरतालिका व्रत से तथा उत्तर भारत में चैत्र शुक्ला ३ के गौरी-पूजन से कोई हिन्दू ललना अनभिज्ञ नहीं है, अंशतः पूजन सर्वत्र होता है।

व्रत और पर्व का महत्व

हमारे यहां जितने भी पर्व प्रचलित हैं, उनमें भिन्न भिन्न प्रकार के सूप-शास्त्र, पक्वान्न विधि की व्यवस्थायें दी गई हैं, जिनका विस्तृत और साङ्गोपाङ्ग वर्णन, उनका कार्यकारण और उद्देश्य तथा उनका इतिहास पुराणों में अंकित है जिसके सम्यक (एक स्थलीय अथवा एकाङ्गीय नहीं) पठन-पाठन से पर्वों के कार्य-कारण का यथार्थ परिचय प्राप्त होता है।

अपने अनेकों पर्वों के अवसर पर व्रत आदि रखने का विधान है। कोई व्रत निराहार और निर्जल तथा कोई फलाहार युक्त बनाये गये हैं। व्रतों का विधान औषध तथा शरीर विज्ञान के विचार से, मानसिक स्थिति को शान्त, स्वस्थ और विलव हीन रखने के लिये रखा गया है तथा उसके अधिकारी की व्याख्या भी सर्वत्र स्पष्ट कर दी गई है अतएव सब समय सबके लिये व्रत रहना कदापि अनिवार्य नहीं है। आजकल पर्वों का विकृत रूप, व्रतों की व्यापकता आदि तथाकथित प्रगतिशील आदमियों की आलोचना का विषय बन रहे हैं। हम मानते हैं कि इस प्रकार की धांधांगर्दी आलोचना का विषय है, परन्तु उसके मौलिक उद्देश्य को न समझ कर की जाने वाली आलोचना का कोई अर्थ ही नहीं होता। विकृत रूप में ही सही, हमारे पर्व उसी रूप में जीवित तो हैं, हमारा वीर-पूजा का आदर्श तो क़ायम है, इसी प्रकार दानपुण्य, नियम संयम-व्रत और गंगा स्नान के उल्टे सीधे रूप से हिन्दुत्व का एक अस्तित्व तो बना ही हुआ है, और सच पूछिये तो "अकरणात् मन्द करणं श्रेयम्" (Some thing is better than nothing) के ही न्याय से हजारों वर्षों तक आपदाओं से टक्कर लेती हुई हिन्दू संस्कृति आज भी क़ायम है अतएव जो लोग अपनी संस्कृति के मौलिक आदर्श और तत्व की जानकारी नहीं रखते उन्हें न तो हमारी रूढ़ियों, प्रचलनों, व्रतों और पर्वों की आलोचना करने का ही अधिकार है और न उनके सुधार का ही, क्योंकि जिसे मूल का ही ज्ञान नहीं वह सुधार क्या करेगा? जो लोग विशाल-हिन्दुत्व के विषय में कुछ भी ज्ञान न रखते हुए भी व्रत, पूजा, पर्व, गंगास्नान, श्राद्ध-तर्पण, यज्ञ हवन और दान-पुण्य के कामों की आलोचना करते हुए इन्हें व्यर्थ बताकर सर्व-साधारण श्रद्धालु और विश्वासु जनता

को भ्रम में डालकर उन्हें पथ भ्रष्ट करते हैं, वस्तुतः वे समाज के घोर शत्रु हैं। संसार की गति कुछ ऐसी विचित्र है कि प्रत्येक वस्तु या विषय के विकास के साथ—जो प्रारंभ में नितान्त शुद्ध होता है—उसकी विकृति भी प्रारंभ हो जाती है। हम देखते हैं कि हिन्दू-संस्कृति के बहुत से ऐसे मत और सम्प्रदाय, केवल १०० या ५० वर्ष के भी पुराने नहीं होने पाये कि वे विकृत हो गये। कोई सिद्ध संत महात्मा जिस विशाल ज्ञान और अनुभव के आधारपर अपना पंथ चलाता है, उसके सर्व साधारण अनुयायी तो उस हद तक ज्ञानवान और क्रियावान नहीं होते, उनमें से बहुसंख्यक वर्ग केवल निष्ठा और विश्वास के ही कारण उस पंथ का अनुयायी कहलानेका अधिकारी हुआ करता है। महात्मागांधी के राष्ट्रवाद तथा उनके अहिंसा-दर्शन को आज के गांधी युग में कितने आदमी यथार्थ रूप से समझते हैं? कितने आदमी राष्ट्रवाद के सच्चे अर्थ को जानकर तदनुकूल आचरण करते हैं? फिर भी आज देश के अन्दर लाखों आदमी गांधी-वादी और राष्ट्र-वादी कहे जाते हैं। राष्ट्रीय संग्राम में सब से अधिक काम करने वाला बहुसंख्यक स्वयं-सेवक वर्ग केवल लक्षण के आधार पर ही, केवल अंध विश्वास के ही कारण राष्ट्रीय संस्कृति का महत्व पूर्ण अङ्ग माना जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि लाखों और अरबों वर्ष की प्राचीन हिन्दू-संस्कृति में भी विकृति का उत्पन्न होना स्वाभाविक है, फिर भी यत्किंचित् लाक्षणिक भाव भी उसका सम्माननीय और गौरव की ही चीज़ है और उसी साधारण भाव की सीढ़ी से आगे बढ़ कर साधारण से साधारण आदमी को उच्च से उच्च धार्मिक-ज्ञान की सिद्धि प्राप्त होते हुए देखा जाता है।

हमारा तात्पर्य यह है कि समाज के अन्दर यदि किसी को धर्म-विश्वास, संस्कृति और आचार विचार के संबन्ध में दोष दिखाई देते हैं, तो वह स्वयं अपने ज्ञान से, अपने कार्य से और अपनी विशुद्धता से स्वयं एक आदर्श बन सकता है; परन्तु उसे यह अधिकार नहीं है कि वह स्वयं को ऊंचा उठाये बिना साधारण श्रद्धालु जनता को उसके स्वाभाविक आचार से विचलित करने का अपराध करे।

अन्त में अपने समाज के पर्व त्योहारों का प्रकरण समाप्त करते हुए हम यह कहेंगे कि अपने हर एक पर्व के प्रति हमें आकृष्ट होकर उसके रहस्य का ज्ञान प्राप्त

करने की एकान्त आवश्यकता है, हमें सतर्क हो जाना चाहिए कि पर्वों के प्रति उदासीन रहकर अपने किसी भी वीर (Hero) की स्मृति पर परदा न पड़ने पावे। हमें इस बात को हृदयंगम करना चाहिए कि जो जाति अपने पर्वों को जितने ज्यादा उत्साह से मनाती है, अपनी वीरं-पूजा की साधना में वह उतनी ही प्रगति शील होती है और फलस्वरूप वह उतनी ही जाग्रत और सजीव होती है।

"क्रमशः क्रमशः घटनाओं की,—
बन जाती एक कहानी।
पूर्व-स्वरूप बनाकर वह,
रह जाती एक निशानी ॥"

परिच्छेद ७

सार्वजनिक संस्थायें तथा औद्योगिक प्रतिष्ठान

आधुनिक युग में राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों की उन्नति और प्रगति संस्था के रूप से ही सम्भव मानी जाती है। "संघे शक्तिः कलौयुगे" के रूप से भारतीय आदर्श में भी संस्था और सङ्घ की महत्ता स्वीकार की जाती है। राजनीतिक जागरण की लहर में पड़ कर देश की सामाजिक अवस्था में भी लहरें उठीं अतएव मारवाड़ी समाज में भी अनेकों सामाजिक संस्थायें गठित की जा चुकी हैं। व्यापारिक और औद्योगिक क्षेत्रों में भी संस्थानों की शैली में व्यापक संगठन के आधार पर परिवर्तन हुआ है।

कुछ विशेष दोष

अपनी सामाजिक संस्थाओं का परिचय उपस्थित करने के पूर्व हमें संस्था के गठन, उसके उद्देश्यों का निर्धारण और उसकी पूर्ति, उसके सफल सञ्चालन तथा उसे अजर अमर बनाने आदि के प्रश्न पर उपस्थित होने वाली कुछ बाधाओं पर प्रकाश डालने की आवश्यकता मालूम होती है। अन्य वर्गों की अपेक्षा हमारा समाज औद्योगिक और आर्थिक रूप से अधिक क्षमता वाला है, इसलिये प्रायः ऐसा देखा जाता है कि संस्थाओं का गठन होने में देर नहीं लगती—फिर भी संस्थाओं के यथा-वत सञ्चालन का कार्य बड़ा ही असन्तोषप्रद रहता है।

संस्थाओं की ऐसी दुर्गति का प्रधान कारण यह है कि संस्था के उद्देश्य की महत्ता पर ठंढे दिल से विचार करने की किसी को फुरसत नहीं रहती और इसी

कारण से निःस्वार्थ और निष्कपट कार्यकर्त्ताओं का अभाव बराबर बना ही रहता है। संस्था के उद्देश्य को लेकर उसके सामूहिक हित-साधन का कार्य असम्भव बन जाता है तथा उसमें वैयक्तिक स्वार्थ और पदलोलुपता आदि के ऐसे दुर्गुण पैदा हो जाते हैं कि उनके कारण संस्था की जीवित अवस्था भी उसकी मृत्यु के तुल्य बन जाती है।

अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि समाज की कई एक सुदृढ़ और विशाल संस्थाओं के अन्दर भी दिन-रात धांधा-गर्दी ही चला करती है। वैयक्तिक प्रभाव बढ़ जाने से समस्त कर्मचारी वर्ग संस्था का सेवक और सहायक न रहकर व्यक्ति-पूजक ही बन जाता है, जिसका फल यह होता है कि संस्था के समक्ष महान उत्तरदायित्व का समय आने पर खर्च तो लाखों रुपये तक का हो जाता है, परन्तु ठोस कार्य बिल्कुल ही नहीं हो पाता।

दूसरा कारण है सार्वजनिक संस्थाओं के धन के व्यय की विशृङ्खल शैली। संस्थाओं के कोष को खर्च करने की कोई अर्थ-शास्त्र सम्मत विधि नहीं होती अतएव मुफ्त या हराम की रक़म समझ कर उसको खर्च किया जाता है, जिसका फल यह होता है कि संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति की दिशा में उसका धन अंश मात्र भी खर्च न होकर व्यर्थ की मदों में तथा वैयक्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति में ही खर्च होता रहता है। दूसरी ओर संस्था के नाम पर भी कलंक आता है और उसकी खिल्ली उड़ाई जाने लगती है तथा उस पर से जनता का विश्वास भी उठने लगता है।

"चन्दा"

चन्दा का नाम भी आजकल एक विशेष महत्वपूर्ण विषय बन गया है। आम तौर पर हमारे समाज के आदमी चन्दा वसूल करने वालों का मुंह देख कर या उनका नाम सुन कर ही चंदा देते हैं। यदि चंदा मांगने वालों में २-४ बड़े आदमी होते हैं, तो बड़ी निश्चिन्तता के साथ मारवाड़ी भाई चन्दा दे देते हैं, भले ही एकत्र होकर वह चन्दे की रक़म किसी संस्था के शुभ कार्य में न लगे। यदि चन्दा मांगने वाले आदमी साधारण होते हैं, तो उन्हें कोई चन्दा देने के लिये तैयार नहीं होता। यदि कोई देता भी है, तो बहुत कम ही देता है, भले ही गरीब चन्दा मांगने वाले आदमियों की कर्तव्य-परायणता सुनिश्चित हो। इस प्रकार चन्दे की प्रणाली से

संस्थाओं के कार्य को ठीक ठीक चलाने की आवश्यकता अपूर्ण ही रह जाती है। इसके अलावा चन्दे का सब से घातक प्रभाव यह होता है कि सर्वसाधारण चन्दे के रूप में कुछ सिक्के या नोट देकर अपने को सब जिम्मेदारियों से मुक्त समझ लेते हैं, जब कि आवश्यकता इस बात की है कि समाज का प्रत्येक आदमी संस्था को भरसक क्रियात्मक सहयोग प्रदान करे।

उपर्युक्त दोषों के प्रतिकार की प्रबल आवश्यकता है, जिसके लिये मुख्य प्रश्न है सामाजिक सेवा-भाव की प्रबलता तथा सक्रिय-योग-दान का। संस्थाओं की उपादेयता के प्रति जैसी कुछ उदासीनता हमारा समाज दिखला रहा है, वह बड़ी भयङ्कर है। आये दिन नित्य नई बाधायें हमारे सामाजिक जीवन के विरुद्ध उठ रही हैं और उनका भीषण फल भी हमें भोगना पड़ रहा है, इसलिये अब एक भी क्षण हमारे लिये ऐसा नहीं कि हम अपनी सामाजिक संस्थाओं के सक्रिय-योगदान के प्रश्न पर उदासीन रहें। बालक-वृद्ध और युवा सभी प्रकार के पुरुषों के सक्रिय सहयोग पर ही संस्थाओं का कार्य सच्चे अर्थ में सिद्ध होकर हमें विनष्ट होने से बचायेगा और यदि यह न हुआ तो लाखों और करोड़ों रुपये का चन्दा अथवा घूस प्रतिदिन देते रहने पर भी हमारा अस्तित्व नहीं बच सकेगा।

उपर्युक्त दोषों के होते हुए भी हमारे समाज में संस्थाओं की उपयोगिता का मर्म समझने की प्रवृत्ति जोर पकड़ रही है और स्थान स्थान पर विविध संस्थायें खुलती चली जा रही हैं। मारवाड़ी वर्ग द्वारा सञ्चालित और पोषित प्रमुख सामाजिक संस्थाओं का कुछ परिचय यहां दिया जाता है।

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी

संसार के समक्ष मारवाड़ियों का मस्तक ऊंचा करने वाली इस संस्था का जन्म कलकत्ता में २ मार्च सन १९१३ ई० रविवार के दिन हुआ था। इस संस्था के जन्मदाता का गौरव श्री ओंकारमल सराफ को प्राप्त है।

फरवरी १९१३ में कलकत्ता के क्रास स्ट्रीट में एक कोठी बन रही थी। दिन के ११ बजे के लगभग हनुमान बख्श अग्रवाल नामक एक मारवाड़ी बालक उधर से निकला, तो उसके ऊपर एक बड़ा सा काठ उसी इमारत पर से गिरा फलतः बालक के

गले की हड्डी टूट गई और वह बेहोश हो गया। एक हलचल सी मच गई, सब की कामना यही थी कि जल्द से जल्द कोई डाक्टर या चिकित्सक बुलाकर बालक को आरोग्य लाभ कराया जाय अथवा बालक को ही जल्द से जल्द किसी चिकित्सालय में पहुंचाया जाय। परन्तु काफी देर तक प्रयत्न करने पर भी वैद्य और डाक्टर न मिल सका, और न मोटर आदि गाड़ियों की ही तत्काल व्यवस्था की जा सकी, क्योंकि उस जमाने में न तो इतने अधिक डाक्टर वैद्य या अस्पताल ही थे और न यातायात के मोटर आदि साधन ही अधिक थे।

श्री ओंकारमल सराफ भी इस दारुण दृश्य को मार्मिक व्यथा के साथ देख रहे थे। उस समय उनकी अवस्था २० वर्ष से अधिक नहीं थी। आपने उस समय की असहाय अवस्था से द्रवीभूत होकर दृढ़ निश्चय किया कि अवश्य ही एक ऐसी संस्था बनानी होगी, जहां २४ घंटे चिकित्सा आदि का द्वार खुला रहे। अपने अध्यवसाय तथा श्री सेठ जुगुलकिशोर जी बिड़ला, सेठ किशनलाल जी पचीसिया, श्री हरषचन्द जी मेहता आदि लोगों के सहयोग से ओंकारमल का निश्चय सार्थक हुआ और २ मार्च १९१३ को "मारवाड़ी सहायक समिति" नाम से यह संस्था गठित हो गई। इसकी सबसे पहली बैठक काटन स्ट्रीट की जोड़ा कोठी में हुई।

सोसाइटी का उद्देश्य

इस महती संस्था के उद्देश्य में सेवा की निम्नलिखित बातें रखी गई हैं :—

१—शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिये सर्वसाधारण की सहायता।

२—स्कूल, कालेज, वाचनालय, आदि की स्थापना कर जनसाधारण में शिक्षा का प्रचार करना।

३—मेला आदि के अवसरों पर यात्रियों और भूले-भटके अनाथ यात्रियों, स्त्री-बच्चों की रक्षा और सेवा करना।

४—जनसाधारण की स्वास्थ्य रक्षाके लिये (क) आरोग्यभवन आदि की स्थापना (ख) दातव्य अस्पताल और औषधालयों की संस्थापना तथा (ग) विज्ञापन, हैंडबिल और छायाचित्र द्वारा तथा छोटी छोटी पुस्तिकायें छपाकर जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करना।

५—बाढ़, दुर्भिक्ष, महामारी आदि दैवी विपत्तियों से पीड़ित जनता की रक्षा, सेवा और सहायता करना ।

६—विशुद्ध आयुर्वेदिक औषधियों को शास्त्रोक्त पद्धति से तैयार करवाकर सुलभ मूल्य में विक्रय करना ।

रानीगंज, रांची और रतनगढ़ में भी कार्यकर्ताओं के अथक उद्योग से "मारवाड़ी सहायक-समितियां" गठित हुईं । रांची और रतनगढ़ में यह संस्थायें अभी भी अपने उसी नाम से चल रही हैं । उन्हीं दिनों श्री गोपालकृष्ण गोखले कलकत्ते आये और उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के पीड़ित भारतीयों की सहायता के लिये अपील की । इस संस्था द्वारा श्री गोखले को सम्यक् सहायता प्रदान की गई ।

उसी वर्ष अगस्त के महीने में वर्द्वान जिले में महाभयंकर बाढ़ आई । सोसाइटी के अनेकों कार्यकर्ताओं ने पूरे उत्साह के साथ बाढ़-पीड़ित स्थलों में सेवाकार्य शुरू किया, जिसके सिलसिले में संस्था के २० हजार रुपये खर्च हुए तथा एक युवक कार्यकर्त्ता की प्राण-हानि भी हुई ।

सन् १९१४ ई० में जब प्रथम जर्मन महासमर छिड़ा, तो अंगरेज़ों ने युद्ध की सहायता के लिये "इम्पीरियल रिलीफ फण्ड" खोला । सोसाइटी ने उक्त फण्ड में यथाशक्ति सहायता पहुँचाई ।

उन दिनों हमारे देश में मज़दूरों के हित में एक ऐसी घातक प्रथा प्रचलित थी कि उनसे शर्तें लेकर उन्हें द्वीप द्वीपान्तर में कुली का काम करने के लिये भेज दिया जाता था, जहां से स्वदेश वापस आना उनके लिये टेढ़ी खीर बन जाता था । सोसाइटी ने उस ओर भी अपना कार्य शुरू किया और हजारों मज़दूरों को मार्ग-व्यय देकर, समझा-बुझाकर स्वदेश लौटाया गया । इस कार्य में स्वर्गीय श्री श्रीराम तिवारी तथा श्री देवीवख्शजी सराफ का परिश्रम विशेष उल्लेखनीय रहा ।

इस समय से हरद्वार कुम्भ मेला, गंगासागर मेला, राजपूताने में शिक्षा-प्रचार, गोखले-स्मृति की पाठशालायें, राजपूताना, हिसार, त्रिपुरा आदि का अकाल सन् १९१५, चूरू और झुंझुनू की गोशालाओं की सहायता, आदि विषयों में इस संस्था ने सरगरमी के साथ लाखों रुपये खर्च करते हुए सेवाकार्य करना प्रारम्भ किया । सन्

१९१६ ई० में यह संस्था सरकार के कोप का शिकार बनो और इसके कई कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर लिये गये। संकट के इन दिनों में सर कैलाशचन्द्र बोस इस संस्था के अध्यक्ष बनाये गये और उन्होंने सबसे पहले इस संस्था का नाम "मारवाड़ी सहायक समिति" से बदल कर "मारवाड़ो रिलीफ सोसाइटी" कर दिया।

इस समय के बादसे सोसाइटी ने निम्न लिखित अवसरों पर करोड़ों रुपये के व्यय तथा जन-सहायता द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है :—

उड़ीसा और सम्बलपुर की बाढ़ सन् १९१८ ई०, आसाम के चाय-बगानों की मजदूर हड़ताल सन् १९२१ ई०, कुरुक्षेत्र में सूर्य-ग्रहण का मेला सन् १९२२ ई०, ब्रह्मपुत्र की बाढ़ सन् १९२२ ई०, आउटरम-घाट कलकत्ता के अनाथ सैनिकों की सहायता सन् १९२२ ई०, कलकत्ते में प्लेग सन् १९२३ ई०, मालावार की बाढ़ १९२४, कोहाट का दंगा १९२४, अलवर और जयपुर के बांधों के टूटने से उपस्थित बाढ़ १९२४, मथुरा की बाढ़ १९२४, उड़ीसा की बाढ़ १९२५ ई० (सन् १९२६ ई० में सोसाइटो को "इण्डियन कंपनीज़ ऐक्ट १९१३" के अन्तर्गत रजिष्ट्री कराई गई), उड़ोसा की बाढ़ १९२७ ई०, बंगाल का दुर्भिक्ष सन् १९२७ ई०, आसाम, बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा और संयुक्त प्रांत आदि में बाढ़, दुर्भिक्ष और महामारी के उपद्रव सन् १९३१ ई०, गाई-बांधा, टिपरा और बोगरा की बाढ़ १९३१ ई०, चटगांव का दंगा १९३१ ई०, चम्पारन का अकाल तथा आसाम की बाढ़ १९३१ ई०, मटियाबुर्ज के मज़दूरों की दशा का सुधार, बांकुड़ा में मलेरिया का प्रतिकार सन् १९३२ ई०, बेलडांगा का दंगा सन् १९३३ ई०, रोहतक और गुड़गांव की बाढ़ १९३३ ई०, बिहार का भूकम्प १९३४ ई०, (जनवरी) आसाम, उड़ीसा, गोरखपुर और बलिया आदि की बाढ़ १९३४, क्वेटा का भूकम्प ३१ मई सन् १९३५ (रात के ३ बजे), बर्दवान जिले में दामोदर नदी को बाढ़ १९३५, बीरभूमि का दुर्भिक्ष, गोरखपुर, जमालपुर, दिघवारा, छपरा और बलिया की बाढ़, मेदिनीपुर का दुर्भिक्ष, रक्सौलका अग्निकांड १९३६ ई०, उड़ोसा और गाजीपुर की बाढ़ १९३७ ई०, राजपूताने का अकाल १९३८ ई०, कलकत्ते की भगदड़ सन् १९४१ ई०, कलकत्ते और बंगाल का मानवकृत दुर्भिक्ष तथा बम-वर्षा सन् १९४२, १९४३ तथा १९४४ ई०, अगस्त १९४६ ई०, का कलकत्ते का दंगा।

इस संस्था का कार्यालय ६ जुलाई १९१३ से ४२।२ बांसतल्ला में ४५) मासिक भाड़े के मकान में खोला गया था, सन् १९१४ ई० के उत्तरार्ध समय में, कार्य बढ़ जाने से संस्था ७।१ जगमोहन मल्लिक लेन में हटाई गई और अन्त में ७ मई सन् १९३८ ई० को श्री सुभाषचंद्र बोस द्वारा ३९१, अपर चितपुर रोड स्थित वर्तमान "मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी-भवन" का उद्घाटन किया गया।

इस संस्था द्वारा दातव्य औषधालय, नाक कान, और गले की चिकित्सा का विभाग, प्रयोग शाला, दन्त चिकित्सालय, अस्त्र चिकित्सालय, विद्युत-चिकित्सालय, रसायन शाला, पापड़ विभाग, शिक्षा विभाग, सुलभ खाद्य वस्तु प्रचारक विभाग, स्वास्थ्य-प्रचार विभाग, बनौषधि विभाग, यक्ष्मा सैनिटोरियम (रांची) विभाग जैसे प्रचुर-व्यय साध्य संस्थान संचालित किये जाते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि "मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी" जैसो संस्था के कारण भारतीय मारवाड़ो समाज का मस्तक ऊंचा उठा हुआ है। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि इस संस्था के कार्य संचालन में हमारे समाज के अनेक धनीमानी सज्जनों ने तथा अनेक नौजवानों ने आदर्श और अदम्य उत्साह के साथ काम किया है, परन्तु आज संस्थाकी दशा तथा उसकी संचालन शैलीमें कुछ दोष देखकर भी बड़ा दुःख होता है। आजकल इस संस्था का मुख्य और महाभयंकर दोष है, इसके कार्य-कर्ता तथा संचालकों का अभिमान ! यह वह चीज़ है जिसके आसन्न-पृष्ठ पर पतन की गहरी खाई छिपी रहती है। सेवा भाव विलीन सा मालूम होता है, व्यक्ति और प्रभाव की पूजा अधिक है, किसी भी विभाग में साधारण आदमी की कोई भी पीड़ा और कोई भी पुकार या फरियाद कम सुनी जाती है। दातव्य औषधालयों की तथाकथित सेवायें धोखे की चीज़ बन गई हैं। अगस्त १९४६ के दंगे के समय जो "डिफेंस कमेटी" इस संस्था की ओर से बनाई गई उसमें कार्य-कर्ताओं की महानता और बड़प्पन के कारण चंद महीनों में लाखों रुपये तो खर्च हो गये और ठोस काम अन्य समाज के जैसे कुछ भी न बन पड़ा।

मातृ-सेवा-सदन (कलकत्ता)

१ जुलाई सन् १९३७ ई० को स्व० सेठ जमनालालजी बजाज की धर्मपत्नी श्री-

मती जानकी देवी बजाज के कर कमलों द्वारा २।१ ब्रजोदलाल स्ट्रीट (विवेकानंद रोड) कलकत्ता में इस संस्था का उद्घाटन किया गया। इस संस्था द्वारा केवल महिलाओं और बच्चों का इलाज किया जाता है। इसका प्रबंध एक ट्रस्ट के मातहत है।

सेवा-सदन में एक चिकित्सालय तथा एक प्रसव-गृह है। "इनडोर" प्रसव-गृह में २५ सीटों की व्यवस्था है। आउट डोर डिस्पेन्सरी में यावत महिलाओं और बच्चों की परीक्षा करके उन्हें दवा दी जाती है। अपने क्षेत्र में अपनी शक्ति भर यह संस्था महिला समाज की पूरी सेवा कर रही है; परन्तु इसे योगदान देकर इसका क्षेत्र और अधिक विस्तृत करने की प्रबल आवश्यकता है।

मारवाड़ी आरोग्य-भवन, राँची

वर्तमान समय में समाज के स्वास्थ्य लाभ के लिये राँची में जसीडीह की तरह एक आरोग्य भवन खोला गया है। प्रारंभ में यह भवन वहाँ के सेठ चुन्नीलालजी गनपतराय का था, किन्तु उन्होंने इस उद्देश्य से कि इस भवन का संचालन सुचारु रूप से हो सके और जनता इससे अधिकाधिक लाभ उठा सके। मय मकान और २२ बीघा ज़मीन तथा बँगले आदि सब सम्पत्ति कलकत्ता की मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी को प्रदान कर दिया।

श्री हिन्दू बाल-सभा दार्जिलिङ्ग

मारवाड़ी बालकों की गिरी हुई दशा की ओर ध्यान रखकर इस बालोपयोगी संस्था की स्थापना सन् १९३५ ई० में हुई, जो मारवाड़ी बालकों की सतत सेवा करती हुई चली आ रही है।

मारवाड़ी छात्र संघ-कलकत्ता

यह संघ अतीत और वर्तमान के विद्यार्थियों के सम्मेलन और पारस्परिक मिलन के उद्देश्य से कायम हुआ था। हर्ष की बात है कि इसके सदस्यों की संख्या प्रति दिन बढ़ती ही जा रही है। इस संघ का कोई भी सदस्य मैट्रिक पास अथवा हिन्दी विशारद परीक्षा पास अथवा संस्कृत की कोई पद-परीक्षा पास व्यक्ति हो सकता है।

संघ का उद्देश्य निर्धन विद्यार्थियों की सहायता करना है। संघ के तत्वावधान में विद्वान व्यक्तियों के भाषण कराये जाते हैं और बड़ा बाजार क्षेत्र में यह संघ ही ऐसी संस्था है, जो जनता की आवश्यक सेवा कर रही है। संघ में पुस्तकालय भी है, जहाँ पर हिंदी, बँगला और अँग्रेजी की पुस्तकों का एक विशाल भंडार है।

हिन्दी साहित्य-समिति पुस्तकालय, कटक

उड़ीसा प्रांत के हिंदी सीखे हुये बन्धुओं के लिये सर्वश्री चिरंजीलाल सूरेका के परिश्रम से ता० १-६-३८ को इस पुस्तकालय की स्थापना हुई, जिसमें कलकत्ते के श्रीमान सेठ सूरजमलजी नागरमलजी, श्री श्यामदेवजी देवड़ा व श्री रंगलालजी मोदी आदि की सहायता से इसमें पुस्तकें पर्याप्त संख्या में हैं और दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्र पत्रिकायें भी आती हैं।

श्री माहेश्वरी विद्या-प्रचारक मण्डल, पूना

इस संस्था का उद्‌घाटन दक्षिण भारत की सुप्रसिद्ध फर्म सेठ दयारामजी सूरज मलजी लाहोटी के मालिक श्री वेंकटलालजी लाहोटी के कर कमलों से ता० ६ अप्रेल १९४१ ई० को हुआ।

मारवाड़ी नवयुवक संघ, धनबाद

इस संघ को स्थापित हुये कई वर्ष व्यतीत हुये। इसमें पुस्तकालय स्वास्थ्य (व्यायाम) शिक्षा, सेवा, मनोरंजन, सामाजिक एवं धार्मिक विभाग हैं, जो यथाशक्ति अपना काम जोरों से कर रहे हैं।

कुष्टिया सेवक-संघ

यह संघ कुष्टिया के मारवाड़ियों एवं कतिपय अन्य वर्गों के सहयोग से चल रहा है। संघ के सदस्यों की संख्या पर्याप्त है एवं संघ द्वारा निम्नांकित विभाग संचालित किये जाते हैं :—

१ व्यायाम शाला—साधनों से पूर्ण मैदान में नदी तट पर निर्मित है। इसमें सदस्यों की संख्या लगभग ५० है।

२ लाइब्रेरी—पुस्तकों की संख्या लगभग १००० है और अखबार भी आते हैं। रोज़ आने वालों की संख्या भी अधिक है।

३—हरिजन पाठशाला—इसमें आनेवाले छात्रों की संख्या काफी है और पुस्तकों का भी अच्छा प्रबन्ध है ।

४—सेवा समिति—लगभग ५० स्वयंसेवक हैं जो सदैव सेवाकार्य में संलग्न रहते हैं ।

श्री जैनरत्न विद्यालय भोपालगढ़ (मारवाड़)

भोपालगढ़ और उसके आसपास की सुशिक्षा के लिये इसकी स्थापना १५ जनवरी सन् १९२९ में हुई । इसने जैन संस्थाओं में एक उच्च आदर्श स्थान प्राप्त कर लिया है । इससे कई छात्र उच्च परीक्षायें पास कर चुके हैं । छात्रों के लिये छात्रालय का भी प्रबन्ध है । इसमें औषधालय व छात्रों के लिये व्यायाम आदि का भी अच्छा प्रबन्ध है ।

श्री मारवाड़ी छात्र-संघ, गोरखपुर

मारवाड़ी छात्रों के उत्साह से स्थापित एक अच्छी संस्था है । इसको संस्थापित हुए कई वर्ष व्यतीत हो गये हैं । मारवाड़ी समाज की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, व्यवसायिक, शारीरिक और साहित्य विषय की उन्नति करना ही इसका मुख्य ध्येय है । इसने अपनी एक शाखा 'मारवाड़ी व्यायामशाला' नाम से खोली है जिसमें उत्साही सदस्यों को व्यायाम की शिक्षा दी जाती है । इसके छात्र समाज सेवा का सुन्दर स्वरूप समुपस्थित करने वाले हैं ।

मारवाड़ी युवक क्लब, देहली

इस संस्था की स्थापना युवकों में संगठन, जागृति, वाक्शक्ति एवं सुयोग्यता पैदा करने के लिये की गई । इसमें नियमित रूप से सदस्यों में बहस हुआ करती है । यहां पर खेल खेलने का भी प्रबन्ध है ।

मारवाड़ी यंगमैंस एसोसियेशन, देहली

इस संस्था को स्थापित हुए कई वर्ष बीत गये । स्थानीय मारवाड़ी समाज में जो सुधार हुये हैं और जागृति हुई है वह इस संस्था के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष उद्योग का ही परिणाम है ।

राजस्थान बालिका विद्यालय, वनस्थली

श्री राजस्थान बालिका विद्यालय वनस्थली को स्थापित हुये कई वर्ष हो चुके। वनस्थली जयपुर राज्य में नवाई स्टेशन से लगभग ५ मील की दूरी पर एक छोटा सा ग्राम है। यहां पर सभी जातियों की लड़कियों के पढ़ने का प्रबन्ध है और इसके अतिरिक्त विद्यालय के लिये प्रत्येक आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध है। यहां पर लड़कियों को गृहकार्य, कला-उद्योग, संगीत, सिलाई आदि की भी शिक्षा दी जाती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इससे निकली हुई लड़की एक सुघड़ और सद्-गृहिणी के साथ-साथ लोक-सेवा की भावना तथा समय पड़ने पर अपने पैरों पर खड़े रहने की क्षमता रखने वाली भी होगी। पं० जवाहरलाल नेहरू ने इस संस्था को देखकर प्रसन्न होते हुए कहा था कि—"यदि मैं लड़की होता तो अवश्य ही बन-स्थली आश्रम में पढ़ता।"

श्री काशी-विश्वनाथ सेवा-समिति

आज से ८ वर्ष पहिले कुछ उत्साही नवयुवकों द्वारा यह समिति स्थापित की गई थी—खासकर इसका उद्देश्य मेला, पर्व, जुलूस, सभा एवं पण्डालों में सर्वसाधा-रण को जल पिलाना और मदद करना है। एक चिकित्सा विभाग भी है जो हर समय सेवा के लिये तत्पर रहता है। हाल के दंगों के समय इस संस्था ने अपनी शक्तिभर जनता की अच्छी सेवा की है।

श्री दिगम्बर जैन महावीर मण्डल, नागौर

समाज सेवा, युवकों में प्रेम संगठन और एकता का प्रचार, सामाजिक कुरीतियों को हटाना एवं ज्ञान प्रचार इस संस्था का प्रधान उद्देश्य है। सर्वसाधारण के लिये एक पुस्तकालय व वाचनालय एवं व्यायामशाला भी स्थापित है।

मारवाड़ी बाल समिति, बराकर

इस समिति की स्थापना ता० १२ फरवरी सन् १९३९ को उत्साही मारवाड़ी बालकों द्वारा हुई। प्रारम्भ में एक पुस्तकालय की स्थापना हुई जो वर्तमान में महावीर पुस्तकालय के नाम से जनता की सेवा कर रहा है। इस समिति का मुख्य

ध्येय मारवाड़ी बालकों में संगठन, शिक्षा का प्रचार, बालकों की शारीरिक, नैतिक अवस्था की उन्नति, समाज में फैली हुई कुरीतियों का नाश, हिंदी भाषा का प्रचार एवं देश और समाज की सेवा करना है। इस समय इसका कार्य अत्यन्त सुचारु रूप से चल रहा है।

मारवाड़ी पुस्तकालय, जलपाईगुड़ी

इस संस्था का जन्म सन् १९३४ में हुआ है। इस पुस्तकालय ने समाज में शिक्षा का प्रचार करने के लिये निरंतर चेष्टा की है। कुछ दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्र भी आते हैं। इसका कार्य अति सुन्दर ढंग से चल रहा है।

मारवाड़ी मर्चेन्ट्स एसोसियेशन, दार्जिलिङ्ग

जून सन् १९३८ में इस संस्था की स्थापना हुई। यह संस्था स्थानीय मारवाड़ी समाज की व्यापारिक एवं सामाजिक सेवा कर रही है।

श्री रामेश्वरदास पोद्दार, पुस्तकालय, बिसाऊ (जयपुर)

सेठ बिहारीलाल जमनादास पोद्दार ने अपने युवक पुत्र स्वर्गीय श्री रामेश्वरदास पोद्दार की स्मृति में यह पुस्तकालय अपनी मातृ-भूमि बिसाऊ में एक भवन बनवा कर सन् १९३८ में स्थापित किया था। पुस्तकालय में २००० से अधिक पुस्तकें हैं। इस पुस्तकालय का ध्येय हिंदी-भाषा को लोकप्रिय बनाना और प्रचार करना है।

श्री वीर अभिमन्यु स्पोर्टिङ्ग क्लब, कलकत्ता

यह संस्था बड़ाबाजार की उन प्रगतिशील संस्थाओं में से है, जिसने भारतीय स्पोर्टस में अपना एक खास स्थान बनाया है। ओलिम्पिक लीग, विक्रम टूर्नामेण्ट आदि में इसने प्रथम स्थान प्राप्त किया है। इसके संस्थापकों और संस्था को इतनी उन्नति शील बनाने का श्रेय वहां के कर्मठ मंत्री श्री केदारनाथ थरड़ को है, जिनके अदम्य उत्साह से क्लब में स्पोर्टस विभाग के अलावा साहित्य, बेकारी निवारण, शिक्षा एवं समाज सुधार के भी सुन्दर कार्य हो रहे हैं।

श्री हनुमान पुस्तकालय, रतनगढ़

शिक्षा समाज का एक बहुत बड़ा अंग है। इस पुस्तकालय का उद्देश्य समाज-

में शिक्षा प्रचार एवं सेवा करना है। इसमें १३०००० पुस्तकें प्रत्येक विषय की हैं। इसमें दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्र पत्रिकाएँ मिलाकर लगभग ६५, ७० आते हैं। इस प्रान्त का यह सबसे बड़ा और एक आदर्श पुस्तकालय है।

हिन्दी छात्र सङ्घ, कटक

इस संस्था का जन्म ता० १९-६-३७ को हुआ। इसका उद्देश्य छात्रों की शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक अवस्था को उन्नत बनाने का है। यह समाज की उन प्रगतिशील संस्थाओं में है, जिन पर समाज का महान उत्तरदायित्व निर्भर है।

श्री मारवाड़ी आयुर्वेद दातव्य औषधालय, कलकत्ता

इस औषधालय की स्थापना बाबू बैजनाथ जी केड़िया के कर कमलों द्वारा हुई। इसका कुल व्यय वे ही प्रदान करते हैं। इस औषधालय से जनता को अत्यधिक लाभ पहुंचता है।

हिन्दी साहित्य समिति, कटक

इस संस्था का जन्म सन् १९३६ ई० में हुआ। इस संस्था का उद्देश्य मुख्यतः जनता को सहायता पहुंचाना है। प्रान्त में सक्रामक रोगों के फैलने के समय इसका काम दवा बांटना है। इसी संस्था के सहयोग से कटक में हिन्दू पुस्तकालय का सञ्चालन हो रहा है, जो उत्कल प्रान्त में सबसे बड़ा पुस्तकालय है।

नवयुवक सेवा-सङ्घ, बालंगीर

पटना स्टेट की राजधानी बालंगीर में ता० १३-३-४१ ई० को इस संस्था की स्थापना हुई। इस संस्था का प्रधान उद्देश्य जनता की सेवा करना और हिन्दी प्रचार का है। इसीलिये सेवा-सङ्घ का एक हिन्दी प्रचार-पुस्तकालय भी है, जिसमें हिन्दी के १७, १८ साप्ताहिक और मासिक पत्र आते हैं। इस संस्था की प्रतिदिन उन्नति होती जा रही है क्योंकि जितना उत्साह यहाँ के युवकों में है उतनी ही सहयोग की भावना यहाँ के वयोवृद्ध सज्जनों में वर्तमान है।

श्री नवयुवक-मण्डल, डिब्रूगढ़

इस सङ्घ की स्थापना ता० १६-११-४१ ई० को हुई। इसका कार्य नवयुवकों में जागृति उत्पन्न कर समाज की सेवा करना है। इसका कार्य अत्यन्त सुचारु रूप से चल रहा है। इसके नवयुवक कार्य क्षेत्र में बड़े उत्साह से कार्य कर रहे हैं।

तरुण सेवादल, बरगढ़

उत्कल प्रान्त में बी० एन० रेलवे के सम्बलपुर स्टेशन से ३० मील की दूरी पर प्राकृतिक सौंदर्य से भरा हुआ बरगढ़ नाम का नगर बसा हुआ है। इस प्रान्त में वर्तमान जागृति का सूत्रपात इसी बरगढ़ से हुआ है। यहाँ का सेवा दल इस प्रांत की एक आदर्श तरुण संस्था है। इसका उद्देश्य युवकों में आत्मसम्मान की भावना जाग्रत करके देश और समाज की सेवा करना है।

तरुण सेवा संघ, बालेश्वर

इस तरुण सेवा सङ्घ का जन्म प्रान्तीय मारवाड़ी कार्यकर्त्ता सम्मेलन द्वारा हुआ है। यहाँ के युवकों का व्यायाम और साहित्य की ओर विशेष आकर्षण है। इन्हीं युवकों द्वारा संस्थापित 'राष्ट्रीय पुस्तकालय' नाम की एक अच्छी लाइब्रेरी है, जिसका कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। इसके युवकों का उद्देश्य जनता में जागृति उत्पन्न कर शिक्षा प्रचार करना है।

मारवाड़ी एसोसियेशन (कलकत्ता)

इस संस्था का कार्यालय १६० ए, चितरञ्जन एवेन्यू कलकत्ता में स्थित है। इसकी स्थापना सन १८९८ ई० में हुई थी। एसोसियेशन का प्रमुख उद्देश्य मारवाड़ी जाति की नैतिक, बौद्धिक, व्यापारिक, आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक स्थिति का सुधार तथा उसे उन्नत करना तथा जातीय अधिकारों तथा जातीय मर्यादा की रक्षा करना है।

एसोसियेशन के सञ्चालकगण बङ्गाल प्रान्त के प्रमुख उद्योग पति तथा बड़े बड़े व्यवसायी हैं। देशी माल को बाहर भेजने वाले व्यापारियों को इसी संस्था द्वारा प्रमाण-पत्र दिये जाते हैं। यह संस्था "इंडियन चैंबर्स आफ कामर्स एण्ड इंडस्ट्रीज़"

की सदस्य संस्था है। "दि जर्नल आफ मारवाड़ी एसोसियेशन" नाम की एक मासिक पत्रिका भी इस संस्था द्वारा प्रकाशित होती है। विधान-परिषद्, बंगाल लेजिस्लेटिव असेम्बली, प्राइस ऐडवायज़री कमेटी बंगाल, काटन क्लाथ एण्ड यार्न कण्ट्रोल एडवायज़री कमेटी बंगाल, बोर्ड आफ एकोनोमिक इंक्वायरी बंगाल, बोर्ड आफ इंडस्ट्रीज़ बंगाल, ई० आई० रेलवे वैगन सप्लाई एडवायज़री कमेटी तथा बी० एन० रेलवे वैगन सप्लाई एडवायज़री कमेटी जैसी संस्थाओं में एसोसियेशन के प्रतिनिधि प्रतिष्ठित हैं। इसके अतिरिक्त इस संस्था के कई प्रतिनिधि गैर सरकारी जेल-निरीक्षकों के पद पर भी प्रतिष्ठित हैं।

महिला-मण्डल उदयपुर

उदयपुर का महिला मण्डल एक सुव्यवस्थित सामाजिक संस्था है। महिला समाज का सर्वतोमुखी विकास इस संस्था का मूल उद्देश्य है। महिलाओं को, विशेषकर विधवाओं को उद्योग धन्धों की शिक्षा देना, रूढ़िवाद को मिटाना, महिलाओं की शिक्षा के लिये पाठशाला तथा पुस्तकालयों की व्यवस्था, बाल विभाग, कौटुम्बिक हेलमेल विभाग, भाषणों की व्यवस्था, अनुचित विवाहों के विरुद्ध लोकमत जाग्रत करना, पोशाक में सुधार करना, मृतक-भोज, रास्तों पर रोते हुए निकलना आदि प्रथाओं को रोकना, अपव्यय को रोकना तथा स्वास्थ्य और सफाई के प्रति रुचि उत्पन्न करना आदि इस संस्था के कार्यक्रम के विषय हैं।

करजी मिडिल स्कूल

करजी बीकानेर का एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। वहां के निवासियों ने तथा खुलना में रहने वाले मूंधड़ा बन्धुओं ने काफी रुपया खर्च करके करजी मिडिल स्कूल की इमारत बनवाई है। इस संस्था द्वारा शिक्षा प्रचार का अच्छा काम चल रहा है। प्रवासी राजस्थानियों के जन्मभूमि प्रेम का यह एक उच्च आदर्श है।

बिड़ला-कालेज, पिलाणी

पिलाणी, उस सुप्रसिद्ध बिड़ला परिवार की जन्मभूमि है, जिसकी सफलता ने देश के कोने कोने में कीर्ति स्तम्भ स्थापित करके मारवाड़ी जाति के मस्तक को गौरव से ऊँचा कर दिया है। पहले पिलाणी एक छोटा सा गांव मात्र था, जिसमें

पक्के मकानों की संख्या बहुत ही परिमित थी, परन्तु अब वैसी बात नहीं रही। अब वहां देखने लायक भव्य भवन तैयार हो गये हैं और प्रत्येक वर्ष उनकी रौनक बढ़ती ही जाती है। वहां के मकानात तैयार करने वाले कारीगरों की करणी कभी बन्द नहीं होती। वह अपना रचनात्मक कार्य करती ही रहती है। एक काम समाप्त नहीं होता कि दूसरा काम आरम्भ कर दिया जाता है, और दूसरा काम शुरू नही होता, इसके पहले तीसरे की स्कीम तैयार हो जाती है। इस प्रकार इस पिलाणी का सम्मान इतना ज्यादा बढ़ गया कि भारत बन्धु स्व० सी० एफ० एण्डरूज, और फेडरल कोर्ट के चीफ जस्टिस सर मारिस गायर सरीखे महानुभावों ने वहां बिड़ला परिवार का आतिथ्य ग्रहण किया और खुले दिल से पिलाणी की प्रशंसा की।

पिलाणी की ख्याति दूर दूर तक फैल चुकी है। शेखावाटी को पिलाणी पर गर्व है और वह भी अवास्तविक नहीं। कहना न होगा कि पिलाणी की इतनी ज्यादा प्रसिद्धि का कारण वहां का बिड़ला कालेज है। कालेज की जीवन धारा ने सारी पिलाणी को जीवन से ओत प्रोत कर रखा है। पिलाणी की महत्तां इस बात में है कि जो स्थान शिक्षा की दृष्टि से एकदम पिछड़ा हुआ है वहां उच्च शिक्षा का सुन्दर प्रबन्ध है, साथ ही जो प्रदेश शुष्क एवं निर्जल है वहां पिलाणी सरस एवं सुजला सफला नजर आती है।

पिलाणी कालेज में आनर्स एवं कामर्स दोनों का पूरा पूरा इन्तजाम है। बाहरी विद्यार्थियों के रहने के लिये चार पांच बड़े बड़े होस्टल हैं। वहां नल और विजली का सुन्दर प्रबन्ध है। विद्यार्थियों का खर्चा अन्य प्रान्तों के कालेजों की अपेक्षा बहुत कम पड़ता है। कुछ होस्टल तो इस प्रकार के भी हैं जहां खर्चा बहुत कम पड़ता है।

खर्चा कम पड़ने के कारण एवं अध्यापन कार्य सुन्दर होने के कारण यहां राज पूताने की भिन्न भिन्न स्टेटों के छात्र तो आते ही हैं साथ ही अन्य प्रान्तों के छात्र भी यहां कम नहीं मिलते। बंगाल, महाराष्ट्र, पंजाब, और यू० पी० यहां तक कि मद्रास के छात्र भी यहां पढ़ने के लिये आते हैं। इस प्रकार पिलाणी को शेखावाटी का गुरुकुल अथवा विद्यापीठ कह सकते हैं। जीवन के विषय में विविध प्रकार के अरमान एव उत्साह लिये हुए छात्रगण यहां पर भविष्य की सुदृढ़ इमारत

खड़ी करते हैं। उनकी उमगों का क्या पूछना। उनके कमरों में जो सिद्धान्त वाक्य लिखे रहते हैं, उनको पढ़ने से पाठक का भी जीवन स्रोत बह चलता है।

आज कल शिक्षा के सम्बन्ध में जितनी बातें इधर उधर सुनाई देती हैं उन सब का मुन्दर समावेश पिलाणी में है। आधुनिक भारतीय विद्यार्थी का स्वास्थ्य बहुत दयनीय मिलता है। छात्र बाहर से कमजोर होकर भीतर से मजबूत बनने की व्यर्थ सी चेष्टा करता है। परन्तु पिलाणी में व्यायाम पर पूरा ध्यान दिया जाता है। खेल प्रत्येक छात्र के लिये अनिवार्य है। फुटबाल, वाली वाल, बास्केट वाल हाकी एवं टेनिस आदि खेल बड़े जोरों से होते हैं। न तो जमीन की कमी है और न खेलने वालों के उत्साह की। ड्रिल के विषय में तो कहना ही क्या! उसका उत्साह तो देखने वालों की नसों में खून दौड़ा देता है। व्यायाम का एक साधन और तैयार हुआ है जिसने पिलाणी को शेखावाटी में बहुत ऊँचे स्थान पर आसीन कर दिया है। यह वहां की नहर है जो करीव ३०-३५ फीट चौड़ी और लगभग ८-९ फीट गहरी है। लम्बाई भी काफी है। नहर गोलाकार पक्की बनी हुई है। बीचके स्थानों में फल पौधे लगे हुए हैं और सबमे बीच में आलीशान कोठी खड़ी है। नहर के पास ही शिवजी की बैठी हुई आठ फीट ऊंची स्मेरमुख मूर्त्ति दिखाई देती है। हर रोज सुबह शाम नहर पर जीवन धारा का जो प्रवाह मिलता है वह अवर्णनीय है। शुष्क भूखण्ड में पानी का ऐसा प्रबन्ध देख कर चित आनन्द से भर जाता है। नहर के पानी से खेतों की सिचाई होती है। इसके दूर दूर तक गेहूं के खेत दिखाई देते हैं।

कालेज की प्रार्थना के साथ साथ बाजा भी बजता है। उस स्थान की शांति एवं गंभीरता तथा प्रार्थना गाने का ढग हृदय को पवित्रता से भर देता है। प्रतिदिन गीता के कुछ चुने हुए श्लोक एव निर्धारित गायन गाया जाता है। आज कल की कालेजी शिक्षा पढ़ना सिखाती है परन्तु हाथ से काम करना नहीं बताती। सौभाग्य की बात है कि पिलाणी कालेज में बुनना, रंगना और सीना सभी काम सिखाये जाते हैं। चमड़े का काम भी काफी सुन्दर होता है। जो लड़के कालेज का खर्चा नही चला सकते वे यहां टोपी बनाकर कमाते हैं।

यहां चारो तरफ सादगी का साम्राज्य दीख पड़ता है। यहां नये ढंग से पढ़ाई होती है। रूई धुनना, सूत कातना और फिर उसका कपड़ा बुनना इत्यादि काम सिखाये जाते हैं।

कालेज के छोटे बच्चे 'बालोद्यान' में पढ़ते हैं। यह 'बालोद्यान' फूल पौधों के कारण, खेलके सामान के कारण एवं परिभाषा के चित्रों के कारण बच्चों को बड़ा प्रिय है। कालेज का Show Room भी देखने लायक है। कालेज के पुस्त-कालय में पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। किताबों की संख्या हर साल बढ़ती ही रहती है।

पिलाणी के अध्यापक बड़े ही नम्र एवं मिलनसार हैं। कालेज के सुन्दर प्रबन्ध का श्रेय यहाँ के प्रिंसिपल महोदय को है।

मारवाड़ी चैम्बर आफ कामर्स

इस संस्था का मूल उद्देश्य देश में व्यापार और उद्योग की प्रगति को व्यापक बनाना, देश के व्यापारिक वर्ग के हितों को सुरक्षित करना, बंगाल के उद्योग, व्यव-साय, उत्पादन तथा कृषि कार्य की रक्षा करना तथा उन्हें उन्नत बनाना, भारतवर्ष में तथा खासकर कलकत्ते में वाणिज्य, व्यवसाय उत्पादन तथा कृषि के कार्य में लगे हुए आदमियों को सफल करना, उनकी सुरक्षा की व्यवस्था करना, उद्योग, वाणिज्य-व्यवसाय, उत्पादन तथा कृषि सम्बन्धी प्रश्नों को हल करना है। कामर्स की ओर से व्यापारिक सौदे में उठने वाले विवादों को पञ्चायती फैसले द्वारा तै कराने का काम होता है तथा देशी माल को बाहर भेजने वाले व्यापारियों को प्रमाण पत्र दिये जाते हैं। सार्वजनिक एवं व्यापारिक प्रश्नों पर आम तौर से सरकार मारवाड़ी चैम्बर आफ कामर्स से परामर्श लेती है। यदि किसी व्यापारिक तथा औद्योगिक प्रतिष्ठान की किसी शाखा की कोई शिकायत होती है तो मारवाड़ी चैम्बर आफ कामर्स उसकी जायज़ शिकायतों को दूर कराने के लिये विशेष जाँच पड़ताल करता है तथा कार्यवाही करता है। यह चैम्बर सेंट्रल काटन कमेटी का तथा कलकत्ता पीस गुड्स के अधिकांश मारकेट का कलकत्ता स्थित एजेण्ट है। इसके साधारण सदस्यों की संख्या ७५० है।

माटुङ्गा बम्बई की टेकनोलोजिकल लेबोरेटरी की ओर से निकलने वाली अनुसन्धान योजनाओं का कार्य इसी चैम्बर के मार्फत होता है।

मारवाड़ी चैम्बर आफ कामर्स के प्रेसीडेण्ट पद पर श्री एम० एल० खेमका, वाइस प्रेसीडेण्ट पद पर श्री जी० वी० सवाइका, तथा श्री आर० एन० भोजनगरवाला, आनरेरी सेक्रेटरी के पद पर श्री के० एन० गुटगुटिया, तथा असिस्टेण्ट आनरेरी सेक्रेटरी के पद पर श्री पी० एल० सरावगी आसीन हैं।

मारवाड़ी एसोसियेशन, कलिम्पोंग डिस्ट्रिक्ट मारवाड़ी मर्चेण्ट्स एसोसियेशन दार्जिलिंग, ह्वीट एण्ड सीड्स एसोसियेशन कलकत्ता, सोनाद मर्चेण्ट्स एसोसियेशन सोनाद, कलकत्ता टिम्बर मर्चेण्ट्स एसोसियेशन कलकत्ता, इंडियन जूट ऐण्ड काटन एसोसियेशन लि० कलकत्ता, आसाम मारवाड़ी चेम्बर आफ कामर्स, कलकत्ता साल्ट एसोसियेशन, क्लाथ मर्चेंट्स एसोसियेशन सिलीगुड़ी, अपर आसाम मारवाड़ी चैम्बर आफ कामर्स जोरहाट, तथा बोंगरा क्लाथ ऐण्ड यार्न मर्चेंट्स एसोसियेशन जैसी संस्थायें इसी मारवाड़ी चैम्बर आफ कामर्स में संयुक्त हैं।

चैम्बर का मुख्य कार्यालय इम्पीरियल बैंक बड़ाबाजार ब्रान्च बिल्डिंग, कलकत्ता में है।

मारवाड़ी सम्मेलन

आधुनिक समय में मारवाड़ी सम्मेलन भारतवर्ष की एक प्रबल शक्तिमान सर्वांगपूर्ण संस्था है जिसके विशाल संगठन का परिचय केवल इसी बात से मिल जाता है कि देश भर में इस संस्था की अखिल भारतीय से लेकर प्रांत, जिला, तथा और छोटे भागों की शाखायें सकड़ों की संख्या में खुल गई हैं तथा हजारों मारवाड़ी कार्यकर्ता सामाजिक सेवा के विशाल क्षेत्र में अपनी योग्यता का परिचय दे रहे हैं।

इस विशाल संस्था का जन्म सन १९३५ ई० में हुआ था और इसका प्रथम सार्वदेशीय अधिवेशन ३० दिसम्बर सन १९३५ ई० से प्रारम्भ हुआ। प्रथम अध्यक्ष का पद रायबहादुर रामदेव चोखानी ने सुशोभित किया।

दूसरा अधिवेशन कलकत्ते में मई सन १९३८ ई० में हुआ जिसके अध्यक्ष पद्मपत सिंहानियां कानपुर, बनाये गये। तीसरा अधिवेशन कानपुर में मार्च सन

१९४० ई० में सर बद्रीदास गोएनका के० टी० सी० आई० ई० (कलकत्ता) की अध्यक्षता में हुआ ।

चतुर्थ अधिवेशन अप्रैल सन् १९४१ ई० में भागलपुर में हुआ जिसके अध्यक्ष बम्बई के सेठ श्री रामदेवजी आनन्दीलाल पोद्दार बनाये गये । पांचवां अधिवेशन मई सन् १९४३ ई० में दिल्ली में हुआ जिसका अध्यक्ष-पद बीकानेर के सेठ रामगोपाल जी मोहता ने सुशोभित किया । छठवां सम्मेलन बम्बई में अप्रैल १९४७ ई० में हुआ जिसके अध्यक्ष माननीय बाबू ब्रजलाल बियाणी बनाये गये ।

इस संस्था का कार्य प्रारम्भ में कुछ दिन चलकर शिथिल पड़ गया परन्तु श्री रामेश्वरजी नोपानी, सर बद्रीदास गोयनका, रायबहादुर रामदेवजी चोखानी तथा श्री बंशीधरजी जालान एवं ईश्वरदासजी जालान प्रभृति सम्भ्रान्त मारवाड़ी सज्जनों के प्रयत्न और उद्योग से संस्था को हर प्रकार की सहायता मिली और उसका कार्य ठीक ठीक रूप से चलने लगा ।

इस सम्मेलन का उद्देश्य मारवाड़ी समाज की आर्थिक, व्यापारिक, राजनीतिक, शारीरिक, नैतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी उन्नति के साधन जुटाना तथा संभव उपायों से काम लेना है ।

समाज की सर्वतोमुखी प्रगति और उन्नति के लिये भागलपुर अधिवेशन में इस संस्था द्वारा एक पंचवर्षीय योजना बनाई गई जिसके कार्यक्रम के ७ विभाग निश्चित किये गये थे । संगठन, शिक्षा, स्वास्थ्य, राजनीति, संस्कृति, व्यापार और अर्थनीति उन विभागों के नाम हैं ।

पंचवर्षीय योजना उक्त सम्मेलन के अवसर पर जिस जोश और उत्साह के साथ बनाई गई थी, कार्यरूप में उसके अनुसार अभी तक नहीं के बराबर ही काम हुआ । वह योजना जहां की तहां ही पड़ी हुई है, इसका कारण भी यही है कि सम्मेलनों के समय जबानी जमाखर्च बहुत हो जाता है, लेक्चरबाज़ी का जोर हो जाता है परन्तु बाद में काम करने तथा शारीरिक कष्ट उठाने के क्षेत्र में कोई नहीं उतरता और चारों ओर सन्नाटा हो जाता है । कर्मठता का अभाव हमारे समाज का सबसे प्रमुख दोष है जिसके निराकरण में जितनी ही देर होती जा रही है, समाज को उतनी ही हानि होती जा रही है ।

विशुद्धानंद सरस्वती मारवाड़ी अस्पताल

सन् १९१९ की १५ फरवरी को कलकत्ते की इस महदुपकारिणी संस्था की स्थापना हुई थी। स्व० सेठ जोहारमलजी खेमका, स्व० बाबू चिमनलालजी गनेड़ीवाला, रायबहादुर रामजी दासजी बाजोरिया, रायबहादुर रामेश्वरलालजी नाथानी तथा बाबू केशोरामजी पोद्दार इस अस्पताल के संस्थापक थे जिनके उद्योग और जिनकी सहायता से प्रसिद्ध संत श्री विशुद्धानन्द सरस्वती की स्मृति में यह विशाल चिकित्सालय बनाया गया। सन् १९३०-३१ ई० में नं० ११८ एमहर्स्ट स्ट्रीट में इस अस्पताल की भारी इमारत भी बनकर तैयार हो गई।

कलकत्ते में करोड़ों रुपयों की लागत से यह अस्पताल खोला गया है और प्रतिवर्ष इसके विभिन्न विभागों द्वारा लाखों आदमियों की चिकित्सा होती है और करोड़ों रुपयों का खर्च होता है। इसके अतिरिक्त हरिसन रोड स्थित भगवानदास बागला अस्पताल भी मारवाड़ियों की ऐसी ही विशिष्ट संस्था है। श्री विशुद्धानन्द सरस्वती के नाम पर चितरंजन एवेन्यू में विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय खुला हुआ है जहां हिन्दी और अंगरेज़ी की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध है।

वैश्य कालेज भिवानी

श्री सेठ शिवराम दास चिड़ोपाल के उद्योग से भिवाना (पञ्जाब) में वैश्य कालेज खोला गया, जिसमें केवल मारवाड़ी वैश्यों को बी० ए० तक शिक्षा मिलती है। पञ्जाब प्रदेश में यह कालेज भी अपने ढंग का एक ही है।

जयपुरिया कालेज कलकत्ता

कलकत्ता के प्रसिद्ध जयपुरिया घराने के सेठ आनन्दराम जयपुरिया के नाम पर यह कालेज हाल ही में खोला गया है, जिसका उद्घाटन पण्डित जवाहरलाल नेहरू द्वारा किया गया है।

मारवाड़ी इण्टर मीडियट कालेज कानपुर

उत्तर-भारत की मारवाड़ी शिक्षा-संस्थाओं में कानपुर का मारवाड़ी इण्टरमीडियट कालेज अत्यन्त सुदृढ़ और सुव्यवस्थित है। पहले यह मारवाड़ी विद्यालय हाई स्कूल था

जिससे उन्नत होकर यह इण्टरमीडियट कालेज बना। इस कालेज की शिक्षा-व्यवस्था बहुत उत्तम है, जिसके साथ सांस्कृतिक एवं शारीरिक व्यायाम की शिक्षा अत्यन्त सुचारु होती है।

औद्योगिक प्रतिष्ठान

आज समस्त भारतवर्ष में ही क्या, दुनियां के हर कोने में व्यापार तथा उद्योग-धन्धे के नाते से मारवाड़ी दिखाई पड़ते हैं। जहां भी जरा सी रोजगार की गुञ्जाइश इन लोगों ने देखी, देश और जगह का कुछ भी ख्याल न करके वहीं इन्होंने एक दूकान, आफिस अथवा कारखाना खोल दिया। यदि हम इस विचार से देखें तो मारवाड़ी की हरएक दूकान, चाहे वह मामूली परचून या बिसातखाने की ही क्यों न हो, व्यापार, उद्योग तथा रोजगार है। परन्तु यहां पर हमारा दृष्टिकोण आधुनिक उद्योगों (Modern Industries) से तथा उत्पादन (Production) से ही सम्बन्धित है और उसी विचार से हम व्यापार, और रोजगार के केन्द्रों का निरूपण करते हैं।

उद्योग (Industries) के क्षेत्र में मारवाड़ी जरा देर से उतरे। सबसे पहले उन्होंने वाणिज्य को ही अपना व्यापारिक रचनाक्रम बनाया। उनका मुख्य ध्येय था सामान खरीदना और पड़ता लगाकर अन्य स्थानों में बेंच देना। इस क्रम में कुछ उन्नत होकर इस वर्ग के लोगों ने दूकानदारी का सिलसिला जमाया और इसी रास्ते से उन्होंने फाटका और एजेन्सी प्रणाली (Agency system) को भी व्यापार क्षेत्र बनाया, जिसके फलस्वरूप इस वर्ग को उल्लेखनीय आर्थिक उन्नति का प्रारम्भिक श्रेय प्राप्त हुआ।

फाटका यदि अर्थ शास्त्र का विष है तो जनसाधारण के लिये एजेन्सी की प्रणाली भी कम अनिष्टकर नहीं है। यही दोनों प्रकार के विष भारतवर्ष में अँगरेजों की अर्थ नीति की देन के रूप में फैले जो तथाकथित "पूंजीवाद" या Accumulation of wealth के दोनों हाथ हैं। अस्तु।

चाहे जो कुछ भी हो, अर्थनीति के इन्हीं दोनों विषों को भारतीय आर्थिक क्षेत्र में फैलाने के लिये अंगरेजों ने इस देश के मारवाड़ी व्यवसायी वर्ग को ही अपना

साधन चुना। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वयं मारवाड़ी व्यवसायीवर्ग तो धनवान बन गया; परन्तु अन्य वर्ग आर्थिक उन्नति न कर सके। इस दुर्दशा का एक जबर्दस्त और कारण था भारत में अंगरेज़ों की आर्थिक कूटनीति। मारवाड़ियों को फाटका और एजेन्सी प्रणालीमें उलझाया गया, जिस से धन केन्द्रीभूत हो गया और वही धन निश्चल बन कर पड़ा रहा अथवा कुपात्र हाथों में पड़कर आराम-आराइश और अपव्यय Luxury and waste में साफ होता रहा। इस प्रकार अंगरेज़ों ने उत्पादन और उद्योग (Industries and Production) के क्षेत्र को अपने ही लिये सुरक्षित कर लिया अथवा उत्पादन की मुख्य चीजों के लिये इस देश को अंगरेजी कारखानों या वैदेशिक आयात का मुहताज हो बनाकर रखा। शासन-सत्ता के बल पर उनके लिये ऐसा करना संभव भी रहा। परंतु राष्ट्रीय आन्दोलन, लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गांधी की (Industrial Schemes) उद्योगीकरण योजनाओं के द्वारा देश को असलियत का ज्ञान हुआ, साथ ही इधर कार्य क्षेत्र की भी अलग अलग दो शाखायें हो गईं। एक थी राजनीति या Politics और दूसरी थी आर्थिक तथा औद्योगिक योजना (Economical and Industrial development)

राष्ट्रीय आन्दोलन के इसी युगसे मारवाड़ियों की प्रवृत्ति उद्योग या Industry की ओर घूमी। देर में इस रहस्य का पता लगने का ही फल है कि आज हमारा देश औद्योगिक क्षेत्र में इतना पिछड़ा हुआ है अन्यथा आज देश की कुछ और ही दशा दिखाई पड़ती। इतना होते हुए देर सबेर से जितना जो कुछ भी काम शुरू हुआ, यदि उसे बहुत ज्यादा नहीं कहा जा सकता तो कम भी नहीं कहा जा सकता।

वर्तमान औद्योगिक क्षेत्र में हमारे देश में मारवाड़ी समाज के ६ प्रमुख प्रतिष्ठानों के नाम आते हैं। यह ६ हों भारतीय औद्योगिक धुरे पूरी तेजी के साथ अरबाधीश बनने की होड़ में रात दिन दौड़ लगा रहे हैं और देखना है कि किसका घोड़ा आगे पहुंचता है अथवा यह देखना है कि साम्यवाद की चपेट में पड़कर घोड़ा और धुरा सब नष्ट हो जाते हैं या किस रूप में बच रहते हैं। इन ६ स्तम्भों के नाम इस प्रकार हैं:—

१—बिड़ला ब्रदर्स, कलकत्ता।

२—जुग्गीलाल कमलापत, कानपुर।

३—सूरजमल नागरमल, कलकत्ता।

४—रामकृष्ण डालमियां

५—मोदी इंडस्ट्रीज़ मोदीनगर बेगमाबाद

६—गोपालदास मोहता बरार

बैंक और बैंकर्स

भारतवर्ष में मारवाड़ी वर्ग ने उद्योग और व्यवसाय के क्षेत्र में जैसी कुछ सफलता और ख्याति प्राप्त की है उसका आदि श्रोत बैङ्किङ्ग व्यवसाय से ही प्रारम्भ हुआ था। वस्तुस्थिति यह है कि सराफ़ और सराफा के शब्दों से ही भारतवर्ष की सुदृढ़ व्यवसायिक स्थिति का बोध होता था तथा सराफा बाजारों के ही आधार पर समस्त व्यापारिक दर और शरहों की बढ़ बढ़ चलती थी। व्यापार और व्यवसाय की इस प्रारंभिक या आदि शैली में मारवाड़ियों की प्रधानता थी। आज से ५० वर्ष पहले प्रत्येक मारवाड़ी की गद्दी या फर्म एक बैंक था और पारस्परिक लेन देन के व्यवहार में हुण्डी पुरज़ा का वही प्रचलन था जो आजकल बैङ्कों के चेकों का रहता है।

भारतीय व्यवसायिक क्षेत्र में और विशेष कर भारत में खुलने वाले बैङ्क व्यवसाय के लिये यह सराफ वर्ग बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं क्योंकि इनकी मध्यस्थता से ही बैंकों का लेन देन अन्य आदमियों के साथ प्रारम्भ हुआ है। स्थानीय सराफों को बाज़ार के हर एक व्यवसायी की स्थिति का पूरा ज्ञान रहता था और उसी को हुण्डी और पुरजे पर बैंकें किसी व्यवसायी को रुपया देती थीं। ब्याज और मितीकाटा की दर ऐसी रहती थी जिस से मध्यस्थ सराफ को अनुचित ब्याज लेने का कोई अवकाश नहीं रहता था, इसके अतिरिक्त साधारण व्यवहार के नियम में भी अनुचित ब्याज या मितीकाटा को बुरा ही समझा जाता था। इस प्रकार भारतवर्ष का बैंकिंग व्यवसाय मारवाड़ी सराफों द्वारा ही विकसित हुआ है। इन सराफों का सदर मुकाम बीकानेर था। कालान्तर में भारतवर्ष में अंगरेजी ढङ्ग के बैङ्किङ्ग व्यवसाय का विकास हुआ और आज हमें बैंकिङ्ग व्यवसाय का वही विकसित रूप देखने को मिल

रहा है फिर भी प्राचीन पद्धति की गद्दियों का "सराफा" का कारबार तथा हुण्डियों की साख अभी भी बैङ्कों के मुक़ाबले कहीं अधिक समझी जाती है।

१—जिस केन्द्र बिन्दु से हमारे देश में आधुनिक बैंक व्यवसाय का सूत्र पात होता है, वहां सेठ सुखलाल करनानी नामक मारवाड़ी सज्जन का नाम आता है जिन्हों ने सन् १९१९ ई० में "करनानी इण्डष्ट्रियल बैंक लिमिटेड" की स्थापना की थो। इस बैंक का दफ्तर नं० ३ सिनागाग स्ट्रीट कलकत्ता में था। श्री युत करनानी जी के सहायक थे श्री लक्ष्मीचन्द जी झावर। दुर्भाग्यवश इस बैंक का कारबार अधिक दिनों तक नहीं चल सका।

२—इसी प्रकार "राजस्थान बैंक लि०" नामक दूसरी बैंक भी मारवाड़ी व्यवसायी द्वारा स्थापित की गई जो सन् १९४१ ई० की बैंक सम्बन्धी हलचल के समय शेड्यूल्ड बैंकों की सूची से पृथक कर दी गई।

३—बैंकिग व्यवसाय में मारवाड़ियों का तीसरा जबर्दस्त प्रतिष्ठान और प्रयास श्री रामकृष्ण डालमियां की "भारत बैंक लि०" है, जिसका कार्य प्रारम्भ में बड़े सुचारु रूप से तथा बड़े बेग के साथ चला था और इस बैंक की शाखायें समग्र भारतवर्ष के छोटे छोटे स्थानों तक में खुल गईं। आजकल इस बैंक की स्थिति सुदृढ़ है और उसका कार्य ठीक ठोक चल भी रहा है परन्तु जैसी कुछ उन्नति प्रारंभिक समय में देख पड़ी थी उसके हिसाब से अब तक इसकी स्थिति जहां तक पहुंचनी थी, वहांतक नहीं पहुंच सकी, पता नहीं क्यों?

४—"यूनाइटेड कमर्शियल बैंक लि०"—इस बैंक में बिड़ला ब्रदर्स का प्रमुख हाथ है।

५—"हिन्द बैंक लि०"—शेयर का काम करने वाले मारवाड़ी बंधुओं ने हाल ही में उक्त बैंक की स्थापना की है।

६—"बैंक आफ जयपुर लि०" तथा—

७—"बैंक आफ बीकानेर" भी मारवाड़ियों द्वारा ही परिचालित बैंकें हैं जो रियासतों की हैं अतएव उन्हें सार्वजनिक मारवाड़ी बैंकों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

८—"हिन्दुस्तान कमर्शियल बैंक लि०"—इस बैंक में सेठ पद्मपतजी सिंहानियां तथा सेठ मंगतू राम जयपुरिया का प्रमुख हाथ है।

९—"लक्ष्मी बैंक लि०" अकोला - यह बैंक सेठ गोपालदास मोहता की छत्र-छाया में चल रही है।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक राजस्थानी देशी रियासत में मारवाड़ियों की अलग अलग बैंकें चल रही हैं। सच बात तो यह है कि भारतवर्ष का समस्त बैंकिंग व्यवसाय मारवाड़ियों के ही बल पर चल रहा है, फिर भी मारवाड़ी जाति के सार्व-जनिक हित की पूर्ति करने वाली एक भी बैंक नहीं है, यह समाज की आर्थिक और व्यवसायिक स्थिति की एक शोचनीय त्रुटि है जिसे दूर करने के लिये कई बार मार-वाड़ी सम्मेलन आदि में प्रस्तावों तथा वादानुवाद द्वारा जोर मारा गया परन्तु कार्य रूप में किसी से कुछ करते धरते नहीं बन पड़ा।

ऊपर दी हुई बैंकों की सूची से प्रगट है कि समाज के प्रमुख प्रमुख पूंजीप-तियों ने अपनी अलग अलग बैंकें खोल रखी हैं और वह लोग उनसे अपने वैय-क्तिक स्वार्थ का साधन करते रहते हैं अतएव वे सार्वजनिक बैंक खोलने में कुछ भी योगदान नहीं करते, कारण कि सार्वजनिक बैंक खुलने से उनके वैयक्तिक स्वार्थ को धक्का पहुंचता है।

एक ओर तो बैंकिंग के क्षेत्र में जाति के सामूहिक हित के लिये कोई बैंक नहीं खुल रहा है, जिसके कारण सर्वसाधारण मारवाड़ियों को कष्ट है, दूसरी ओर आधु-निक कोटि की बैंकों की अधिकता के कारण पुराना हुण्डी-खाता और पुरजे का कारबार लुप्त होता जा रहा है। मारवाड़ी समाज के नेताओं को शीघ्र से शीघ्र इस दिशा में कदम बढ़ाने की प्रबल आवश्यकता है।

बुद्धि-जीवी व्यवसायी

यद्यपि हमारे समाज में खाता-पत्र, हिसाब-किताब और रुपये की जोड़-बाकी तथा महाजनी का काम करने वाले प्रवीण आदमी, मुनीम, मुख्तार आदि भरे पड़े हैं तो भी इस विषय के आधुनिक संगठित उद्योग के नाते आडिटर्स आर० ए० (रजिस्टर्ड एकाउण्टैण्ट्स) के क्षेत्र में बहुत पीछे तक भी समाज का कोई भी आदमी

आगे नहीं आया। सौभाग्य की बात है कि अब श्रीयुत् काशीनाथ गुरगुटिया, बी-काम० ए० एस० ए० ए० (लन्दन) ने समाज के उस अभाव की पूर्ति कर दी है। आप अपनी प्रैक्टिस स्वतन्त्र रूप से कलकत्ते में कर रहे हैं।

दिल्ली में जगदीश प्रसाद एण्ड कम्पनी द्वारा भी आडीटरी का उद्योग चलता रहा है। ब्यावर (राजपूताना) में बी० डी० गर्ग एण्ड कम्पनी से भी आडीटरी का उद्योग सञ्चालित हो रहा है।

सालिसिटर, एटर्नी, वकील और बेरिस्टर

कानून के क्षेत्र में बुद्धि-जीवी व्यवसाय के प्रति मारवाड़ी समाज उदासीन ही रहा, परन्तु अन्य वर्गों को इस क्षेत्र में आगे बढ़ा हुआ देखकर, तथा पग पग पर राजकीय नियमोपनियमों की अनुशासन सम्बन्धी चोटों में पड़ने के बाद समाज को कुछ होश आया और सेठ लोगों को समझ में आया कि लड़कों को कालेजों में भी पढ़ाना चाहिए। कलकत्ता जैसे मारवाड़ियों के गढ़ में सर्व प्रथम गोयनका खानदान में सर बद्रीदास जी गोयनका ग्रैजुएट होकर निकले, पुनः राय बहादुर रामदेव जी चोखानी ने अगरेजी की उच्च शिक्षा प्राप्त की। इस प्रकार अन्य वर्गों के मुकाबले हमारे समाज में वकील बैरिस्टरों, एटर्नी और सालिसिटरों की संख्या कुछ भी नहीं रही परन्तु अब इस दिशा में भी प्रगति होते देखकर हर्ष होता है। कलकत्ता के प्रसिद्ध खेतान वंश के उज्ज्वल रत्न श्री काली-प्रसाद खेतान बार ऐटला ने कानूनी क्षेत्र में सबसे पहले, सब से आगे बढ़कर समाज को गौरवान्वित किया है। आप कल-कत्ता हाईकोर्ट के काउंसेल-पद तक जा पहुंचे हैं।

इसके अतिरिक्त मारवाड़ी समाज के अन्य बहुत से एटर्नी, सालिसिटर तथा वकील बैरिस्टर भी प्रकाश में आ चुके हैं जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं :—

खेतान एण्ड सन्स एटर्नी कलकत्ता, श्री ईश्वरदास जालान एम० ए० बी-एल० एटर्नी कलकत्ता, श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका एटर्नी कलकत्ता, श्री बेणीशंकर शर्मा बी-काम० बी-एल० कलकत्ता, श्री चौथमल सराफ वकील कलकत्ता, श्री छोगमल चोपड़ा वकील कलकत्ता, श्री हरदत्तराय सूरजा वकील कलकत्ता, श्री गजाधर बगड़िया सालिसिटर्स कलकत्ता, श्री भगवती प्रसाद खेतान एटर्नी कलकत्ता, श्री पद्मप्रकाश

माहेश्वरी बी० ए० एल-एल० बी० वकील अमृतसर (पत्रकार), श्री सिद्धराज ढड्ढा एम०ए० एल-एल०बी० वकील कलकत्ता, श्रीसत्यनारायण सराफ एम० ए० एल-एल० बी० वकील भिवानी, श्री मुकुन्दलाल चिड़ीपाल बी० ए० एल-एल० बी० वकील कलकत्ता, श्री शिवरामदास चिड़ीपाल बी० ए० बी-एल० वकील भिवानी, श्री भूरामल अग्रवाल ऐडवोकेट कलकत्ता, श्री जुगुलकिशोर जी एडवोकेट हिसार, श्री सवाईमल जैन बी-काम० एल-एल० बी० वकील जबलपुर, श्री मोतीलाल जैन वकील भागलपुर तथा श्री केदारनाथ खेडिया बी० ए० बी-एल० वकील (छोटानागपुर)।

इसके अतिरिक्त मारवाड़ी समाज के अन्तर्गत भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों में और भी बहुत से बन्धु बुद्धि-जीवी व्यवसाय में लगे हुए हैं। वर्तमान कालेजों और विश्व-विद्यालयों में मारवाड़ी छात्रों की संख्या बढ़ती जा रही है, साथ ही वकालत, और बैरिष्टरी की ओर इन छात्रों तथा अभिभावकों की प्रवृत्ति भी उत्तरोत्तर बढ़ रही है फिर भी आई० सी० एस०, इञ्जीनियरिङ्ग, जर्नलिज्म आदि बुद्धिजीवी व्यवसायों की ओर मारवाड़ी समाज को प्रगतिशील बनने के लिये अतिरिक्त प्रयास करने की आवश्यकता है।

उद्योग-उत्पादन-प्रतिष्ठान

ईश्वर की ईश्वरता तथा दयालुता का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जहां उसने इस स्थूल संसार में चेतना युक्त चर प्राणी को पैदा किया है वहीं उस प्राणी के शारीरिक और बौद्धिक व्यवहार के लिये सभी आवश्यक पदार्थों को भी उसने पहले से ही प्रस्तुत करके रख दिया है। बुद्धि और विज्ञान के चमत्कारों पर आज मनुष्य को भारी अहंकार ने घेर लिया है इसलिये वह तथाकथित परिष्कृत आविष्कारों को मानव की ही कृति समझ बैठा है और इसी अहंकार के कारण मनुष्य की बुद्धि में ममता का अवगुण आया, ममता से लिप्सा बढ़ी जो क्रोध की जननी हुआ करती है, क्रोध से विवेक नष्ट हुआ, विवेक नष्ट होने से स्मृति-विभ्रम और पश्चात् बुद्धिनाश और सर्वनाश का नम्बर अनिवार्य हो जाता है। सर्वनाश का कुछ लक्षण हमारे सामने भी है और वह इस प्रकार कि जिस वैज्ञानिक प्रगति से मानव का कल्याण होना चाहिए था उससे संहार हो रहा है, लिप्सा और कलह का नंगानाच ही आज संसार में देखने को मिल रहा है।

उद्योग, उत्पादन की जिस प्रगति और विभिन्न शैलियों पर मनुष्य को आज जितना गर्व है, वस्तुतः उसका कोई भी अर्थ नहीं है कारण कि खनिज, वनस्पति, पशु और निर्मल निर्विकार बुद्धि जन्य श्रम इन्हीं चार चीज़ों के बल पर सारे उद्योग और उत्पादन का दारमदार है। यदि इन्हीं चार चीज़ों के व्यवहार और योग से मनुष्य कुछ कर रहा है तो उसमें उसका निज का कोई चमत्कार नहीं। ईश्वर-प्रदत्त इन चारों साधनों से मनुष्य जो कुछ चमत्कार करे उनसे जनसाधारण का कल्याण हो, उपकार हो तब तो ईश्वर-प्रदत्त साधनों का सदुपयोग हुआ अन्यथा दुरुपयोग। और यदि उन साधनों का दुरुपयोग सिद्ध हो जाता है तो बुद्धि की भ्रष्टता भी सिद्ध हो जाती है। तात्पर्य यह है कि उद्योग और उत्पादन के क्षेत्र में होने वाली प्रगति से भी, यदि सार्वजनिक कल्याण की साधना नहीं होती तो उसका प्रारम्भ ही गलत है, परन्तु आये दिन लोक कल्याण की ओर ध्यान देने की किसी को फुरसत ही नहीं है और फलस्वरूप तथाकथित विकसित उद्योगों और उद्योगपतियों के लिये भी नित्य नई बाधायें और खतरे पैदा होते रहते हैं। अपने समाज के उद्योग, उद्योगपति, उत्पादन और उत्पादकों के विषय में प्रकाश डालने तथा उनका परिचय देने के पूर्व हम उन्हें यह चेतावनी देना उचित समझते हैं कि—"जो कुछ साधन संसार में मौजूद हैं वह प्रकृति की ही देन है, इसलिये उसका सदुपयोग ही होना चाहिए कारण कि उनका दुरुपयोग करने से बुद्धि-नाश और सर्वनाश सुनिश्चित हो जायगा।"

कृषि-उद्योग

पृथ्वी, बीज और पशु के सम्मिलित प्रयास से कृषि का उद्योग साध्य होता है। हम देखते हैं कि पृथ्वी को मनुष्य नहीं बना सकता, इसी प्रकार बीज और पशु का अस्तित्व भी मनुष्य के सामर्थ्य से बाहर की चीजें हैं। इतना ही नहीं इन तीनों के विधिवत योग और अपनी बुद्धि के पूर्ण प्रयोग के बाद भी मनुष्य कृषि के अभीष्ठ फल को सुनिश्चित नहीं बना पाता, पाला, ओला, अतिवृष्टि, अकाल, कीड़ा, टीडी आदि बाधाओं के सामने उसका निज का कोई उद्योग काम नहीं कर पाता। इससे सिद्ध है कि कृषि-कर्म या कृषि का उद्योग मानव का धर्म और कर्म अवश्य है परन्तु उसका दुरुपयोग, अनुचित वितरण इत्यादि निषिद्ध है।

हमारे देश के लिये कृषि का उद्योग सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रधान उद्योग माना गया है। इसका कारण यही है कि प्राथमिक उद्योग के प्रायः सभी साधन इसी उद्योग से सुलभ हो जाते हैं जिनमें जूट, रुई (कपड़ा), शक्कर, तेल, चावल, दाल, आटा, चाय, तम्बाकू, रबड़ आदि हैं। कृषि करके, खनिज पदार्थों तथा प्राकृतिक साधनों के हेर-फेर से, रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा मनुष्य, समस्त पदार्थों की उपयोगिता बढ़ाया करता है और उपयोगिता बढ़ाने की इसी क्रिया का नाम उत्पादन है।

जिस प्रकार भूमि, पशु और बीज आदि ईश्वरीय उत्पादनों के द्वारा कृषिकर्म एक स्वाभाविक उद्योग का नाम पाता है उसी प्रकार मनुष्य अपने बुद्धिबल से जो जो उत्पादन (व्यवहारिक उपयोगिता) अथवा Productions प्रस्तुत करता है उन्हीं के ठीक ठीक और संगठित संचालन का नाम "उद्योग" या Industry रखा गया है।

खेती को प्रथम कोटि का उत्तम उद्योग मानने का फल यह हुआ कि हमारे देश में वह समय भी आया जब रुपये का १०-१० मन गेहूँ भी बिकने लगा। कालांतर में ब्रिटिश राज्य की कूटनीतिक चालों और बदनीयती से खेती के उद्योग का महत्व ऊपरी दिखावे में क्षुद्र कर दिया गया तथा उससे वैयक्तिक लाभ की मात्रा बहुत कम समझी जाने लगी, फल यह हुआ कि देश की औद्योगिक जातियां खेती को छोड़कर आगे बढ़ीं और इसलिये मारवाड़ी वर्ग भी आगे बढ़ा। इस प्रगति में हमारे देश के लिये खेती के बाद दूसरे दर्जे में वाणिज्य का नम्बर आता है अतएव मारवाड़ी खेती से उत्पन्न होने वाले पदार्थों के वाणिज्य में लगे।

जूट

देश का व्यवसायी वर्ग जब कृषि-जन्य उत्पादनों के वाणिज्य में लगा तो सार्वभौम महत्व का भारतीय उद्योग जूट का रहा और इस उद्योग की इस हद तक उन्नति हुई कि भारतवर्ष समस्त संसार का एकमात्र जूट उत्पादक देश The only Jute producing Country बन गया। बंगाल के व्यापारिक केन्द्र में अंगरेज़ों के बाद मारवाड़ियों की ही गति अधिक रही इसलिये जूट के उद्योग और व्यवसाय में मारवाड़ियों ने ही सबसे ज्यादा उन्नति की और पैसा भी कमाया।

अंगरेज़ व्यापारियों को यदि राजकीय विशेषाधिकार और सुविधाओं से अलग कर दिया जाय तो मारवाड़ियों की व्यापारिक कुशलता और समृद्धि संसार में सर्वोच्च सिद्ध हो जाय। वस्तुतः आज दिन मारवाड़ी समाज के जिन जिन प्रमुख व्यक्तियों और फर्मों का नाम सुनने में आता है वे सब जूट की ही बदौलत समृद्ध हुए हैं। जूट के उद्योग तथा व्यवसाय में दलाली, शेयर, शिपर्स, बेलर्स, प्रेसमैन, पाटमुकाम आदि के काम हैं जिनमें काम करते हुए लाखों मारवाड़ी विविध प्रकार से आमदनी करते हैं। जूट मिलों ने भी मारवाड़ीपन अख्तियार किया और यद्यपि जूट मिल का काम काफी लागत का है फिर भी आज तक अनेक मारवाड़ियों ने अपनी अपनी जूट मिलें स्थापित कर ली हैं।

इस समय भारतवर्ष में मारवाड़ियों द्वारा सञ्चालित जूट मिलों की संख्या १९ के लगभग है जिनमें बिड़ला जूट मिल्स लि० बजबज, हुकुमचन्द जूट मिल्स लि० नईहट्टी, लोयलका जूट मिल्स लि०, लक्ष्मी जूट मिल्स लि०, श्री हनुमान जूट मिल्स घुसड़ी (हबड़ा), कटिहार जूट मिल्स, बिहारी लाल कुञ्जीलाल जूट मिल्स कानपुर, जुग्गीलाल कमलापत जूट मिल्स कानपुर, शंभूलाल करोड़ी मल जूट मिल्स रायगढ़ के नाम प्रमुख हैं।

जूट के पश्चात कृषि-जन्य उत्पादनों में भारत के उद्योग और व्यवसाय में दूसरे दर्जे का महत्व रूई Cotton का है जिसके आधार पर कपड़ा और सूत का यावत व्यापार और उत्पादन सञ्चालित होता है। नीचे प्रमुख प्राकृतिक विषय तथा उनसे चलने वाले उद्योगों की एक तालिका दी जाती है जिसमें प्रत्येक उद्योग के सामने मारवाड़ी वर्ग द्वारा सञ्चालित मिलों की संख्या भी दी गई है :—

मूल-साधन	तज्जनित-उद्योग	मारवाड़ी मिलों की संख्या
१-कृषि-प्रधान उत्पादन	१—जूट	१६
	२—रुई	५४
	३—चावल	३५
	४—तेल	२४
	५—शक्कर	१५
	६—दाल	११
	७—आटा-मैदा-सूजी ...	५
	८—चाय	४ बगान
	९—तम्बाकू	२ आढ़तें
	१०—रबड़	२ फैक्टरियां
२—खनिज और बन संपत्ति उत्पादन	१—सीमेण्ट	४ फैक्टरी
	२—कोयला	८ कोलियरी
	३—आइरन	०
	४—चीनामिट्टी	६ फैक्टरियां
	६—धातु, सोना, चांदी, तांबा आदि ...	अज्ञात
	७—लकड़ी और बन-संपत्ति Forest Products.	१५ सौ मिल्स
३—रसायन उत्पादन	१—कागज	२ फैक्टरी
	२—साबुन	११ फैक्टरी
	३—औषधि	४ फैक्टरी
	४—रसायन	५ फैक्टरी
	५—वेजीटेबुल घी	३ फैक्टरी
	६—बिस्कुट	३ फैक्टरी
	७—ग्लास	२ फैक्टरी
	८—प्लास्टिक	१ फैक्टरी
	९—माचिस	६ फैक्टरी

वर्ग	उत्पादन	संख्या
४—पशु-जनित उत्पादन	१—ऊन	३ फैक्टरी
	२—चमड़ा	१ (खेतान)
	३—डेयरी	० (अफसोस !)
५—आधुनिक वैज्ञानिक उत्पादन	१—मोटरकार	१ (बिड़ला)
	२—हवाई जहाज़	३ संस्था
	(बिड़ला, डालमियां, टेकचन्द सांगी, दिल्ली)	
	३—इंजीनियरिंग ...	१० फै० (छोटी, बड़ी)
	४—रेडियो	०
	५—बिजली का सामान ...	२
	६—बंदूक और हथियार	१ संस्था (बागला)
६—संचालन प्रधान उत्पादन	१—स्टुडियो ...	२ फिल्म स्टुडियो
	२—इन्श्योरेंस	४ कम्पनियां
	३—बैंक	६ कम्पनियां
	४—प्रकाशन	५ प्रतिष्ठान
	५—दूकानदारी और वाणिज्य	अप्रमाणित

यहां पर दी हुई तालिका में मारवाड़ियों के उच्च कोटि के ही प्रतिष्ठानों की संख्या दी गई है, साधारण और छोटे छोटे संस्थान और प्रतिष्ठानों के ठीक ठीक आंकड़े न तो हमें अभी प्राप्त ही हो सके हैं और न इस पुस्तक में इस विषय के लिये नियत स्थान में वह सब दिये ही जा सकते हैं, अतएव मारवाड़ी मात्र के सभी छोटे बड़े औद्योगिक और वाणिज्य सम्बन्धी प्रतिष्ठानों के पूर्ण परिचय के लिये हम शीघ्र ही एक "मारवाड़ी डाइरेक्टरी" तैयार करने की चेष्टा करेंगे जिसके लिये इस पुस्तक के पाठकों की ओर से अभी से ही उचित सहयोग प्राप्त करने की हम आशा करते हैं।

मारवाड़ी समाज की औद्योगिक और व्यवसाय सम्बन्धी गतिविधि साधारण रूप

से "श्रेष्ठ" समझते हुए भी हम यह अवश्य कहेंगे कि अभी तक इस दिशा में जो कुछ और जितना कुछ काम हुआ या हो रहा है, मौलिकता के नाते वह शून्य ही है। हमारे औद्योगिक प्रतिष्ठान, हमारी व्यापारिक क्रियायें तथा उनकी शैली आदि अपनी निज की नहीं दिखाई पड़ती वरन् वह किसी अन्य विदेशी वर्गों की शैली की नकल ही हैं। व्यवसाय, उद्योग और वाणिज्य सम्बन्धी स्वाभाविक प्रतिभा और क्षमता हमारे अन्दर विद्यमान है, यह एक प्रमाणित तथ्य है, इसलिये अपनी कार्य विधि और शैली में मौलिकता का अभाव भी हमारी औद्योगिक स्थिति का एक कलंक है। आजतक और अभी तक हम इस दिशा में भी यदि लकीर के फकीर बने रहे तो किसी हद तक हमारा वह काम क्षम्य रहा, परन्तु अब हम जिस संक्रान्ति काल से गुजर रहे हैं, देश और समाज के जिस नये अध्याय में हम प्रविष्ट हो रहे हैं, वहां लकीर के फ़कीर बनने से कदापि काम नहीं चल सकेगा।

उद्योग और व्यवसाय के क्षेत्र में मारवाड़ियों को बहुत सतर्क और सावधान होकर अपने क्षेत्र को उन्नत, विकसित, आधुनिक और मौलिक बनाना है और इसी के समकक्ष अपने समाज को तथा समाज के साथ ही राष्ट्र को आगे बढ़ाना है। यह एक ऐसा उत्तरदायित्व है जिसका निर्वाह भारतवर्ष के मारवाड़ियों को ही करना पड़ेगा, अन्य किसी को नहीं। यह क्षेत्र और विषय मारवाड़ियों का ही है और आगे भी उन्हीं का रहेगा। इतना ही नहीं, हम तो यहां तक सोच रहे हैं कि उद्योग तथा वाणिज्य व्यवसाय के क्षेत्र में मारवाड़ियों पर एक बार आगामी २५ वर्षों के ही अरसे में— सारे विश्व का सूत्र सञ्चालन तथा नेतृत्व का भार आयेगा।

ऐसे अति सन्निकट उत्तरदायित्व को वहन करने के लिये केवल इतना ही काफ़ी नहीं होगा कि हम, "बाथ-गेट", "फ्रैंकरास", "मेप्टन" तथा "ह्वाइट अवेज़ लेडलां" जैसी बड़ी बड़ी अङ्गरेजी औद्योगिक कम्पनियों को खरीद लेनेके उपरान्त सन्तोष करके बैठ जायं और उनका कार्य उसी पुरानी पद्धति पर चलता रहे। हमें भारतवर्ष के उद्योग और व्यवसायिक क्षेत्र में एक जबर्दस्त छलांग मारनी पड़ेगी। उस छलांग की विधि यही होगी कि आधुनिक वैज्ञानिक उत्पादन के क्षेत्र में जब हमें मोटर, हवाई जहाज़ आदि निर्मित करने का अवसर मिलेगा तो हमें मोटर निर्माण

को पीछे रखकर हवाई जहाजों का निर्माण पहले करना होगा, इसी प्रकार रेडियो के निर्माण को पीछे रखकर "टेली विज़न" के निर्माण में पहले जुटना होगा।

तात्पर्य यह है कि हमें साधारण से लेकर ऊंचे से ऊंचे व्यवसायिक तथा औद्यौगिक प्रतिष्ठान की गतिविधि शैली, और कार्यक्रम में आमूल परिवर्तन करना है हर दशा में आवश्यक होगा कि हम ऐसे उद्योग का विकास करें जिसकी ओर अभी तक किसी का ध्यान ही न गया हो। अर्थात् वह चीजें तैयार करना, जो अभी तक विदेशों से ही मंगाई जाती हैं। ऊपर दी हुई तालिका में पशु-उत्पादन के पशु-पालन तथा डेयरी के उद्योग में मारवाड़ियों का भाग बिल्कुल शून्य रहना कितने बड़े परिताप की बात है। कोई भी मारवाड़ी लक्षाधीश सहज में ही डेयरी का उद्योग खोलकर स्थान विशेष की विशुद्ध घी और दूध की कमी को प्रशंसनीय ढङ्ग से दूर करके देश, समाज और अपना निज का सरलतया ही हित-साधन कर सकता है, साथ ही भारत वर्ष के अत्यावश्यक पशु-धन की निधि का रक्षक और उनकी नस्ल का सुधारक भी बन सकता है।

इसी प्रकार हर दिशा में अभिनव योजनाओं के साथ क़दम बढ़ाना होगा, नई नई औद्योगिक योजनाओं के द्वारा हमें स्वदेश की औद्योगिक और व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता (Competition) से भी छुट्टी मिल जायगी, व्यर्थ में खर्च होने वाली तथा अचल बन कर पड़ी हुई पूंजी का उपयोग होगा तथा बेकारी का प्रश्न भी सहज में सुलझ जायगा।

संक्षेप में मारवाड़ियों के लिये भावी औद्योगिक प्रगति का यही कार्यक्रम है। इसकी पूर्ति तभी होगी जब हर एक मारवाड़ी अपने को संसार के औद्योगिक क्षेत्र का एक पाया समझ कर उतना ही उत्तरदायित्व अपने ऊपर समझेगा। प्रत्येक मारवाड़ी को यह समझना होगा कि मारवाड़ियों पर ही विश्व की अर्थ, उद्योग और वाणिज्य नीतिका दार-मदार है और इसी विचारसे प्रत्येक मारवाड़ी को, चाहे वह बालक हो या वृद्ध, व्यापार कुशल, व्यवसाय कुशल, उद्योगी, शिक्षित, व्यवहार कुशल और कला-पारखी बनाना होगा जिसका सुगम उपाय यही है कि मारवाड़ी उद्योगपति तथा व्यवसायी, मारवाड़ी युवकों को ट्रेनिंग दें, अपने फर्मों और औद्योगिक संस्थाओं में मारवाड़ी

युवकों और बालकों को काम दें तथा व्यवसायी गण जहां तक संभव हो, मालपत्र की खरीद में इस बात का खयाल रखें कि मारवाड़ी प्रतिष्ठानों से ही माल खरीदा जाय। बेचने के लिये चाहे जिस प्रकार बिक्री करें किंतु खरीदने में सतर्कता के साथ मारवाड़ी के ही यहां से खरीद की जाय।

इस कार्यक्रम में सब से अधिक सहायता पहुंचाने वाली नीति यह होगी कि धनवान मारवाड़ियों के लड़कों को भी शिक्षा-प्राप्त कर लेने के उपरांत विभिन्न औद्योगिक फर्मों और संस्थाओं में नौकरी की तरह से अनिवार्यतः काम में लगाया जाय और इस प्रकार कम से कम साल दो साल तक अमीर गरीब सभी मारवाड़ी युवक, खातापत्र, लेन देन, खरीद बिक्री, मशीन-पुर्जा, पारस्परिक व्यवहार से लेकर तकाज़ा वसूली तक के काम का क्रियात्मक अनुभव प्राप्त कर लें, उसके पश्चात वे स्वतंत्र रूप से अपना कार्यक्षेत्र चुनें। यह नीति उसी अवस्था में सफल होगी जब प्रत्येक मारवाड़ी, दूसरे मारवाड़ी को अपना अंग समझेगा और अपनी हर विषय की क्षमता में मारवाड़ी को ही प्रथम अवसर सहिष्णुता उदारता तथा उत्साह के साथ प्रदान करेगा, क्योंकि इस प्रकार हम बहुत कम समय में अपनी सामाजिक अवस्था को बहुत ऊंचा उठा लेंगे और तब हमें औद्योगिक जगत में छलांग मारने के लिये उपयुक्त, सहज प्रवृत्ति वाले तथा विश्वास पात्र कर्मचारियों का अभाव नहीं रहेगा। व्यापार, अर्थ, तथा औद्योगिक विश्व पर मारवाड़ियों की सत्ता का हमारा स्वप्न शीघ्र ही चरितार्थ हो जायगा जिसके कारण भारतीय राष्ट्र की मान्यता, शक्ति और सत्ता का स्थान भी पृथ्वी का शिरमौर बनेगा।

इस परिच्छेद को समाप्त करने के पूर्व इस स्थल पर हम मारवाड़ी भाइयों को इस बात से भी सावधान और सचेत कर देना चाहते हैं कि अपनी औद्योगिक दौड़ के सिलसिले में उन्हें वर्तमान राष्ट्र तथा राष्ट्र के इतर वर्गों की एक जबर्दस्त टक्कर का, एक संघर्ष का सामना करना होगा। कब और कैसे यह संघर्ष खड़ा होगा, यह बात अभी प्रगट रूप से नहीं कही जा सकती फिर भी वह अवश्यंभावी है।

औद्योगिक क्षेत्र में मारवाड़ियों को इस बात से भी सतर्क रहने की आवश्यकता है कि वे वस्तुओं के उत्पादन में अपना लक्ष्य वस्तु को सुंदर, मजबूत और कमदाम

में तैयार करना ही रखें। वैयक्तिक स्वार्थ, चीज़ अच्छी न देकर लाभ अधिक उठाने का लक्ष्य भयंकर होता है।

तीसरी सतर्कता इस बात की होनी चाहिए कि अब जो नये नये औद्योगिक प्रतिष्ठान खोले जायं उनका प्रथम स्थान पुस्तक में दिये हुए भारत के मान चित्र में लाल रेखा से दर्शित राजस्थान की सीमा के ही अन्दर होना चाहिए।

परिच्छेद ८

राष्ट्रीय संग्राम में मारवाड़ियों का भाग

जहां से भारतवर्ष जैसे हिन्दू राष्ट्र को परतंत्रता की यातना में पड़कर कष्ट झेलने का युग प्रारंभ होता है, देश की आज़ादी के प्रयत्न में राजस्थानी जनता का स्थान सब से आगे पाया जाता है और अपनी इसी आन और शान का फल था कि मुस्लिम काल में भी राजस्थानियों की शांति में विघ्न पहुंचाना किसी भी दूरदर्शी सत्ता ने उचित नहीं समझा। इसी प्रकार भारतीय इतिहास के उसके बाद वाले उत्थान पतन के अवसरों पर शक्ति-प्राप्त करने वाली सत्ताओं ने भी राजस्थान के साथ कोई छेड़ छाड़ नहीं की। अंगरेज़ों ने भी राजस्थान के साथ—अपनी राजनीति मता के अनुरूप—वही व्यवहार रखा जो समानता का व्यवहार कहा जाता है।

अंगरेजों के विरुद्ध भारतीय जनता का स्वातंत्र्य-युद्ध सर्व प्रथम सन् १८५७ ई० के विद्रोह के रूप में प्रगट हुआ। इस देश के प्रायः सभी वर्गों के आदमी इस विप्लव में शामिल हुए परन्तु मारवाड़ और राजस्थान की ओर से कोई क्रियात्मक कार्य नहीं किया गया। इसका भी एक बड़ा प्रबल कारण यह है कि डलहौज़ी की Doctrine of Lapse (हड़पनीति) जहां हमारे देश की मजबूत से मजबूत सत्ताओं पर भी ग़ालिब हो गई, और जिसका ज्वलंत उदाहरण महाराजा रणजीत सिंह द्वारा सुदृढ़ किये हुए पंजाब राज्य का मटियामेट हो जाना तथा खूंख्वार अकाली फौज का तिरोहित हो जाना है—वहीं राजस्थान की किसी छोटी से छोटी रियासत को भी हड़प करने की जुर्रत डलहौज़ी को नहीं हुई। राजस्थान वासियों के हक़ में वस्तुतः

यह एक नैतिक विजय ही थी। अङ्गरेज़ों की हड़पनीति में कितने ही राज्यों के दत्तक-पुत्रों को राज्याधिकार से पृथक कर दिया गया परन्तु राजस्थानी राज्यों पर कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया। कारण इसका चाहे कुछ भी हो, परन्तु सीधा अनुमान यही है कि राजस्थान के विद्रोह की कठोरता तथा उसके भयंकर परिणाम के ही प्रभाव को ध्यान में रखकर अगरेज़ों ने राजस्थान में कोई छेड़ छाड़ नहीं की।

दूसरी ओर जब हम यह देखते हैं कि १८५७ के विप्लव को दबाने में जहां सिख जैसी जातिने अङ्गरेज़ों को मदद करके देशका अहित किया, मारवाड़ी या राजस्थान की किसी जातिने कलंक का ऐसा कोई काम नहीं किया। कुछ राजस्थानी रियासतों ने अपनी रियासतों के अन्दर से वाग़ियों को गिरफ्तार अवश्य कराया परन्तु समान राजकीय संबन्ध और संधि के नाते उनका यह काम देश द्रोहात्मक नहीं हो सकता।

कुंवर प्रताप सिंह

देश में स्वाधीनता-प्राप्ति के वैध-आन्दोलन का सूत्रपात होने के साथ ही साथ बीसवीं शताब्दी में हमारे देश में गुप्त विप्लव-वादी आन्दोलन का भी सूत्र-पात हुआ। रासबिहारी बोस तथा शचीन्द्रनाथ सान्याल की संरक्षकता में सन १९०५ से १९१४ तक जो गुप्त विप्लव-वादी आन्दोलन चला उसमें राजपूताना के पवित्र चारण वंश में जन्म लेने वाले कुंवर प्रताप सिंह नामक युवक ने भाग लेकर राजस्थानीय भूमि और जाति को भी गौरवान्वित किया।

कुंवर प्रताप का परिवार राजपूताना के गण्यमान्य धनिक जमीदारों में गिना जाता था, किन्तु देश सेवा के निमित इस परिवार की सारी संपत्ति और जायदाद न्यौछावर हो गई, प्रताप की माता, प्रताप के पिता सरदार केशरी सिंह तथा उनके भाई आदि को देश सेवा के निमित्त गरीबी की कठिन स्थितियों का सामना करना पड़ा। रासबिहारी बोस तथा शचीन्द्रनाथ सान्याल के कार्य क्षेत्र में प्रताप सिंह भी क्रांतिकारी होकर राजपूताने में काम करने लगे। काम करते ही करते वह समय भी आया जब सारे देश में धर पकड़ शुरू हो गई। दिल्ली षडयन्त्र-केस (प्रथम) में कुंवर प्रताप सिंह भी पकड़े गये और उन्हें कठिन कारावास का दण्ड मिला। पुलिस इनके पीछे, सारा भेद बता देने के लिये, बड़े हठ के साथ, अनेकों प्रलोभनों

समेत पड़ी रही परन्तु इस धीर नौजवान ने अन्त में पुलिस से यही कहा—"मैंने निश्चय किया है कि कोई भी बात नहीं कहूंगा, क्योंकि न कहने से केवल एक ही (मेरी) माता बिलखती रहेगी परन्तु यदि मैं सब कुछ खोल दूंगा तो अनेकों माताओं को बिलखना पड़ेगा।" २२ वर्ष की छोटी सी आयु में बरेली जेल के सीखचों के ही अन्दर स्वतन्त्रता के इस युवक पुजारी की आत्मा शरीर का बन्धन तोड़ कर सदा के लिये मुक्त हो गई।

दिल्ली षडयन्त्र केस के मामले में प्रताप के बहनोई भी पकड़े गये थे परन्तु प्रमाणाभाव से वे छोड़ दिये गये थे। प्रताप के पिता सरदार केशरी सिंह को कोटा में ही एक राजनीतिक मामले में आजन्म कारावास का दण्ड दिया गया था। इस प्रकार प्रताप का सारा परिवार ही देश की बलिवेदी पर चढ़ गया।

स्व० सेठ जमनालाल बजाज

जहां से वर्तमान गांधी-युग का असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ होता है, उसकी ओर ध्यान देते ही हमारे सामने स्वर्गीय श्री जमनालाल बजाज की मूर्ति प्रत्यक्ष सी हो जाती है। आपका जन्म एक साधारण ग़रीब के घर में हुआ था परन्तु आपके चाचा ने, जो सुप्रसिद्ध 'बच्छराज कम्पनी' के अति सम्पन्न प्रोप्राइटर थे, आपको अपना दत्तक पुत्र मान लिया। स्व० सेठ बच्छराज जी आपके पितामह थे। यद्यपि जमनालाल जी विशेष पढ़े लिखे न थे, तो भी १७ वर्ष की आयु में ही आपके ऊपर उक्त फर्म का सारा उत्तरदायित्व आ पड़ा जिसे आपने बड़ी ही योग्यता के साथ सँभाला। आपके पितामह स्व० श्री बच्छराजजी को जैसी कुछ राज-प्रतिष्ठा प्राप्त थी, उसी के अनुकूल आपको भी ब्रिटिश राज्य की ओर से सम्मान मिलता रहा। १९ वर्ष की अवस्था में आप आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाये गये तथा इसके ८ वर्ष बाद आपको राय बहादुर की पदवी भी मिली। इतना धन-वैभव आदि होते हुए भी आपके स्वभाव में वही सहृदयता और गरीबों के प्रति सहानुभूति का भाव भरा हुआ था। आप की व्यापारिक कुशलता इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि भारत के बाहर योरोप के बाज़ारों में भी आपकी जबर्दस्त साख थी।

आपको अखबार पढ़ने का शुरू से ही बड़ा शौक था। अतएव सदा ही आप राजनीतिक घटनाचक्रों से अवगत रहते थे। वर्धा के सुप्रसिद्ध मारवाड़ी राष्ट्रसेवी तथा वकील श्रीकृष्णदास जाजू की सुसंगति से आपको देश के प्रमुख कर्णधारों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ और जाजूजी के साथ आप कांग्रेस के क्षेत्र में आने लगे। इसी अवसर पर स्व० लोकमान्य तिलकसे आपका परिचय हुआ। आपके जीवन पर गांधीजी के आदर्श का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। महात्मा गांधी आपको अपना धर्म-पुत्र मानते रहे हैं।

स्व० बजाज जी सन् १९१५ ई० से राष्ट्रीय क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। पहले पहल आपको ६ महीने की सजा हुई। सन् १९३० ई० के आन्दोलन में आप दो बार जेल गये। आपके पुत्र-पुत्री और आपकी धर्म पत्नी भी आन्दोलन के सिलसिले में जेल गईं। दिसंबर १९४० ई० में आपने फिर सत्याग्रह करके जेल यात्रा की।

सेठ जमनालालजी बजाज कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी के एक अनन्य सदस्य तथा कोषाध्यक्ष रहे हैं। अपने जीवन कालमें आपने लगभग ३५ लाख रु० का दान उन्हों ने राष्ट्र-संग्राम में दिया है। गांधी-सेवा संघ, ग्राम उद्योग संघ, अखिल भारतीय चर्खा संघ, अखिल भारतीय साहित्य-परिषद्, अ० भा० राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति, तथा महिलाश्रम जैसी लोक विख्यात संस्थाओं के निर्माण में आपका प्रमुख हाथ रहा है। आपका स्वदेश-प्रेम, खादी-प्रेम, सादा जीवन, दान और त्याग इतना महान रहा कि आपके निधन से भारतीय राष्ट्र को पहुंचने वाली क्षति कभी भी पूरी न होने वाली समझी जा रही है। मारवाड़ी समाज अपने उस आदर्श-पुरुष के कारण गौरवान्वित है।

श्रीकृष्ण-दास जाजू

आप गांधी-सेवा संघ, के कर्णधार और महात्मा गांधी के अनन्य भक्त हैं। आप का सारा जीवन ही खादी, और महात्मा जी के रचनात्मक कार्यक्रम में लग चुका है। आपने स्वातंत्र्य-संग्राम में आने वाले सभी कष्टों को सच्ची लगन के साथ बर्दाश्त किया है। वर्धा तथा देश के राष्ट्रीय हल्कों में आप का स्थान आदरणीय माना जाता है।

डा० राम मनोहर लोहिया

"विशाल-भारत" के "यूरोप" अंक के सम्पादक सुयोग्य मारवाड़ी लेखक श्री बालकृष्ण गुप्त ने डा० राममनोहर लोहिया के परिचय में निम्न आशय के विचार प्रगट किये हैं :—

"बात पुरानी हो चुकी है जब कलकत्ता के ताराचंद दत्त स्ट्रीट स्थित मारवाड़ी छात्र-निवास में, इण्टर मीजिएट के विद्यार्थी के रूप में मैं दाखिल हुआ था और तभी मैंने देखा था एक तख़्ते पर बैठा हुआ ठिंगने क़द का एक नौजवान बिल्कुल सीधे सादे वेश में चश्मा लगाये हुए भारत की आर्थिक अवस्था के विषय में बड़ी तेज़ अङ्गरेजी में कुछ बोल रहा था। सन् १९२६ ई० से १९२९ तक राममनोहर से हमारी घनिष्ठता बढ़ गई। उनके साथ हम भी सभा-समितियों में घूमते रहते थे। छात्र-निवास के प्रत्येक डिबेट में राममनोहर का भाषण होता था। उनकी प्रवृत्ति कभी भी मारवाड़ी समाज की अर्थ-प्रधानता की ओर नहीं रही और न कभी उन्हें नेतागीरी की ही लिप्सा हुई। साहित्य, राजनीति और विदेशों की चर्चा में ही समय कटता था। कलकत्ता कांग्रेस के समय में तो हम लोग अपनी पाठ्य पुस्तकों का ध्यान भी भूल गये थे। इसी समय से हम लोगों को सोशलिज़्म की हवा लगनी शुरू हुई थी। हम विश्वव्यापी आन्दोलनों के समर्थक और मानव-जाति की उन्नति के उपायों के समर्थक विद्यार्थी थे इसलिये पाठ्य पुस्तकें रटकर डिग्री प्राप्त कर लेना हमारा उद्देश्य ही नहीं रहा था फिर भी हम लोग बी० ए० पास हो गये।

बी० ए० पासकर राम मनोहर जर्मनी को चलते बने और २ वर्षों तक हमारे और उनके बीच कोई संपर्क नहीं रहा। १९३२ में रूस से ब्रिटेन जाते समय मैं बर्लिन में उतर पड़ा। अकस्मात् एक स्थान पर पुनः राममनोहर से भेंट हो गई। उन दिनों जर्मनी में नाज़ीवाद का प्रभाव ज़ोर पकड़ रहा था और समाजवादी या साम्यवादी विचारवालों के लिये पिट जाने या मार डाले जाने का बराबर भय रहता था परन्तु राम मनोहर ने कभी भी उस भय को पास नहीं आने दिया। धारा प्रवाह जर्मन भाषा में वे बर्लिन के मज़दूर मदल्लों में, वोडिङ्ग द्युनब्रन, नौयकूहन आदि में रात के समय जाकर अपने साम्यवादी विचारों का प्रचार करते थे, इनका उस समय भी सर्वत्र आदर और स्वागत किया जाता था।

राम मनोहर ने कभी भी किसी साम्यवादी दल विशेष में अपना नाम नहीं लिखाया। सन् १९३६ ई० से वे कांग्रेस के अन्दर सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की तरकीबें सोचने लगे। उनका सोशलिज़्म सदैव ही इतना विशाल रहा है कि वे उसके अंतर्गत खादी और अहिंसा को भी प्रतिष्ठित किये रहे हैं। इस विचित्र प्रतिभाशाली युवक ने साम्यवाद को अपने ही बुद्धिबल से उस सांचे में ढाल दिया है कि आज महात्मा गांधी भी उसकी प्रशंसा करते हैं।"

डा० राम मनोहर लोहिया कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के एक स्तम्भ हैं जिन्हों ने किसानों, मज़दूरों और गरीबों की हित साधना में ही अपने जीवन के महत्वपूर्ण समय को खर्च किया है तथा कई बार जेल की यंत्रणायें सहन की हैं। आप भारतीय राष्ट्र के ऐतिहासिक पुरुष हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि निकट भविष्य में ही भारतीय राजनीति में उनका अप्रतिम स्थान होगा। १६ सितंबर १९४० को महात्मा गांधी ने जिस लोहिया के संबंध में कहा था कि—"जब राममनोहर लोहिया और जयप्रकाश नारायण जेल में पड़े हुए हैं, मैं चुपचाप कैसे बैठ सकता हूं? मैंने उनसे अधिक वीर और स्पष्ट आदमी आज तक नहीं देखे"—उसी लोहिया की महानता के कारण आज हमारा समाज गौरवान्वित कैसे नहीं है?

लाला श्यामलाल

केन्द्रीय असेम्बली तथा कांग्रेस के अधिवेशनों के अवसर पर बहुत से लोगों ने प्रचण्ड वक्ता लाला श्यामलाल जी को देखा होगा। आप अग्रवाल मारवाड़ी हैं। आपका मूल निवास स्थान सिरसा था जहां से लगभग ५० वर्ष पूर्व आप हिसार चले आये थे। आप सन १९२१ ई० में वकालत छोड़कर सत्याग्रह करने लगे फलतः आपको २ वर्ष की सजा हुई। बाद में आप साबरमती आश्रम में रहने लगे। आप कांग्रेस के टिकट पर २ वार पञ्जाब प्रान्तीय धारा सभा के सदस्य बने तथा सन १९४० में आप केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य हुए। आपने सन १९४१ में वृद्धावस्था में भी सत्याग्रह किया। आपकी धर्मपत्नी तथा पुत्र डा० मदनगोपाल जी भी तपाये हुए राष्ट्रकर्मी हैं।

श्रीमती चन्द्रबाई

हिसार के सुप्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्त्ता लाला श्यामलाल की धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रदेवी पञ्जाब की प्रथम मारवाड़ी सत्याग्रही महिला हैं। अपने पति तथा पुत्र की ही तरह आपने भी राष्ट्र सेवा के व्रत का अच्छा निर्वाह किया है। वीरपति की वीरपत्नी तथा वीर-प्रसवा का आदर्श उपस्थित करते हुए आपने फरवरी सन १९४१ में भी सत्याग्रह किया फलतः आप गिरफ्तार कर ली गईं। आपको कानून भंग करनेके अपराध में ६ महीने की सजा दी गई।

श्री शिवदासजी डागा एम० एल० ए० (केन्द्रीय)

आपका जन्म संवत् १९४२ बि० में रायपुर (सी० पी०) में हुआ। आप बीकानेरी माहेश्वरी हैं। सन १९२० ई० में आपने सत्याग्रह संग्राम के सिलसिले में आनरेरी मजिस्ट्रेट के पद को ठुकरा दिया जिसके बाद से आप एक उच्च कांग्रेसी नेता का दायित्व बहन करते आ रहे हैं। आप १९२३, २६, और २९ में (मध्य प्रान्तीय) धारा सभा के स्वराज्य-पार्टी वाले सदस्य रहे। आपको १९३० के आन्दोलन में सजा हुई। त्रिपुरी कांग्रेस के समय आप स्वागत समिति के उपाध्यक्ष तथा कोष-संग्रह कमेटी के अध्यक्ष रहे।

श्री जमनालाल चोपड़ा एडवोकेट

आपका जन्म भी रायपुर (सी० पी०) में ही हुआ। आप जोधपुर के मोहावर ओसवाल हैं। आप रायपुर के हरिजन बोर्डिङ्ग तथा अनाथालय आदि संस्थाओं के मन्त्री तथा सभापति रह चुके हैं। सन १९४० के सत्याग्रह आन्दोलन में आपको ६ महीने की सख्त सजा दी गई।

श्री सुगनचन्द जी लूणावत

आप मध्यप्रान्तीय धारा सभा के सबसे कम उम्र के मारवाड़ी सदस्य तथा बरार प्रान्त के राजनीतिक क्षेत्र के लब्ध प्रतिष्ठ कार्यकर्ता हैं। आपका निवास-स्थान धामन गांव है। आप कई बार सत्याग्रह आन्दोलन के सिलसिले में जेल जा चुके हैं।

श्री शुकदेव अग्रवाल

आप मध्य-प्रान्तीय कांग्रेस कार्य-कारिणी समिति के सदस्य तथा कटंगी तहसील कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष तथा डिस्ट्रिक्ट कौंसिल भण्डारा के चेयरमैन रह चुके हैं। सन १९२३ ई० के प्रसिद्ध नागपुर झंडा सत्याग्रह में आपको सजा हुई। १९३२ ई० तक पुनः दो बार आप जेल गये। जनवरी १९४२ में पुनः युद्ध विरोधी नारे लगाते हुए आप पकड़ कर जेल भेजे गये।

श्री बैजनाथ केडिया

आप कलकत्ता के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्ता समाज-सेवक और साहित्यिक हैं। आप कई बार जेल जा चुके हैं। जनवरी १९४१ में भी आपने बनारस से ६ मील दूर बनियापुर में व्यक्तिगत रूप से सत्याग्रह किया और जेल गये।

श्री हनुमान प्रसाद अग्रवाल

आप मटेरा के (बहराइच, यू० पी०) श्री हनुमान पुस्तकालय के सञ्चालक तथा राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं। सबसे पिछली बार आपने जनवरी १९४१ को सत्याग्रह किया जिसमें आपको ९ मास की सजा तथा २५) जुर्माने का दण्ड मिला।

श्री जगदीश प्रसाद अग्रवाल

आप भी मटेरा के निवासी राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं। जनवरी १९४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रह में आपको ४ महीने की कैद तथा २००) जुर्माने की सजा मिली। श्री मथुरा प्रसाद अग्रवाल भी मटेरा के तेजस्वी राष्ट्रीय-योद्धा हैं।

श्री हरनारायण जैन

आप भागलपुर के सुप्रसिद्ध समाज और राष्ट्र क्षेत्र के कार्यकर्ता रहे हैं। बिहार प्रान्त में सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में आप बहुत पहले समय से काम करते रहे हैं। युवक समाज ने आपको "गुरूजी" की उपाधि दी है। सबसे पिछली बार १९४१ ई० में आपको सत्याग्रह करने के कारण ६ महीने की कैद तथा ५०) जुर्माने की सजा मिली थी।

श्री जुगुल किशोर ऐडवोकेट

आप हिसार के सुप्रसिद्ध राष्ट्र-कर्मी हैं। आपने राष्ट्र सेवा के व्रत में हाईकोर्ट की वकालत का परित्याग कर दिया है। भद्र अवज्ञा आन्दोलन के सिलसिले में आप कई बार सजा काट चुके हैं।

श्रीमती किशोरी देवी

आप महात्मा गांधी के वर्धा आश्रम में २ वर्ष तक रह चुकी हैं। मारवाड़ी महिलाओं में सत्याग्रह के नाते आपका स्थान प्रथम कोटि में आता है। सब से बाद में आपका सत्याग्रह ३ फरवरी १९४१ ई० में बनारस जिले के सैयद राजा नामक स्थान में हुआ और वहीं आप गिरफ्तार कर ली गईं।

श्रीमती श्रीदेवी मुसद्दी

आप कानपुर के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्ता श्री रामचन्द्र जी मुसद्दी की धर्म-पत्नी तथा कानपुर की प्रसिद्ध समाज सुधारक तथा राष्ट्रीय कार्यकर्त्री हैं। आप कानपुर की प्रथम महिला-सत्याग्रही थीं जब सन १९४१ में आपने सत्याग्रह किया और सजा काटी।

त्यागमूर्ति श्री पूनमचन्द रांका

हाथ की कती और बुनी हुई काली कमली कांधे पर डाले हुए, नागपुर नगर में रांका जी कांग्रेसी हलचलों में सर्वत्र देखे जाते हैं। आप सन १९२० से बराबर गांधी युग में कांग्रेस की सेवा कायिक-वाचिक और मानसिक रूप से करते आ रहे हैं। महात्मा गांधी के आप अत्यन्त प्रिय-पात्र हैं। आप ६-७ बार जेल जा चुके हैं। नागपुर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष-पद पर आपने अपना उत्तर-दायित्व बड़ी खूबी से निभाया है तथा अपनी वैयक्तिक संपत्ति का बहुत बड़ा भाग आपने देश-हित के कार्य में दान कर दिया है।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती धनवती बाई रांका भी अपने स्वनामधन्य पतिदेव की सुयोग्य पत्नी हैं जो खादी-धारण, चर्खा चलाने और राष्ट्रीय आन्दोलन में कभी पीछे नहीं रहतीं। आप भी जेल जा चुकी हैं।

श्रीमती चम्पादेवी भारुका

मध्यप्रान्तीय कांग्रेस सरकार के मिनिष्टर तथा प्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्ता श्री छगन लाल भारुका की आप धर्मपत्नी हैं। आपने सबसे पहले सन १९३२ ई० में राष्ट्रीय संग्राम में सक्रिय भाग लिया तथा कैद की सजा भोगी थी, उसके उपरान्त आप अपने पति के साथ जभी समय आता है तभी आन्दोलन में प्रविष्ट हो जाती हैं।

श्रीमती किशोरी देवी डोलिया

श्रीमती किशोरी देवी लक्खीसराय (बिहार) के श्री चौथमल जो डोलिया की धर्मपत्नी हैं। पति के प्रगतिशील विचारों में आपने सदैव योगदान दिया है। आपने सन १९३५ ई० में बड़े साहस के साथ परदे का परित्याग कर दिया और तभी से आप बराबर सामाजिक तथा राष्ट्रीय क्षेत्रोंमें काम कर रही हैं। ३ वर्ष तक महिलाश्रम वर्धा में रहीं फलतः आप राजनीतिक ज्ञान में बहुत प्रवीण हो गई हैं। आपने हिन्दी की मध्यमा तथा विशारद परीक्षायें पास की हैं। सन १९४१ के सत्याग्रह में आपको ३ मास की कैद की सजा दी गई।

श्रीमती पुष्पावती कोटेचा

आप ओसवाल समाज की प्रथम सत्याग्रही महिला हैं। ओसवाल समाज के प्रसिद्ध कोटेचा घराने के श्री रतनलाल कोटेचा की धर्मपत्नी हैं, जिन्हों ने सन् १९४१ में सूरत में सत्याग्रह किया। आपको १ दिन की सजा तथा १००) जुर्माने का दंड मिला था, आपने जुर्माना न देकर २ महीने की अतिरिक्त कैद की सजा साबरमती जेल में काटी है।

श्री बालकृष्ण भंडारी

अप बी० ए० एल-एल० बी० (वकील) होकर भी तरुणावस्था में राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रविष्ट हो गये। आप अमरावती के उत्साही कार्यकर्ता समझे जाते हैं। सन् १९४१ के आन्दोलन में आपको ४ महीने की क़ैद तथा २००) जुर्माने की सजा दी गई थी।

श्री रामस्वरूप अग्रवाल

आपके पूर्वज हिसार जिले के थे जो संवत् १९७२ में जमशेदपुर आकर बस गये थे। आप का राष्ट्रीय जीवन सन् १९२१ ई० से प्रारम्भ हुआ। आपने लोकमान्य तिलक की स्मृति में, अथक परिश्रम से काम करके, एक पुस्तकालय स्थापित किया है। आपने १९२१ के सत्याग्रह में बड़ा काम किया। १९४१ में भी आपने सत्याग्रह करके जेल यात्रा की।

श्री भोलानाथ शाह

श्री भोलानाथजी शाह का जन्म संवत् १९४१ विक्रमी में उदयपुर (जयपुर स्टेट) में हुआ था। आप १६ वर्षकी अवस्था में, प्रारंभ की शिक्षा अपनी जन्म भूमि में पूरी करके, अपने बहनोई के पास कटक (उड़ीसा) चले आये थे। व्यवसायिक अनुभव से आपने पुरी में अपना निजका व्यवसाय खोला और उसके बाद से सार्व-जनिक सेवा के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए, जिसकी प्रेरणा आप को श्री रामरिच्छपाल झुनझुनूं वाला (कलकत्ता) से प्राप्त हुई। आप अपनी कोटि के निराले व्यक्ति हैं। जहांतक भी दीन दुःखी की सेवा का क्षेत्र हैं, आप वहांतक बढ़े हुए हैं और उसके साथ ही राष्ट्रीय संग्राम के शूरमा भी हैं। आपने सन् १९३० सन् १९३३ तथा १९४१ के सत्याग्रह आन्दोलनों में सक्रिय योगदान दिया और जेल गये।

श्रीमती महादेवी केजड़ीवाल

संथाल परगना जिला कांग्रेस कमेटी के सभापति तथा जिला बोर्ड के चेयरमैन पदों पर आसीन रहने वाले श्री वैद्यनाथ धाम के प्रसिद्ध मारवाड़ी नागरिक बाबू मोती लालजी केजड़ीवाल की आप योग्य धर्म पत्नी हैं। आप संपन्न घरों की बहू-बेटी हैं। आपके हृदय में दीन दुःखियों की सेवा का भाव भरा रहता है। अपने राष्ट्रीय कार्य कर्ता पतिदेव के गुणों के अनुकूल ही आपने भी १९४१ ई० में बड़े जोर शोर से राष्ट्रीय आन्दोलन का साथ दिया फलतः आप जेल भी गईं।

श्रीमती विश्वम्भर नाथ शर्मा

आप नागपुर के प्रसिद्ध साहित्यिक तथा पत्रकार श्री विश्वंभर नाथ शर्मा की

धर्म-पत्नी हैं। आप का स्वभाव अत्यंत कोमल तथा शांत है। राष्ट्रीय आंदोलन में आप सक्रिय कार्य करती हैं। आप भी जेल की सजा भुगत चुकी हैं।

श्री मगनलाल बागड़ी

नागपुर के उग्रवादी देश-सेवकों में मगनलाल बागड़ी का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। आप को बम काण्डों तथा षडयंत्रों के सिलसिले में कई बार जेल की कठिन यंत्रणाओं का सामना करना पड़ा है फिर भी आप अपने पथ से विचलित नहीं हुए। फारवर्ड ब्लाक का भी काम आपने बड़े साहस और निर्भीकता के साथ किया। क्रान्तिवादी आन्दोलन में आप कभी भी पीछे नहीं रहते।

बाबू श्रीप्रकाशजी

आप युक्त प्रांत के विख्यात उच्च पदस्थ कार्य कर्ता हैं। जब जब सरकारी दमन-चक्र चला है, तब तब आप को जेल की सजा काटनी पड़ी है। आप को केंद्रीय असेंबली की सदस्यता में कांग्रेस के प्रतिनिधित्व का दायित्व सौंपा गया है जिसे आपने योग्यता के साथ निवाहा है। आप बनारस के रहने वाले हैं। आप को वक्तृत्व शक्ति से ब्रिटिश नौकर-शाही सदैव भयभीत रहती रही है।

श्री पन्नालाल देवड़िया

आप नागपुर के विख्यात नागरिक तथा कांग्रेस के बहादुर सैनिक हैं। आप की निर्भीकता महात्मा गांधी तक विख्यात है। कांग्रेस की सेवा के जोश में आप कभी कभी सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को भी भूल जाते हैं और वर्धा से हिदायतें आने पर आप को होश आता है तब फिर आप अनुशासन के वृत्त में आकर काम करने लगते हैं। जनरल अवारी तथा स्व० श्री अभ्यंकर के साथ आप को कई बार बेतों की सजा मिली। आप कई बार जेल की सजा काट चुके हैं और उसी राष्ट्रीय पथ पर आरूढ़ हैं।

आप की धर्म-पत्नी श्रीमती विद्यावती देवड़िया भी राष्ट्रीय आन्दोलन की वीर सेविका हैं। आन्दोलन के समय हाथ में झंडा लेकर आप पुलिस फौज-दल की तनी हुई संगीनों के बीच से रास्ता चीरती हुई निकल जाती हैं। आप भावुक कवि-त्रिणी भी हैं। आप कई बार जेल की सजा भोग चुकी हैं।

श्री छगनलाल भारूका

आप मध्य प्रांत के संभ्रान्त रईस और कांग्रेस के कष्ट सहिष्णु तथा योग्य कार्यकर्ता हैं, फलतः खरे मिनिष्ट्री भंग होने के बाद रविशंकर शुक्ल की मिनिष्ट्री में आप को मिनिष्टर का उत्तरदायित्व सौंपा गया जिसमें आपने अद्भुत योग्यता का परिचय दिया। आप कई बार जेल की सजा काट चुके हैं। आज कल पुनः आप मिनिष्टर का दायित्व पूर्ण कर रहे हैं।

सेठ गोविन्ददास मालपाणी

भारतीय स्वतंत्रता के संग्राम में सेठ गोविन्ददास मालपाणी का नाम प्रमुख रूप में स्मरणीय है। आपने कांग्रेस के उच्च पदों पर रहकर अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह प्रशंसनीय ढंग से किया है, कई बार आप जेल जा चुके हैं। धन तथा धरती के रूप में भी आपने कांग्रेस तथा सार्वजनिक क्षेत्र में बड़ी सहायता पहुँचाई है। आप सुप्रसिद्ध साहित्यिक और नाटककार भी हैं। त्रिपुरी कांग्रेस के आप स्वागताध्यक्ष बनाये गये थे। आजकल आप विधान परिषद् के सदस्य हैं।

माननीय बाबू ब्रजलाल बियाणी

जिस प्रकार राष्ट्रीय क्षेत्र में नागपुर प्रान्त में रांका जी तथा महाकोशल में सेठ गोविन्ददास जी मारवाड़ी समाज के एक स्तम्भ समझे जाते हैं उसी प्रकार श्री बियाणी जी विदर्भ प्रान्त के कर्णधार हैं। आपका लगभग सारा जीवन ही राष्ट्रीय सेवा तथा राजनीतिक संकटों के झेलने में व्यतीत हुआ है। जब जब स्वाधीनता का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और ब्रिटिश सरकार का दमनचक्र फिरा तब तब विदर्भ प्रान्त में उस चक्र का प्रथम प्रहार बियाणी जी पर ही हुआ। श्री बियाणी जी प्रसिद्ध साहित्यिक, भावुक, समाज-सेवक तथा मिलनसार प्रकृति के नेता हैं।

श्री हीरालाल शास्त्री

श्री हीरालाल शास्त्री भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में अपना महत्व-पूर्ण स्थान रखते हैं। आप जयपुर राज्य प्रजामण्डल के निर्माता और लोक-विख्यात कार्यकर्त्ता हैं जिन्हें कई बार राजकीय सत्ता का कोप-भाजन बनना पड़ा है। इतना ही नहीं आप

मारवाड़ी समाज के बहुत ही उच्च श्रेणी के साहित्यिक पत्रकार तथा कवि हैं। हिन्दी-काव्य में आपके गीत अपनी शैली के अनूठे होते हैं। आप जयपुर से "लोकवाणी" नामक पत्र निकालते हैं।

राजस्थानी राज्यों में प्रजामण्डल की ओर से राष्ट्रीय क्षेत्र में काम करनेवालों में जोधपुर लोक-परिषद् के श्री जयनारायण व्यास, तथा मेवाड़ प्रजामण्डल के श्री बलवन्त सिंहजी मेहता साहित्यरत्न तथा श्री दयाशंकर श्रोत्रिय विशारद् के नाम भी उल्लेखनीय हैं। प्रजामण्डल के यह विख्यात कार्यकर्त्ता देश-भक्त होने के साथ ही साथ साहित्यिक क्षेत्र में अपनी प्रबल गति रखते हैं।

राष्ट्र-सेवी कवि

हमारे समाज के कुछ साहित्यिक और कवि अपनी लेखनी के ही द्वारा देश-सेवा के क्षेत्र में यत्किंचित् काम किया करते हैं और इतने से भी उन्हें राष्ट्र-सेवकों की सूची से पृथक नहीं रखा जा सकता—इन साहित्यिकों और लेखकों में सर्व श्री सत्यनारायण शर्मा रांची, नाथूराम शर्मा सूरदास झरिया, नेतराम शर्मा चिरकुण्डा (मानभूमि), रामसरूप शर्मा चिरकुण्डा, फूलचन्द जी परशुरामपुरिया, भाई निरंजनलाल भगानियां बी० ए० बी-एल० (धनवाद), नागरमल लिल्हा (झरिया), किशनलाल सिंहानियां "कृष्ण" (पुरुलिया), व्रजमोहन अग्रवाल (झरिया), भाई जयदेव अग्रवाल, श्री हृषीकेशशर्मा, श्री मन्नारायण अग्रवाल, प्रिंसिपल कमर्शियल कालेज वर्धा, श्री भालचन्द्र शर्मा कलकत्ता तथा श्री रामदयाल वैद्य पंजाब, के नाम ऐसे ही हैं जो अपने विचारों से, लेख और कविताओं से, सामाजिक सुधार के प्रयत्नों के मार्फत राष्ट्रीय सेवा का कर्त्तव्य पूरा करते रहते हैं।

श्री सीतारामजी सेकसरिया

बड़ाबाजार, कलकत्ता के समुन्नत और समृद्ध मारवाड़ी समाज में, श्री सीताराम जी सेकसरिया की राष्ट्र-सेवा, कष्ट सहिष्णुता और त्याग का जीवन अपना अप्रतिभ स्थान रखता है। आप बड़ाबाजार के कांग्रेसी क्षेत्र के एक सफल कार्यकर्त्ता तथा एक सफल समाज-सेवक हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन के सिलसिले में आपको कई बार सजा मिल चुकी है।

श्री बसन्तलाल मुरारका

बड़ाबाज़ार कलकत्ता का मारवाड़ी समाज श्री मुरारका जी की सामाजिक और राष्ट्रीय सेवाओं का संतत ऋणी है। आपकी आत्मा सामाजिक सेवाओं के प्रति एक क्षण के लिये भी चैन नहीं लेती उसी प्रकार राष्ट्रीय क्षेत्र में भी आपने कम कष्ट नहीं सहे हैं। आप विशुद्ध खादीधारी, गांधीभक्त हैं। कांग्रेस के टिकट पर आप बङ्गाल असेम्बली के सदस्य चुने गये हैं।

श्री ईश्वरदास जालान

यद्यपि श्री जालान जी राष्ट्रीय संग्राम में जेल नहीं गये तो भी आपकी राष्ट्रीय सेवायें कभी कम नहीं समझी गईं और इसीके फलस्वरूप आप भी कांग्रेस के टिकट पर बङ्गाल असेम्बली के सदस्य चुने गये हैं।

सिर्फ महात्मा-गांधी के सत्याग्रह आन्दोलन में मारवाड़ी नागरिकों ने जैसा कुछ भाग लिया है, सन १९४१ के संग्राम के अनुसार उसकी प्रान्त वर तालिका इस प्रकार है :—

प्रान्त	पुरुष संख्या	स्त्री संख्या	जोड़
१—मध्यप्रान्त	७२	३	७५
२—संयुक्त प्रान्त	३०	३	३३
३—बम्बई गुजरात	११	१	१२
४—पञ्जाब	१०	१	११
५—बिहार	६	१	७
६—इन्दौर राज्य	४	३	७
७—अजमेर मेरवाड़ा	६	०	०
८—बङ्गाल	४	०	०
९—दिल्ली	३	०	३
१०—मद्रास	२	०	२
११—उड़ीसा	१	०	१
कुल जोड़	१४९	१२	१६१

भारत के राष्ट्रीय-संग्राम में भाग लेने वाले कुछ स्त्री-पुरुष मारवाड़ियों की एक अपूर्ण सूची इस प्रकार है :—

महिलायें

मध्य प्रान्त :—

१—श्रीमती विद्यावती देवड़िया

२—श्रीमती राधादेवी माहेश्वरी जबलपुर

३—श्रीमती शान्तीदेवी शर्मा

४—श्रीमती विश्वम्भरनाथ शर्मा

इन्दौर राज्य :—

१—श्रीमती राधादेवी पंसारी इन्दौर

२—श्रीमती रुक्मिणी देवी इन्दौर

संयुक्त प्रान्त :—

१—श्रीमती किशोरीदेवी ड्रोलिया "विशारदा"

२—श्रीमती श्रीदेवी मुसद्दी

३—श्रीमती रामवती देवी अग्रवाल कानपुर

बंबई तथा गुजरात :—

१—श्रीमती बासन्ती एन० सराफ बंबई

पंजाब :—

१—श्रीमती चन्द्रादेवी हिसार

बिहार :—

१—श्री मती महादेवी केजड़ीवाल वैद्यनाथधाम

पुरुष-वर्ग

मध्यप्रांत :—

१ श्री कमलनयन बजाज

२ सेठ गोविन्ददास मालपाणी

३ श्री छगनलाल भारुका

४ मा० ब्रजलाल जी बियाणी

५ पूनमचन्द रांका

६ श्री भीखूलाल चाण्डक

७ " मदनलाल चौधरी एलिचपुर

८ " कन्हैयालाल खादीवाले खण्डवा

९ " शिवदास डागा

१० " बद्रीनारायण अग्रवाल बालाघाट

११ " पुखराज कोचर एम० एल० ए० हिंगनघाट

१२ " ज्योतिरतन लाल जैन, रायपुर

१३ श्री जमनालाल चोपड़ा एम० एल० ए० रायपुर।

१४ " मन्नालाल जैन अमरावती।

१५ " दीपचंद गोठी एम० एल० ए० बेतूल।

१६ " ओंकारदत्त राठी, मलकापुर।

१७ " खुशाल चंद एम० एल० ए० चान्दा।

१८ " गुलाबचंद चौधरी एम० एल० ए०।

१९ " भैरोंलाल तातेड़, बैतूल।

२० " जेठमल तातेड़ बैतूल।

२१ " एम० एल० बाकलीवाल, एम० एल० ए० दुर्ग।

२२ " सुगन चंद लूणावत।

२३ " सेठ सुखदेव अग्रवाल, गोंदिया।

२४ " आर० आर० अग्रवाल, यवतमाल।

२५ " सेठ मूलचंद बागड़ी, रायपुर।

२६ " मूलचंद बागड़ी, गोरतीग्राम।

२७ " गोविन्दराम शर्मा पालीवाल, आर्वी।

२८ " साहित्यरत्न विश्वनाथ सारस्वत।

२९ श्री जयकृष्ण खुरड्डा, अमरावती।
३० " पूरणलाल अग्रवाल, जबलपुर।
३१ " गोविन्दराम सराफ, काटोल।
३२ " मंगलचंद सिंघी, गोटे गांव।
३३ " द्वारकादास पुगलिया, रायपुर।
३४ " कन्हैयालाल अग्रवाल एलिचपुर।
३५ " काल्ढराम जैन, बिलासपुर।
३६ " रतनलाल अग्रवाल एलिचपुर।
३७ " माणिकलाल सोमाणी, अकोला।
३८ " सेठ जसकरणजी डागा रायपुर।
३९ " कन्हैयालाल लूनिया।
४० " कन्हैयालाल बागड़ी रायपुर।
४१ " सेठ ताराचद सुराणा, यबतमाल।
४२ " रामकुमार अग्रवाल, यबतमाल।
४३ " कन्हैयालाल इन्नाणी, कारंजा।
४४ " सोहागमल लूणिया।
४५ " कन्हैयालाल बाजोरी, रायपुर।
४६ " द्वारकादास पुगलिया।
४७ " सिंहल काल्ढराम जैन, कटनी।
४८ " हीरालाल साह दोहद।
४९ " सज्जनलाल तलाटा, दोहद।
५० " हर नारायण राठी, गाडरवारा।
५१ " सूर्यमल सराफ, हरदा।

संयुक्त प्रांत :—

१ श्री श्रीप्रकाश एम० एल० ए० (केंद्रीय)।
२ " राय अमरनाथ अग्रवाल एम० एल० ए० इलाहाबाद।

३ श्री बानूमल किशनपुर।

४ " हीरालाल शाह, भुवाली।

५ " सेठ होतीलाल बागला एम० एल० ए० हाथरस।

६ " महावीर प्रसाद पोद्दार गोरखपुर।

७ " रामस्वरूप गुप्त एम० एल० ए० कानपुर।

८ " सेठ अचलसिंह एम० एल० ए० आगरा।

९ " डा० राम मनोहर लोहिया इलाहाबाद।

१० " श्री विश्वनाथ अग्रवाल मिर्जापुर।

११ " बैजनाथ केड़िया (बनारस)

१२ " रंगबहादुर भरतिया, बहोरी।

१३ " गुरुसहायमल, सरदार नगर।

१४ " प्यारेलाल भरतिया, कानपुर।

१५ " मदनमोहन मित्तल, हलद्वानी।

१६ " लाला हनुमान प्रसाद अग्रवाल, मटेरा (बहराइच)।

१७ " बाबू जगदीश प्रसाद अग्रवाल (बहराइच)।

१८ " मथुरा प्रसाद अग्रवाल (बहराइच)।

१९ " सेठ मुरलीधर अग्रवाल।

२० " रामशरण रावत, मथुरा।

२१ " रामेश्वर प्रसाद माहेश्वरी।

२२ " प्यारेलाल अग्रवाल, कानपुर।

२३ " सुन्दरलाल जैन, कल्याणपुर।

२४ " अमरनाथ, आगरा।

बम्बई एवं गुजरात :—

१ श्री रामकृष्ण जाजू, शोलापुर।

२ " के० एम० फिरोदिया एम० एल० ए०, अहमदनगर।

३ " मूलचंद बागड़ी, गरही (बंबई)

४ श्री सेठ चन्दूलाल अनवरसद (बंबई)
५ " सी० वी० अग्रवाल बैरिष्टर, पूना।
६ " सूरजमल मारवाड़ी, पूना।
७ " सीताराम बिड़ला, पूर्व खानदेश।
८ " बाबूलाल भाखरिया, बंबई।
९ " मोहनलाल अमृतलाल मोदी, खास।

पंजाब :—

१ पं० नेकीराम शर्मा, भिवानी।
२ श्री बी० डी० चोपड़ा, लाहोर।
३ लाला श्यामलाल, एम० एल० ए०, अमृतसर।
४ बाबू जुगुल किशोर, ऐडवोकेट, हिसार।
५ डा० मदनगोपाल जी, हिसार।
६ श्री गोपीचन्द अग्रवाल, हिसार।
७ डा० कप्तान मुरली मनोहर, एम० बी-बी० एस०।
८ लाला मगननाथ गोयल, मोगा।
९ श्री योगीन्द्रपाल जैन, रावलपिण्डी।
१० लाला मुनीचराम जैन, मोगा।

बिहार :—

१ श्री गौरीशंकर डालमिया, एम० एल० ए०, जसोडीह।
२ " ब्रजलाल डोकनिया, एम० एल० ए०, पाकुड़।
३ " सेठ हरनारायणलाल जैन, भागलपुर।
४ " जगतनारायणलाल अग्रवाल, बेगूसराय।
५ " देवीप्रसाद अग्रवाल, साहबगंज।
६ " राजेश्वरी प्रसाद अग्रवाल (डालटनगंज)

इन्दौर राज्य :—

१ श्री कल्याणमल जी लाखोटिया।

२ श्री दत्तूलाल जी माल्लू ।

३ " घनश्यामदास मूदड़ा ।

४ " सूर्यनारायण पुरोहित ।

अजमेर मेरवाड़ा :—

१ श्री कृष्णगोपाल गर्ग ।

२ " बालकृष्ण कौल, अजमेर ।

३ " पुरुषोत्तम प्रसाद व्यावर ।

४ " जेठमल चौधरी, अजमेर ।

५ " दुर्गाप्रसाद चौधरी, अजमेर ।

६ " मूलचन्द्र असावाका, अजमेर ।

बंगाल :—

१ श्री सीताराम सेकसरिया, कलकत्ता ।

२ " हीरालाल लोहिया, कलकत्ता ।

३ " शिवहरी सांगनेरिया, कलकत्ता ।

४ " हरिचरण सीरेवाला, कलकत्ता ।

दिल्ली :—

१ श्री ब्रजकृष्ण श्री चांदीवाला ।

२ सेठ केदारनाथ गोयनका ।

३ श्री रतनलाल शारदा ।

मद्रास :—

१ श्री नेमीचन्द्र "प्रेम" (रांका)

उड़ीसा :—

श्री सेठ प्रह्लादराय लाठ एम० एल० ए० (संबलपुर)

इस प्रकार यत्किंचित प्राप्य सामग्री से हम मारवाड़ी बन्धुओं की उपर्युक्त सूची इस पुस्तक में रखते हुए यह भी कह देना चाहते हैं कि मारवाड़ी राष्ट्रीय कार्य-कर्त्ताओं के नाम देकर हमारा उद्देश्य उनकी प्रशंसा करने का नहीं है। उन्होंने

जो कुछ किया है या कर रहे हैं, वह उनकी बड़ाई करने का विषय नहीं प्रत्युत विशुद्ध रूप से देश के प्रति पालन किया जाने वाला कर्त्तव्य मात्र है। हमें देखना यह है कि जब हममें इतना त्याग है कि हम राष्ट्रोत्थान के लिये जेलों की यातनायें तक सह सकते हैं तो हम उससे कहीं अधिक सरल, सामाजिक अभ्युत्थान का प्रयास क्यों नहीं कर सकते और क्यों नहीं हम उस दिशा में सफलता प्राप्त कर सकते। हमें यह भी देखना है कि हम समाज के अभ्युत्थान के कार्य को एक सर्व प्रथम महत्व का काम क्यों नहीं समझते।

क्या वास्तव में हम **"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"** के सिद्धान्त को मान कर ही चल रहे हैं? यदि हम इस भावना को अपना कर जेलों की यात्रा करते और यातनायें झेलते हैं तब तो कोई बात नहीं, अन्यथा क्यों न हम आज के भारतीय राष्ट्र से अपने उचित अधिकारों की मांग करें और अपनी मांगों को आसानी से अथवा जबर्दस्ती से ही क्यों न पूरी करा लें, खासकर उस दशा में, जब कि देश का हर एक वर्ग वैसी मांगें हठधर्मी के साथ उपस्थित कर रहा है।

राष्ट्र के नाम पर आर्थिक-सेवा

व्यक्तिगत यातनाओं की कथा छोड़कर यदि हम अपने समाज की आर्थिक-सेवा से राष्ट्रीय-संग्राम की सहायता का निरूपण करना शुरू कर दें तो हमें यह कहना पड़ेगा कि तमाम कांग्रेस तथा राष्ट्रवाद का एक बहुत बड़ा हिस्सा ही मारवाड़ियों का ऋणी है। अकेले जमनालाल जी तथा बिड़ला जी का ही हिसाब क़ागज़ पर लगाया जाय तो शेष वर्ग के लिये शेष ही रह जायगा। ऐसी स्थिति में क्यों न हम अपने उचित अधिकारों की मांग करें? जब हम अपना धन खुद ही सुचारु रूप से नहीं रख सके तो क्या प्रमाण है कि दूसरा कोई उसे हमसे अधिक उपयोगी बना सकेगा?

मेरे उपर्युक्त कथन का अभिप्राय यह कहने का नहीं कि मारवाड़ी समाज के बिड़ला तथा बजाज जैसे महापुरुषों ने ऐसा क्यों किया, परन्तु हमारा जी तो इसलिये जल रहा है कि जो कांग्रेस हमारे समाज के पैसे की बदौलत इस हदतक सफल हुई और जिसकी बदौलत वह खड़ी हुई, वही आज किसी हद तक सफल होकर, हमारे हिस्से के मुताबिक हमारे समाज के साथ क्या सलूक

कर रही है ? यदि अच्छा सलूक न हो तो भी कोई बात नहीं, परन्तु यह देखकर तो और भी सन्ताप होता है कि कांग्रेस के अधिकारियों की ओर से मारवाड़ी वर्ग का तिरष्कार भी किया जा रहा है ।

आज हम यह प्रश्न भी कर सकते हैं कि कांग्रेस मुस्लिम लीग के सामने क्यों झुकी ? क्या राष्ट्रीय क्षेत्र में मुसलमानों ने हमारे मुक़ाबले अधिक सेवा की है ? अथवा लीग के सामने झुकना कांग्रेस का दर्शनवाद है ? हमारे विचार से ऐसा कदापि नहीं है । हमारा विचार तो यही है कि भय के ही कारण कांग्रेस लीग की मांगों के सामने झुकती चली जा रही है अर्थात् राजनीतिक क्षेत्र में ताक़त का सवाल आज भी बना हुआ है । "विनु भय होय न प्रीति" का ही सिद्धान्त यथार्थ मालूम होता है, आशय यह है कि संसार से अभी भी शक्तिवाद दूर नहीं हुआ है और जब तक वह दूर न हो जाय, तबतक उसके पीछे रहना भी कायरता ही है ।

पूञ्जीवाद से ऐसा द्वेष क्यों ?

आज मारवाड़ियों तथा पूंजीवाद के सवाल को लेकर नवीन राष्ट्रवादियों के दिल में उन्हें कुचलने की प्रतिहिंसा प्रबल हो रही है ; परन्तु सोचने और विचार करने की बात तो यह है कि छोटे छोटे नेताओं की कौन कहे, स्वयं महात्मा गांधी तथा पंडित नेहरू जी ने ही २० से लेकर ५०-५० हजार रुपयों की थैलियां क्यों ग्रहण कीं ? क्या आज उनका हमारी जाति के प्रति किया जाने वाला प्रत्याचार न्यायोचित है ? हम मानते हैं कि पूंजीवाद एक भयङ्कर विष है और हम दावे के साथ यह भी कह सकते हैं कि पूंजीवाद का क्रियात्मक, रचनात्मक या सच्चा विरोधी शायद ही आपके इस भारतवर्ष या पृथ्वी पर कोई हो ।

जो लोग अपनी निज की संपत्ति के प्रश्न पर स्वयं पूंजीवादी बनकर दूसरों की संपत्ति के प्रश्न पर पूंजीवाद के विरोधी बन जाते हैं उन्हें तो हम नमक-हराम ही कहेंगे । पूंजीवादके विरोध का साधन क्या पूंजीपतियों को निर्धन बनाना ही है ? तथा क्या निर्धनों को पूंजीपति बनाना मनुष्यता या राजनीति के क्षेत्र में कर्तव्य अथवा कर्म नहीं है ?

इतना सब होते हुए भी मैं इस विषय के पक्ष में ज्यादा पैरवी नहीं करना चाहता । यह भी संभव है कि मैं इस विषय को पैरवी करने में अपनी ही दलीलों से खुद हार भी जाऊँ । क्योंकि मैं स्वयं भी पूंजीवाद का विरोधी हूं ।

परिच्छेद ६

कमजोरियां, इतरवर्गों द्वारा उपहास

"To run an Engine, all its components must be working and perfect."

जिस प्रकार एक इंजन अथवा 'कल' को चलाने के लिये उसके प्रत्येक पुर्जे या अंग को पूर्ण तथा क्रिया-शील रहने की आवश्यकता है, उसी प्रकार एक मनुष्य को भी अच्छा कहलाने के लिये उसके आचरण अथवा Character के प्रत्येक पहलू का उचित और योग्य होना आवश्यक है। यही सिद्धान्त किसी राष्ट्र या किसी समाज के लिये भी पूर्ण रूपेण घटित होता है। तर्क शास्त्र के एक सिद्धान्त में सत्य तथा झूठ अथवा अच्छा या बुरा का आशय इस प्रकार प्रगट किया जाता है :—

सत्य अथवा अच्छा=सब ओर से सत्य अथवा अच्छा।

झूठ या बुरा = { सब ओर से बुरा या,
अच्छा —९९ प्रतिशत+१ प्रतिशत बुरा

उपर्युक्त तर्क पर यदि हम सामाजिक दृष्टि से विचार करें तो हमारा विवेक भी जागरूक बन कर विचार करने लगेगा, हम यह देखने लग जायंगे कि अच्छाई या सत्य की तथा बुराई या असत्य की मात्रायें किस में कितनी कितनी हैं।

अपने मारवाड़ी समाज के विषय में इस हद तक जितना लिखा जा चुका है उसके बावजूद भी यदि हम अपने समाज को देश के इतरवर्गों के समक्ष आधारात्मक तुलादंड पर रखें तो हमें एक ठंडी सांस भर कर ही रह जाना पड़ेगा। यही बात

समाज के किसी भी पढ़े लिखे सचेतन आदमी के लिये बिडम्बना, दुःख तथा हार्दिक आघात का एक विषय बन जाती है। एक अदना से अदना आदमी भी हमें गाली देकर चला जाता है, और हम चुप हैं—चुप हैं, शान्ति-प्रियता या साधुता के गुण से नहीं अपितु आलस्य से; उत्साह के अभाव से उत्पन्न कायरता से तथा एतज्जनित किंकर्तव्य विमूढ़ता से, साथ ही कष्ट झेलते हुए भी आगे के और कष्टों के काल्पनिक भय से, यद्यपि वह कष्ट भय करने से कदापि दूर नहीं हुआ करते। समाज के केवल साधारण स्थिति वाले अंगों का ही ऐसा हाल हो ऐसी बात नहीं है, शक्ति और संपदाशाली आदमियों का भी यही हाल है। यही एक विषय है जिसके संबंध में समाज के उन आदमियों ने—जिन्हें कुछ कहना था—कहा है। यही वह विषय भी है जिसके सम्बंध में हमारे लिये अथवा समाज के किसी भी आदमी के लिये सुधार'का हेतु या क्षेत्र मिलता है फिर भी सब कुछ देख सुन कर भी हम टस से मस नहीं होते दिखाई देते।

यह एक स्वयं सिद्ध तथ्य है कि एक एक व्यक्ति के समूह का ही नाम समाज है; हर एक व्यक्ति की निष्ठा तथा उसके आचरण का प्रभाव समाज या राष्ट्र के सामूहिक स्वरूप पर भी पड़ता है अर्थात् जल की अगणित बून्दों के एकत्र स्वरूप को जिस प्रकार "घड़े भर जल" की संज्ञा मिलती है उसी प्रकार अनेक आदमियों के एकत्र स्वरूप का नाम समाज या राष्ट्र है और प्रत्येक व्यक्ति की निष्ठा और आचरण का समवेत भाव राष्ट्र या समाज की निष्ठा अथवा आचरण के रूप से प्रख्यात होता है। व्यक्ति विशेष का कार्य चाहे जितना सूक्ष्म अथवा विशाल हो, समाज पर उसका प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी होता है। यह भी ठीक है कि अच्छाई और बुराई का भाव सर्वत्र विद्यमान रहता है, सर्वत्र अच्छे और बुरे आदमी मौजूद रहते हैं अथवा यों कहिए कि प्रत्येक आदमी, जड़चेतन में/अच्छाई और बुराई पाई जाती है, फिर भी मूल प्रश्न होता है अच्छाई और बुराई की मात्रा का। व्यक्ति विशेष के अच्छे या बुरे होने का निर्णय जिस प्रकार अच्छाई या बुराई की मात्रा सबधी अधिकता से होता है उसी प्रकार समाज विशेष के संबंध का निर्णय इस बात से होता है कि उस समाज के मनुष्यों की कितनी संख्या का झुकाव किस ओर है।॰ समाज के बहुसंख्यक

वर्ग के उसी झुकाव के आधार पर समस्त समाज के प्रति एक विशेष भावना बन जाया करती है। इसी विचार से जब हम मारवाड़ी समाज को कसौटी पर सकते हैं तो उसे बहुत पिछड़ा हुआ पाते हैं। यही पिछड़ी हुई दशा दूसरों की दृष्टि में तथा खुद हमारी भी दृष्टि में आलोचना का विषय बन जाती है।

यह बात ठीक और आवश्यक भी है कि आलोचना हो, क्योंकि आलोचना से ही हमें दृष्टि मिलती है फिर भी जो लोग केवल आलोचना के ही लिये आलोचना का व्यापार सा किया करते हैं, वस्तुतः वे अधम कोटि के ही मनुष्य होते हैं। इसके प्रतिकूल एक सच्ची आलोचना —जो आलोच्य विषय के सुधार की पुनीत कामना की प्रेरणा से ही अभिप्रेत होती है—एक दिल की पुकार; एक कसक होती है। आलोचक की एक मात्र साधना होती है उसके द्वारा अनवरत रूप से किया जानेवाला रचनात्मक कार्य। परन्तु हम देखते हैं कि दुर्भाग्य वश हमारे तथा अन्य समाजों में भी ऐसे अनेक व्यक्ति पाये जाते हैं जिनके व्याख्यान, वक्तृता में तथा रचनात्मक कार्य में तिलमात्र भी सामञ्जस्य नहीं होता। सोचने की बात तो यह है कि ऐसे आदमी— क्रियात्मक रूप से जो कुछ भी करके नहीं दिखा सकते—किस मुंह से लंबे व्याख्यान दे सकते हैं या किसी की आलोचना कर सकते हैं? यदि वे ऐसा करते हैं तो क्या समाज का यह धर्म नहीं है कि वह ऐसे छद्मवेशी, अधम कोटि के मनुष्यों को कम से कम उस हद तक पहुचा दे कि वे कुछ रचनात्मक काम कर दिखाने के लिये विवश हो जायं अथवा फिर वे कोरी वक्तृता या आलोचना करने की दुष्टता से ही सदा के लिये छुट्टी पा जायं।

इसी प्रकार पैसे के व्यवहार में भी हमारे अन्दर कमजोरी है। पैसे का मूल्य सब के लिये बराबर ही होता है। कोई भी व्यक्ति यदि १०) लेकर कोई चीज़ खरीदने के लिये जाता है तो उसे उन पैसों के बदले में चीज़ मिलती है, चाहे वह खरीदने वाला अङ्गरेज़ हो, मुसलमान हो, पारसी या मारवाड़ी हो, फिर भी वस्तुस्थिति यह है कि हम पैसा भी खर्च करते हैं फिर भी हमें बेवकूफ़ बनाया जाता है। अपनी ऐसी स्थिति देखकर केवल अफसोस ही नहीं होता प्रत्युत ऐसी स्थिति सहन शक्ति से भी बाहर हो जाती है। रेलवे में, न्यायालयों में, सिनेमा और फिल्मों में

तथा कारपोरेशन, म्यूनिसिपल बोर्ड या असेम्बलियों में हमारी क्या दशा रहती है और हमारा आधार कैसा रहता है, शायद ऐसा कोई मारवाड़ी नहीं होगा, जो इस से अवगत न हो, फिर भी क्या किसी भी मारवाड़ी ने कभी सोचने का कष्ट किया है कि ऐसा क्यों होता है ? अथवा क्या हमने ऐसी दुर्दशाओं को रोकने वाले उपायों के विषय में विचार किया है ! यदि विचार भी किया जाता है तो हम उन उपायों को कार्य रूप में परिणत करने या कराने के लिये कितनी मेहनत करते हैं, तथा उस में कहां तक सफल रहते हैं ?

हमारे उपहास का एक कारण हमारी सिधाई और अच्छाई की प्रकृति भी है। अपने दैनिक व्यवहार में हम यह लोकोक्ति कहते और सुनते भी हैं कि "वह सोना भी किस काम का, जिस से कान फट जाय," फिर भी इस लोकोक्ति की सार्थकता के विचार से हम उस हद से ज्यादा हो जाने वाली अच्छाई और सिधाई में बने रहते हैं जिसके कारण हमारा उपहास किया जाता है तथा हमारा अपमान भी होता है। पूर्ण सनातनी और आस्तिक होने के कारण जो श्रद्धा और दया के भाव हमारे अन्दर आ गये हैं, वह गुण होते हुए भी आधुनिक प्रगतिवाद के युग में अवगुण ही समझे जाते हैं। आजकल का युग तो ऐसा है कि :—

"जाके मन बुराई बसे, ताही को सम्मान।
भला भला कह छोड़िये, खोटे ग्रह जप-दान॥"

बहुत कुछ उदाहरणों में देखा गया है कि अगर हम किसी के साथ उपकार करते हैं, चन्दा देते हैं या कुछ दान के रूप में ही देते हैं तो शरणार्थी, अथवा हमारे निकट याचक बनकर आने वाला भी अपने दायरे में यही कहता हुआ दिखाई देता है कि —"देखो, साले मारवाड़ी को कैसा उल्लू बनाया !" ऐसी ही प्रवृत्ति के अनेक उदाहरण हमें मिला करते हैं, जहां हमारी दया की प्रवृत्ति का बहुत ही अनुचित लाभ उठाया जाता है और उसका प्रतिकार और फल हमें उस रूप में नहीं मिलता जो दया की प्रवृत्ति के किसी कार्य का होना चाहिए। हमारी इस दया-वृत्ति का सबसे भयंकर दुष्परिणाम भारतवर्ष के अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज को, तथा उनके बाद इस अभागे देश को आज तक भोगना पड़ रहा है। शहाबुद्दीन गोरी ने यदि अपनी

सेना के सामने गायें बांध रखीं तो उन गायों की प्राणहानि बचाने के लिये क्या यह अच्छा हुआ कि सैकड़ों वर्षों तक नित्य प्रति हज़ारों गायों के वध का रास्ता साफ हो गया, देश की स्वाधीनता नष्ट हुई और भारतवर्ष की पवित्र भूमि यवनों और श्वेताङ्गों के ताण्डव नृत्य के लिये अनाथ छोड़ दी गई ?

हमारे उपहास का एक और कारण हमारी वह प्रवृत्ति है जिसके अनुसार हम बहुत जल्द और बड़ी सरलता के साथ इतर वर्गों के प्रभाव में आ जाते हैं। आम तौर से देखने में यह आता है कि हम अपने संस्कारों को समझने तथा उन्हें पुष्ट बनाने से उदासीन तो रहते ही हैं, साथ ही हमारी मनोवृत्ति पर इतरवर्ग के संस्कारों की छाप भी बहुत जल्द पड़ती है। इसका फल यह होता है कि इतरवर्ग हमको कमजोर और बेवकूफ समझ लेता है। हमारी सभ्यता और नीति यह जरूर बताती है कि दत्तात्रेय की तरह दूसरों के गुणों को ग्रहण कर लेना चाहिए। परन्तु अपने गुणों की हत्या करके दूसरे के गुणों को ग्रहण करना किस नीति या सभ्यता का आदेश है ? ठंढे दिल से इस ओर विचार करने की जरूरत है।

जब हम अपने गुणों को छोड़कर दूसरे के गुणों को धारण करते हैं तो हमारी दशा उस रँगे हुए सियार की सी हो जाती है जो शेर की श्रेणी में नहीं गिना जाता तथा जिसे खुद अपनी श्रेणी से भी हाथ धोना पड़ता है। अपने समाज की इसी स्थिति के एक पहलू में जब हम देखते हैं कि हमारे समाज के कई एक नेता राष्ट्रवादी या सुधारवादी बनने का झूठा दिखावा करते हैं तो वे न इधर के ही रहते हैं और न उधर के ही। राष्ट्रवाद के क्षेत्र में वे अपने समाज के सस्कारों के त्याग के कारण सच्चे नहीं समझे जाते, फलतः उनका सम्मान नहीं होता। इधर दूसरों के संस्कार ग्रहण करने के कारण वे अपने समाज के लिए भी सन्देह के पात्र बन जाते हैं। अन्त में राष्ट्रवाद का वह सम्मान भी जब उन्हें नहीं प्राप्त होता जिसके लिये वे इतना स्वांग रचते हैं, तो उनकी दशा "धोबी के कुत्ते" की सी हो जाती है।

हमारे उपहास का एक और कारण है हमारे अन्दर स्वाभिमान की कमी। राजस्थान के प्राचीन क्षत्रियों ने अपने स्वाभिमान के ही बलपर जहां राजस्थान की मान-मर्यादा को इस हद तक ऊँचा उठाया वहीं हमारे आधुनिक समाज ने, विशेषकर

वैश्य समाज ने राजस्थानी मानमर्यादा को लेशमात्र भी बाक़ी नहीं रखा, स्वाभिमान के नाते इस समाज में शून्य ही रह गया। शक्ति का अर्थ निरूपण इस प्रकार होता है कि जिस व्यक्ति के पास जितनी शक्ति है उसका उतना ही मान होना ज़रूरी है अन्यथा शक्ति-विज्ञान का कोई महत्व ही नहीं रह जाता। परन्तु शक्ति के इसी सिद्धान्त को जब हम अपने समाज के ऊपर आजमाते हैं तो देखने में आता है कि शक्ति तो है परन्तु उसका यथावत् उपयोग नहीं होता। आज अंगरेज़ जाति संसार में इतनी सफल क्यों हुई? अन्वेषण से पता चलता है कि अंगरेज़ जाति विज्ञान के क्षेत्र में उतनी प्रवीण और सिद्धहस्त नहीं हैं जितनी कि जर्मन और जापानी जाति रही है। यह भी स्पष्ट हो चुका है कि जर्मनी या जापान के मुक़ाबले अंगरेज़ जाति बल में भी श्रेष्ठ नही हैं, फिर भी वे सफल रहे, इसका एकमात्र कारण अंगरेज़ जाति का स्वाभिमान है। Every English man is the lord almighty of his own little castle. अर्थात् प्रत्येक अगरेज़ अपने छोटे से गढ़ का सर्वशक्तिमान स्वामी है। जब तक हम अपना सम्मान स्वयं नहीं करते, या कर सकते तब तक हमें यह हक़ प्राप्त नहीं होता कि हम दूसरों से सम्मान प्राप्त करने का हक़ रखें। स्वाभिमान, अहंकार एवं मत्सर से बिल्कुल भिन्न तत्व है। हमारे समाज में गुणस्वरूप स्वाभिमान तत्व का अभाव है परन्तु अवगुण स्वरूप अहंकार एवं मत्सर के तत्व अवश्य वर्तमान हैं जिसके फलस्वरूप हमारी अधोगति निश्चित ही बनी रहती है।

मारवाड़ी जाति की स्वाभिमान सम्बन्धी क्षमता का एक उदाहरण यहां दिया जाता है। कलकत्ता के विख्यात गोएनका वंश के रत्न स्व० सर हरीराम गोएनका को वे सभी ख़िताब प्राप्त हो चुके थे जो भारत जैसे ब्रिटेन द्वारा शासित देश के किसी नागरिक को प्राप्त हो सकते हैं। यही स्व० सर हरीराम गोएनका एक बार तीर्थ-यात्रा को जा रहे थे। यह वह समय था जब भारतवर्ष में अंगरेज़शाही के ज़लज़ले में किसी प्रकार का घुन नहीं लगा था। गोएनका जी का स्थान रेलवे ट्रेन के फ़र्स्ट क्लास में रिज़र्व था फिर भी स्थान के अभाव से एक गौरांग महोदय ने गोएनकाजी की रिज़र्व सीट पर दख़ल कर रखा था। जब उस अंगरेज़ से स्थान छोड़ने के लिये

कहा गया तो वह इस बुरी तरह से बिगड़ा कि स्वयं गोएनका जी तथा दर्शक भयभीत होकर दूर हट गये। इस स्थिति में पड़कर उन लोगों की वृत्ति ने यही जवाब दिया कि—"चोखो भाया, मैं दूसरी गाड़ी सूं चलो जास्यां।" परन्तु झगड़ा बढ़ा और बात स्टेशन मास्टर तक पहुंचाई गई जिसपर स्टेशन मास्टर ने उत्तर दिया—"What can I do, when you are so big a man, you find your own way." अर्थात् "मैं ही क्या कर सकता हूं, जब आप स्वयं इतने बड़े आदमी हैं तो आप स्वय अपने लिये रास्ता निकालें।" अन्त में उस स्थल पर कुछ असली मारवाड़ी भी आ पहुंचे और "शठं शाठ्यं समाचरेत्" का न्याय शुरू हुआ तो गौरांग महोदय को गाड़ी छोड़कर चुपचाप चल देना पड़ा।

यह घटना साधारण दृष्टि से ऐसी कुछ महत्वपूर्ण नहीं हैं फिर भी इस स्थल पर मारवाड़ी समाज से सम्बन्धित कुछ तथ्य सामने आ जाते हैं। पहला तथ्य यहं है कि राजकीय उपाधियों की ओर भी, जब खिताब हासिल करने की दौड़ हुई, तो मारवाड़ियों की भी दौड़ हुई, परन्तु यह दौड़ किसी ठोस आधार पर नहीं थी। चूंकि हर जगह King George (रुपये की मार) की सिफारिश कारगर हो जाती है, इसलिये उसी रास्ते से हमारे समाज ने भी उपाधियां प्राप्त की। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय जब उपाधियों के परित्याग की लहर उठी तो जो लोग साधिकार उपाधिधारी थे उन्हें उपाधि त्यागने में कोई अड़चन नहीं महसूस हुई परन्तु जो उपाधियां रुपये के बल पर प्राप्त की गई उनका परित्याग तो व्यापार की दृष्टि से घाटा ही साबित होता (?) दूसरी ओर यह तथ्य स्पष्ट होता है कि साधार उपाधिधारी व्यक्ति उपाधियुक्त होकर अपने को और भी शानदार समझने लगता है। एक अङ्गरेज़ को जब 'सर' की उपाधि प्राप्त हो जाती है तो वह जमीन से एक गज ऊपर होकर चलने लगता है; उसके उस 'सर' के खिताब का रोब दूसरों पर जमता है कारण कि वह स्वयं उस ताक़त को समझता है और उसका उपयोग भी कर सकता है परन्तु पैसे के बल पर प्राप्त किये हुए खिताब के कारण उसका असली आधार कैसे मिल सकता है।

ऊपर जैसी घटना का जिक्र किया गया है, ऐसी घटनाओं के समय इस बात की

परवाह करने की जरूरत नहीं रहती कि हमारे मुक़ाबले का कोई आदमी कितना गुर्राता और झल्लाता है, वहां सिर्फ अपने अधिकार को ही समझने की ज़रूरत रहती है तथा उस अधिकार के साथ अपने स्वाभिमान को मिलाकर डट जाना होता है परन्तु हम ऐसा नहीं करते, हमारी आत्म-सम्मान की भावना धनलिप्सा, आलस्य-प्रमाद तथा भय के सामने पड़कर दृढ़तापूर्वक स्थायी नहीं रहती और इसीलिये हम कमजोर साबित होते हैं।

हमारे उपहास का एक कारण हमारी सार्वजनिक अविद्या भी है। एक विद्याहीन-पुरुष जब धनवाला हो जाता है तो उसके अन्दर धनवान होने का एक गुण आ जाता है परन्तु वस्तुतः यह गुण नहीं होता वरन् अहंकार ही होता है। हमारे समाज में संस्कारवश यही दोष बहुतायत से पाया जाता है इसलिये हमारे प्रति होने वाले उपहास के विषय में भी हम नहीं कह सकते कि खामखां वह उपहास अनुचित है। यदि हम एक ओर घोड़ा तथा दूसरी ओर एक गधा जोतकर गाड़ी चलायें तो हँसनेवाले दर्शक का ही क्या दोष होगा, तथा कैसे दर्शकों की हंसी पर कण्ट्रोल किया जा सकता है?

हमें तथा समाज के हर एक अङ्ग को, हर एक स्त्री और पुरुष को, धनवान होने के साथ ही साथ इस बात की भी सख्त ज़रूरत है कि कष्ट का खयाल न करके वह ज्यादा से ज्यादा विद्याध्ययन करे। यदि आप १ लाख रु० चन्दा में दे सकते हैं तो क्या कारण कि आप प्रतिदिन नियमित रूप से १ घंटा विद्याध्ययन में नहीं लगा सकते? और यदि आप प्रतिदिन एक घंटा विद्याध्ययन कर लेते हैं तो आप उस १ लाख रु० चन्दा देने की अपेक्षा कहीं अधिक समाज की भलाई कर रहे हैं।

फिजूल-खर्ची

मारवाड़ी समाज की खास कमजोरियों में फिजूल खर्ची अपना निराला स्थान रखती है। यद्यपि इस समाज को भारतवर्ष का व्यापारिक समाज कहा जा सकता है फिर भी इसे Economical या अर्थनीतिज्ञ नहीं कहा जा सकता। यदि इस समाज को हम यह कहें कि पैसा पैदा करना इसका जन्मसिद्ध अधिकार है

तो साथ ही यह भी कहना पड़ेगा कि इस समाज को पैसे के खर्च का यथावत् ज्ञान नहीं है, इसकी खर्च करने की प्रणाली सिद्ध-हस्त नहीं है। आमतौर से देखा जाता है कि मारवाड़ियों को पैसा खर्च करते समय तटस्थ-उपयोग अथवा Marginal Utility का बिल्कुल ही ध्यान नहीं रहता। व्यापारिक क्षेत्र को छोड़कर हमारे समाज का खर्च होने वाला पैसा न तो सामाजिक मदों में जाता है, न राष्ट्रीय में, और न उस खर्च होने वाले पैसे से कोई उल्लेखनीय लाभ ही होता है। क्षणिक आनन्द की प्रवृत्ति को शान्त करने की ही मद में एक बहुत बड़ी रक़म खर्च हो जाती है। इस प्रकार के खर्च को आर्थिक विज्ञान के सिद्धान्तों पर होने वाला कुठाराघात ही कहा जा सकता है।

यों साधारण विचार से यह कहा जा सकता है कि जब विभिन्न उपायों और परिश्रम से किसी भी व्यक्ति को पैसा कमाने का अधिकार और स्वतन्त्रता है तो उसके खर्च करने में भी उसे उसी प्रकार से स्वतन्त्र और अधिकारी होना चाहिए। परन्तु वस्तु स्थिति यह नहीं है। मनुष्य जब विभिन्न तरीकों से तथा परिश्रम से पैसा पैदा कर लेता है और धनवान हो जाता तो वह स्वयं तथा उसका पैसा समाज की निधि बन जाती है और इसी प्रकार वह राष्ट्र की भी निधि बन जाती है। इसी सिद्धान्त पर ब्रिटिश शासन प्रणाली के अन्तर्गत इनकमटैक्स आदि लगते हैं जब कि न्याय यह कहता है कि यदि कोई सरकार इनकमटैक्स वसूल करती है तो उसे ऐसे आदमियों को पैसा बांटना भी चाहिए जिन्हें 'इनकम' कुछ है ही नहीं। परन्तु ऐसा नहीं होता, सरकार केवल धनवानों से ही टैक्स लेती है और निर्धनों से उसका कोई सरोकार नहीं रहता अतएव सिद्ध यह है कि धनवान होने पर मनुष्य का धन वैयक्तिक न रह कर सामाजिक और राष्ट्रीय अंग बनता है अतएव उस धन या संपत्ति को कमाने वाला आदमी जब उसे बेजा तरीक़े पर खर्च करता है तो समाज के हक़ में वह एक खटकने वाली बात हो जाती है। हां एक बात यह अवश्य कही जा सकती है कि उसी समाज से सम्बन्धित व्यक्ति ही समाज की उस फ़िज़ूल खर्ची या अनुचित व्यय की ओर उंगली उठा सकता है। अन्य किसी वर्ग द्वारा यदि कोई टीका-टिप्पणी होती है तो वह एक आंतरिक टीस, एक डाह ही होती है जो समाज की बुराई अथवा राष्ट्र के अहित के आवरण से ढकी हुई होती है।

इस प्रकार हमारा निर्णय यह है कि धनवान और निर्धन का अस्तित्व तो अभी है ही और अभी रहेगा भी, क्योंकि अभी भी संसार तथा हमारा देश ऐसा उदार और पूर्ण साम्यवादी नहीं हो गया है कि धनवान और निर्धन का अन्तर लुप्त हो गया हो—हो सकता है कि निकट भविष्य में ऐसा हो जाय—अतः यदि हमारे समाज का धन अनुचित खर्च में या फिज़ूल खर्च में जाय तो वह समाज के आदमियों के लिये बरदाश्त नहीं हो सकता। हम खुद अपने ही लिये सोचें, यदि खुद मैं एक मारवाड़ी की हैसियत से अपने समाज के हित की बात सोचूं तो मैं कह सकता हूं कि समाज का धन भी खर्च हो और खर्च करने वाले को दुनियां बेवकूफ़ भी समझे तो खर्च करने वाले को बेवकूफ़ नहीं तो और क्या कहा जा सकता है ?

मारवाड़ी समाज का धन तथा उसके ख़र्च के जो तरीक़े हैं वे अन्य वर्गों के धन तथा उसके ख़र्च के तरीकों से भिन्न हैं और विशेष भिन्नता यही है कि हमारे समाज के खर्च की शैली में फिज़ूलख़र्ची अपेक्षाकृत अधिक है। एक अंगरेज़ तथा एक मारवाड़ी ग्रहस्थ की आय तथा उसके व्यय की विधि सुचारुता, आवश्यकता आराम तथा दूरदर्शिता से सम्बन्धित शैलीमें बहुत बड़ा अन्तर होता है। मारवाड़ी समाज में निम्न प्रसंगों और विषयों में फिज़ूल ख़र्ची होती है :—

(१) विवाह

(२) साधु, फ़क़ीर, अन्धविश्वास (ब्राह्मण, उपरोहित, ज्योतिषी आदि)

(३) महिलाओं से सम्बन्धित वस्त्रालङ्कार और बनाव चुनाव

(४) अवांछनीय दान पुण्य (जिसके कारण सर्वसाधारण में अकर्मण्यता और आलस्य फैलता है)

(५) मिथ्या यश-लिप्सा (नाम कमाने की प्रतिद्वन्द्विता)

(६) पूजा और तड़क भड़क का प्रदर्शन

(७) पर्व, त्योहार

(८) विलासिता और विलास साधन

(९) सहयोग तथा सङ्गठन एवं अन्याय के दृढ़ प्रतिरोध की वैयक्तिक क्षमता के अभाववश घूस, उत्कोच तथा अनुचित भेंटें।

(१०) डाक्टर, वैद्य तथा दवादारू का खर्च

(११) अनुभव हीन नवयुवकों द्वारा होने वाला अपव्यय

यही वह विषय हैं जिनकी ओर समाज को ध्यान देने की आवश्यकता है। साधारण साक्षरता के प्रचार से यह दोष सहज में ही दूर हो सकते हैं बशर्ते कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति ज़बानी जमाखर्च से बचकर सक्रिय आदर्श चरितार्थ करना ही अपने युग के अनुसार अपना कर्म और धर्म समझे। समाज के हरएक नरनारी का फर्ज़ है कि वह साक्षर होकर समय समय पर समाज के कर्णधारों और हित-चिन्तकों द्वारा प्रदर्शित मार्गों से अवगत होता रहे और अपने घर तथा अपने व्यव-साय के क्षेत्र में—जिसका वह स्वयं सम्राट और विधाता होता है—उन मार्गों को चरितार्थ करने लगे। दूसरा कोई वैसा करता है या नहीं, इस बात की ओर ध्यान न देकर, बहस मुबाहसे से दूर रहकर हरएक ग्रहस्थ बस कार्य रूप में ही जो कुछ करे वह करे और तब हम देखेंगे कि बूंद बूंद में ही घड़ा भर गया है।

हमारे समाज की एक और सबसे भीषण कमजोरी अथवा दोष है व्यक्तित्व की केन्द्रीभूत महानता। इस दोष के कारण हम सामाजिक कार्यक्षेत्र में सफल नहीं हो पाते। इस दोष को दूर करना जितना मुश्किल है उतना ही आवश्यक भी है। आजकल का युग कुछ ऐसा है कि आर्थिक शक्ति शारीरिक अथवा बौद्धिक शक्तियों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ समझी जाती है। हमारे समाज में धनवानों की संख्या अधिक है इस लिये समाज का बहुसख्यक वर्ग सघ अथवा एकता की शक्तियों का तिरस्कार करता है अथवा उन शक्तियों की ज़रूरत को उस समय तक महसूस नहीं करता जबतक कि कोई महान विपत्ति अथवा कोई बृहत् सामाजिक प्रश्न उस वर्ग के सामने आकर नहीं खड़ा हो जाता।

वैयक्तिक प्रभाव-वाद को ही capitalism अथवा egoism कहा जा सकता है और यही चीज़ समाज को अधोगति की ओर खींचती है। यह वह भाव है जिसे दूरदर्शिता का अभाव भी कह सकते हैं। समाज के अधिकांश व्यक्ति व्यापारी और धनवान हैं इसलिये उन्हें सामाजिक प्रश्नों पर विचार करने का अवकाश ही नहीं मिलता अथवा फिर सामाजिक प्रश्नों से दूर ही रहने की उनकी प्रवृत्ति रहती

है। जहां हम अपने समाज को परोपकारिता की रस्सी से बांधते हैं वहीं हम उसे यथार्थवाद से बहुत दूर भी देखते हैं।

जब हम देखते हैं कि समाज के किसी व्यक्ति के ऊपर कोई आफत आ गई है अथवा समस्त समाज पर ही कोई सङ्कट आ पड़ने की सम्भावना है तो हम अपने ही बचने की कोशिश करते हैं अथवा उन दुःख-सङ्कटों में पड़कर नष्ट हो जाने की जो आशंका होती है उसी के निराकरण अथवा निवारण का प्रयत्न शुरू कर देते हैं और हमसे यह नहीं बन पड़ता कि हम सङ्घबद्ध होकर, एक समाज के सामूहिक प्रतिरोध द्वारा आने वाले सङ्कट की जड़ को ही नष्ट कर दें। प्रसंग वश इस विषय का एक उदाहरण भी दे देना अनुचित न होगा।

१६ अगस्त १९४६ के पूर्व कलकत्ता के मारवाड़ी समाज का एक धनवान समुदाय हरीसन रोड अंचल में रहता था। १६ अगस्त की आफत आने पर उस अञ्चल में रहने वाला समुदाय अपने मकान छोड़ कर भागा। सुनने में तो यहां तक आया है कि इस भगदड़ के उपक्रम में एक एक परिवार को लाखों और हजारों का नुकसान हुआ तथा अन्य प्रकार से धन और जनकी जो क्षति हुई उसका पता आज तक भी नहीं लग सका है।

इसके विपरीत यदि यही समुदाय एकत्रित होकर अपनी शक्तियों को भी एकत्रित कर लेता तो संकट के प्रतिरोध का सहज में सुदृढ़ उपाय हो जाता और फलस्वरूप न तो भीषण दंगा ही हो पाता और न इतनी भीषण क्षति ही हो जाती जिसका बचाना हमारे लिये चिन्ता की बात हो गयी थी।

सोचने की बात यह है कि ऐसे सामूहिक-संकट के अवसरों पर संघबद्ध होने की बाक़ायदा ट्रेनिंग तो—सिवा राजकीय सैनिक व्यवस्था के—अन्यत्र दी नहीं जाती, यह तो वह विषय है जो आगत विपत्ति के समय स्वतः उत्पन्न होता है। महाबीहड़ जंगलों में जब दावाग्नि का कोप होता है, उस समय बनप्रदेश में रहने वाले और पारस्परिक स्वाभाविक वैर वाले जीव जंतु भी भय भीत होकर वैर भाव भूलकर एक जगह एकत्र हो जाते हैं तथा किसी ओर रास्ता मिलने पर सब के सब झुण्ड बनाकर उसी ओर चल देते हैं। परन्तु हमारे समाज का सम्पन्न व्यक्ति अपनी शक्ति और

प्रभाव को शक्ति समझे हुए अभिमान में चूर रहता है। इस स्थिति में वह छोटी छोटी बातों की परवाह नहीं करता और जब संकट आकर गिर पड़ता है तब वह हानि भी सहता है, तथा निरुपाय होकर पश्चात्ताप की ज्वाला में दग्ध होता रहता है।

सार्वजनिक कामों में सम्मिलित होने या न होने के निर्णय की एक बात पर तथा इस तत्व की गहराई तक पहुंचने पर तर्क सामने आकर खड़ा हो जाता है। सार्वजनिक संस्थाओं से मेरा बहुत ज्यादा संपर्क तो नहीं है परन्तु कलकत्ता स्थित अपने समाज की दो एक उत्तम संस्थाओं को मैं जानता हूँ।

संस्था सम्बन्धी उद्देश्य और सैद्धान्तिक क्रम के नाते हमारे "मारवाड़ी सम्मेलन" को समाज की एक विभूति कहा जा सकता है। सभी प्रगतिशील मारवाड़ी इस संस्था से परिचित हैं। इस संस्था के विषय में मेरा दृष्टिगत अनुभव इस प्रकार है :-

"इस संस्था की स्थायी समिति में जितने सदस्य हैं उनमें से ७५ प्रतिशत सदस्य आवश्यक से भी आवश्यक बैठकों में अनुपस्थित रहते हैं। वे अनुपस्थित इसीलिये रहते हैं कि वे संपत्तिशाली, वैभवशाली और इसलिये वैयक्तिक रूप से शक्तिशाली भी हैं। उनके इस कार्य से यही सिद्ध होता है कि जो बहुत बड़े आदमी हैं वे सामाजिक और सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने में अपनी तौहीन समझते हैं! वे समझते हैं कि समाज को ही उनकी ज़रूरत है और उन्हें समाज या संस्था की कोई परवाह नहीं है। समाज, संस्था या जनसाधारण की ओर से वे अपने ऊपर जैसा कुछ और जितना उत्तरदायित्व समझते हैं उसका निर्वाह वे चन्दे की कुछ रक़म दे देने में ही पूर्ण समझ लेते हैं और इसी पर उन्हें नाज़ और फ़ख़्र रहता है।

स्थायी समिति के शेष ¼ भाग वाले सदस्योंमें आमतौर से ऐसे लोग हैं जो सर्वतोमुखी क्षेत्र के ख्याति प्राप्त कार्यकर्त्ता या all round prominent figures हैं जिनकी कीर्ति पहले से ही संस्थापित established है जिसके नाते वे बैठक में भाग लेना अपने दैनिक कार्यक्रम का एक भाग समझते हैं। यह लोग कुछ थोड़ी लेक्चरबाज़ी कर देने में ही अपने दायित्व का पूर्ण निर्वाह समझकर उस पर गर्व करते रहते हैं और अपने इस कार्य में वे सुदक्ष Expert भी हो गये हैं। इसी संख्या के अन्दर कुछ सदस्य ऐसे भी हैं जो बैठक में आते जरूर हैं परन्तु

मीटिंग शुरू होते ही इनकी निगाह अपनी मुलायम कलाई पर बंधी हुई "रिष्टवाच" पर नाच करने लगती है। इतना नाटक करते हुए वे "देर हो गई" कहकर रजिस्टर में उपस्थिति का प्रमाण दर्ज करके चलते बनते हैं। हरएक बैठक में यही स्वांग देखने में आता है। इतनी बड़ी संस्था में ईश्वरदास जालान जैसे कुछ आदमी ऐसे भी हैं जो हृदय में काम करने की; कुछ कर डालने का एक उत्साह और एक कसक लेकर बैठक में आते हैं परन्तु उनकी बातें सुनने की फुरसत ही किसे रहती है? वे आते हैं और निराश होकर लौट जाते हैं।

इस हालत में या तो हम यह समझें कि समाज इस प्रपंच रूपी दुर्गुण के मजबूत रस्से से जकड़ा हुआ है, अथवा फिर मैं ही गलत समझ रहा हूगा। इन दशाओं में यदि इतर वर्ग हमारे समाज का उपहास करें अथवा फायदा उठावें तो उनका क्या दोष?

विचार करने की बात है कि समाज के ही एक अङ्ग को सामाजिक प्रश्न पर विचार करने का आखिर अवकाश क्यों नहीं है? हरएक रविवार को यदि ३ या इससे अधिक घंटों का समय सिनेमा हाउसों में या.........में बिताने का अवकाश लोगों को रहता है तो १५ दिन या महीने भर में एकबार सामाजिक प्रश्नों पर विचार करने के नाम पर उन्हें अवकाश क्यों नहीं रह सकता? ऐसे लोग सामाजिक क्षेत्र की उपेक्षा के अपराध में क्षमा के पात्र कदापि नहीं हो सकते। यदि ऐसे लोग अपने आपको समाज का एक अवयव समझते हैं; राष्ट्र का एक अङ्ग समझते हैं; उन्हें सामने आना चाहिये। ऐसा करने का अर्थ यह नहीं कि वे समाज के प्रति कोई कृपा कर रहे हैं वरन् यह तो उनका कर्त्तव्य ही है, और यदि वे ऐसा नहीं करते तो समाज का भी कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उन्हें उन सुविधाओं से वंचित कर दे जो समाज की ओर से उन्हें मिलती आई हों। हमारी संस्थाओं के अन्दर फैले हुए ऐसे अपराध-पूर्ण दोष के परिष्कार का यही एक मात्र उपाय शेष रहता है।

स्टेशनों पर प्राय: होनेवाली हमारी दुर्दशा का एक चित्र

यद्यपि सामान क़ायदे से ठीक है फिर भी मारवाड़ी समझ कर डरा-धमका कर कुछ लेने के हेतु टिकट-कलेक्टर झंझट लगाता है और सलाहकार, मुनीम-गुमाश्ते भी "कुछ देकर पिण्ड छुड़ाइये" की सलाह देते हैं।

बनावटी सुधारक

सामाजिक प्लेटफार्म पर

"समाज के उत्थान का एकमात्र उपाय दहेज प्रथा को बंद करना है।"

घरके अन्दर

"सुणै है क मालिए की मां, सेठ हजारीमलजी मालिए की सगाई खातिर कहैव है। नेगचार तो कुछ करसी कोनी, खाली ५० हजार को चेक देसी, सगाई ले लेवां के ?"

रजवाड़ों की स्थिति

जब तक किसी देश का राजा या नेता नहीं बिगड़ता तब तक उस देश की प्रजा भी उपहासास्पद या निंद्य नहीं होती। मारवाड़ प्रदेश से वर्तमान मारवाड़ियों का देश के विभिन्न भागों में प्रयाण और प्रवास के कारण भी उल्लेखनीय हैं जो सांकेतिक और मुख्य रूप से यही हैं कि मारवाड़ का जलवायु शुष्क रहा तथा व्यापार के क्षेत्र का अभाव रहा, दूसरे मारवाड़ी वैश्य और व्यापारी राजस्थानी देशी नरेशों के बेजा दबाव से ऊब उठे और वे मारवाड़ से निकल कर विभिन्न प्रान्तों में जाकर बस गये। इधर जब अङ्गरेज़ों ने यह देखा कि व्यापार के मामले में मारवाड़ियों से कुशल कोई दूसरा वर्ग ही नहीं है तो उन्होंने इन्हें ऐसे प्रोत्साहन दिये जिनके परिणाम से लाभान्वित होकर वे अपने देश को भूल ही गये। अपने स्वदेश राजस्थान को भूल जाने का वह फल हुआ जो आज आपको दिखाई दे रहा है। इस भयंकर परिणाम में हमारे राजस्थानी राजाओं का अपराध भी अक्षम्य है।

राष्ट्रीय कार्यकर्त्तागण तथा ब्रिटिश कूटनीतिज्ञगण इन्हीं राजस्थानी नरेशों का कितना कितना उपहास कर चुके, समय समय पर करते रहते हैं और जब ऐसे उपहास पर क्षत्रिय राजागण भी चुप ही रहते आ रहे हैं तो हम लोग अपने प्रति होने वाले उपहास के लिये क्या कर सकते और क्या कह ही सकते हैं?

राजस्थानी देशी राजाओं के विषय में सर जान स्ट्रेची ने "इण्डिया" नामक पुस्तक में लिखा है :—

The ruler considers the soil of the state as his own, the people are his slaves, the entire revenue is his pocket money, to hoard, lavish or waste, without any right of remonstrance or complaint on the part of his subjects. The disease of such Governments is chronic and intolerable. It is impossible that they can be other than evil and it is a false foolish policy to use towards them the language of

false compliment and to pretend that they are other than irretrievably bad, until a higher civilisation and the example of the British Government shall have demonstrated that the rights of princes have no existence apart from the rights of the people.

उपर्युक्त अवतरण का आशय यह है कि :—"......शासक अपनी रियासत की धरती और मिट्टी को भी अपनी बपौती ही समझता है, और वह समझता है कि रियासत की प्रजा उसकी गुलाम है, राज्य का सम्पूर्ण राजस्व उसका जेब खर्च है, चाहे वह उसे सब जगह से बटोरकर इकट्ठा कर ले, मुफ्त में उड़ा दे अथवा व्यर्थ में खर्च कर डाले और प्रजा को कोई हक़ नहीं कि वह उस खर्च के विषय में कुछ आवाज़ उठाये या शिकायत करे। इस प्रकार की सरकारों की व्याधि असह्य और दीर्घकाल तक चलने वाली है। उन्हें बुरा छोड़कर भला कहा ही नहीं जा सकता। ऐसे राजाओं को प्रशंसा के झूठे अभिवादनों से सम्बोधित करना तथा वे निश्चय ही बुरे हैं, इस बात को छिपाना एक झूठी तथा मूर्खतापूर्ण नीति है। ब्रिटिश शासन की सभ्यता का आदर्श विकसित होने पर स्पष्ट हो जायगा कि प्रजा के अधिकार भी वही हैं जो इन देशी राजाओं के हैं।"

उपर्युक्त अवतरण के अतिरिक्त इस प्रसंग में कुछ भी कहना हमें अभीष्ट नहीं है, हमारा कहना यह है कि बीती हुई बातों को भूल कर पारस्परिक सद्भाव स्थापित करने की आवश्यकता है। राजस्थानी देशी नरेशों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने प्रजा वर्ग को अपना समझें और उन्हें निर्भय रखें जिसके बदले में उनकी प्रजा से प्राप्त होने वाला सहयोग राजाओं तथा राज्य की कीर्ति, वैभव तथा सुख-समृद्धि को अप्रमेय रूप दे सकता है।

समाज की महिलाओं के विषय में

नारी ईश्वर की सृष्टि का एक अति आवश्यक और पूरक तत्व है। नारी और पुरुष का सम्बन्ध सदैव अविच्छिन्न है। नारी की महिमा भी अपार है। हम देखते हैं कि हमारे मारवाड़ी समाज के हक़ में राजस्थानीय नारी जाति के कारण

कितने उच्च आदर्शों का प्रतिपादन होता है। समाज को नारी वर्ग से कितना सुख प्राप्त होता है फिर भी वर्तमान युग में समाज की उसी नारी के कारण कभी कभी समाज को नीचा देखना पड़ता है। इस विषय में अन्य किसी से कुछ कहने सुनने का ज़माना भी अब लद गया अतएव हम प्रत्यक्ष रूप से उन्हीं को सम्बोधित करते हुए कहेंगे कि उन्हें अब स्वयं ही सोचना और समझना चाहिए। समाज को नीचा दिखाने वाली घटनाओं और प्रकरणों के विषय में यह निर्णय करने का भी अब समय नहीं कि पुरुष वर्ग अधिक दोषी रहता है अथवा स्त्री वर्ग। अब तो सवाल यह है कि नारी यदि समानाधिकार के लिये पुरुष के विरुद्ध विद्रोह के लिये तैयार हो सकती है तो स्वयं अपने चरित्र और व्यक्तित्व के सुधार के मामले में पुरुष उसके मार्ग में कैसे वाधक हो सकता है? दलीलबाज़ी चाहे जो कोई कैसे भी क्यों न करे, परन्तु तीनों काल में सत्य ठहरने वाली हक़ीक़त यही है कि तथाकथित अबला का उसकी इच्छा के विरुद्ध—अधिक से अधिक शक्तिशाली सत्ता भी कभी कुछ अहित नहीं कर सकती। अहित करना तो दूर रहा, हम देखते आ रहे हैं कि अबला की इच्छा के विरुद्ध खड़ी होने वाली प्रत्येक महाशक्ति नष्ट हो जाने से कभी बच ही नहीं सकी। जिस नारी का विरोध इतना भयङ्कर है वह अपने स्वरूप को क्यों न पहचाने?

नारी-सुधार का एकमात्र उपाय

मारवाड़ी महिला समाज की दशा के सुधार का एकमात्र तात्कालिक उपाय यही है कि वे खद्दर-परिधान को अपना लें। शीघ्र से शीघ्र समाज की महिलाओं के उत्थान का यदि कोई सफल उपाय हो सकता है तो वह यही है। यह वह एक ही तीर है जिससे परदा, निरक्षरता, बेढंगापन, फिजूलखर्ची, दिखावट की होड़, सौंदर्य प्रदर्शन के स्थान पर अश्लील-प्रदर्शन आदि दोष एक साथ ही दूर हो जायंगे, तथा सामाजिकता, राष्ट्रीयता तथा विशुद्ध प्रस्फुटित तथा सात्विक सौंदर्य का उदय आदि शुभ गुण सहज में ही प्रगट हो जायंगे, इस प्रकार समाज की महिलाओं की स्थिति सुधर जायगी और हमारे महिला समाज के कारणों को लेकर इतर वर्गों द्वारा हमारा जो उपहास होता है, वह भी समाप्त हो जायगा।

हमारे तिरष्कार के कुछ उदाहरण

इस स्थान पर अब हम मारवाड़ी भाइयों का ध्यान दोएक ऐसे उदाहरणों की ओर आकृष्ट करेंगे जिन्हें पढ़कर उनकी आंख खुल जायेगी कि आज प्रगति के इस युग में भी "मारवाड़ी" के प्रति इतरवर्गीय जननायकों के भाव क्या हैं।

पाठकों को प्रस्तुत वक्तव्यों को पढ़ने के उपरान्त ठंढे दिल से यह विचार करने की आवश्यकता है कि आखिर वह कौन सी कमज़ोरियां हमारे अन्दर मौजूद हैं जिनके कारण आज हम इतने लांछित होते हैं। पाठकों को पता चल जायगा कि प्रस्तुत पुस्तक में जितने कुछ कारण दिखाये जा चुके हैं उनका परिष्कार हो जाने पर ही हमारे आलोचकों का मुंह बन्द हो सकेगा तथा भाव एवं धारणा में भी परिवर्तन हो सकेगा। इसके लिये प्रत्येक मारवाड़ी को आत्म-बल को ही सर्वश्रेष्ठ बल मानकर दैनिक कार्यों में उस आत्म-बल का सक्रिय व्यवहार करना होगा और दुनियां को दिखा देना होगा कि हम भी अपनी मान मर्यादा की रक्षा के लिये हरवक्त मार डालने और मरने के लिये तैयार रहते हैं परन्तु आत्मबल के सक्रिय व्यवहार से ही इसकी धाक जमा करती है, क्षणिक आवेश में आकर किसी को बुरा भला कह डालने या बन्दर घुड़की दिखाने में तथा आत्मबल के सक्रिय उपयोग में ज़मीन आसमान का अन्तर होता है।

Extract from "Statesman" 11. 4. '46.

Sir F. K. Noon's Speech.

Even if we have to die fighting, we shall see that our children will never be slaves of Akhand Hindustan. We shall show these blood sucking Marwaris that we can raise the standard of living in Pakistan higher than in any country in the East.........

If the British Cabinet Mission in conspiracy with Banias leaves India with a piece of paper signed between them for peace in this country, that peace will

be short lived as the one Mr. Chamberlain negotiated with Hitler at Munich. If British put us under a Hindu Raj let us tell Britain that the destruction and havoc that the Muslims will do in this country will put into the shade what Chengiz Khan did.

"स्टेट्समैन" ता० ११-४-४६ के अङ्क में सर फोरोज खां नून की उपर्युक्त वक्तृता प्रकाशित हुई थी जिसका अक्षरशः हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है :—

"·········यदि लड़ते हुए हमें मर भी जाना पड़े तो परिणाम यह होगा कि हमारी भावो सन्तान अखण्ड हिन्दुस्तान को गुलामो में हर्गिज़ नहीं पड़ेगी। यदि पाकिस्तान के अन्दर हम औद्योगिक दृष्टि से निर्बल हैं तो महज़ अखण्ड हिन्दुस्तान वालों की बदमाशी को ही वजह से। इन खून चूसने वाले मारवाड़ियों को हम दिखला देंगे कि हम पाकिस्तान के अन्दर भी अपनी आर्थिक स्थिति को किसी भी पूर्वी राष्ट्र के मुक़ाबले अधिक ऊंचा उठा सकते हैं।·········

"यदि ब्रिटिश कैबिनेट मिशन बनियों के साथ षड्यन्त्र रचकर हिन्दुस्तान से चला गया और सुलह और अमन के नाम पर कागज़ के टुकड़े पर दस्तख़त कराकर छोड़ गया तो वह सुलह और अमन वैसी ही अचिरस्थायी होगी जैसी कि मि० चेम्बरलेन और हिटलर के बीच म्यूनिच में होने वाली सुलह की रही थी। यदि अंगरेज़ों ने हम लोगों को एक हिन्दू-राज के मातहत कर दिया तो हम ब्रिटेन से यह कह देना चाहते हैं कि यहां के मुसलमान वह तहस नहस और हत्याकाण्ड इस मुल्क में कर डालेंगे जिसके सामने चगेज़खां द्वारा की हुई बरबादी भी फीकी पड़ जायगी।"

रांची के कर्नल बर्क्ले हिल नामक एक फौजी अफसर ने मारवाड़ियों के प्रति जो ज़हर उगला है, उसके नमूने देखिये :—

24th. August, 1943.

This is all the more exasperating, because every one knows that a Marwari spends very little money

until he has amassed a fortune when he may spend a fair amount on patent medicines and prostitutes.

8th. November, 1943.

I can well believe that this man was speaking the truth as an overbearing and insolent manner in now-a-days characteristic of the class to which Raghunath Prasad Balkrishnalal belongs............

....I have heard several well educated Indians say that their chief desire for the complete independence of India of British rule is the opportunity it would afford them of exterminating Marwaris wherever they are found out of Marwar. One or two of the more tender hearted of those who have expressed this view to me have gone so far to say, "they would be satisfied if every Marwari was sent back to Marwar," but the majority consider the application of machine-guns would be more satisfactory and much cheaper.

Memo No- 792/93 misc (1) Ranchi,

Dated the 28th. June, 1944.

By-Col. Berkeley Hill.

Dear Mr. Verma,

....There is a splendid old Peepal tree in front of the B. O. C. Dept. in the Upper Bazar........why not convert it into a gallows? If we had the mentality of Germans or Russians we would have used this

tree as a gallows for Marwaris long ago. It is the only thing I can think of that would make the brutes behave properly towards their fellow men.

Mr. Verma,
Dist. Supply Officer,
Ranchi

उपर्युक्त पत्रों का हिन्दी रूपान्तर यह होगा :—

(कर्नल बर्कले हिल द्वारा)

"यह और भी अधिक क्षोभ-वर्द्धक है, कारण कि हरएक आदमी जानता है कि मारवाड़ी तब तक मक्खीचूस ही बना रहता है जब तक कि वह बड़ा भारी धनपति नहीं हो जाता और धनपति हो जाने पर वह पेटेण्ट दवाइयों और रण्डीबाजी की मदों में हजारों की रक़म फूंकने लगता है।"

२४ अगस्त १९४३ ई०।

... ...८ नवम्बर १९४३ ई०।

"......मैं भली प्रकार से विश्वास कर सकता हूं कि यह आदमी जेर करने वाले तथा धृष्टतापूर्ण जैसे, आजकल के उसी विशिष्ट लक्षण से सच बोल रहा था जो मेसर्स रघुनाथ प्रसाद बालकृष्ण लाल फर्म वाले लोगों का है।...मैंने बहुतेरे सुशिक्षित भारतीयों को यह कहते हुए सुना है कि 'हम लोगों को ब्रिटिश शासन से भारतवर्ष को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होने में विशेष अभिलाषा उस अवसर के प्रति है जिसके अनुसार हम मारवाड़ के बाहर, जहां कहीं भी मिलने वाले सभी मारवाड़ियों का सत्यानाश कर सकें ..' इस श्रेणी के कुछ कम उग्र आदमियों को तो मैंने यहां तक कहते सुना है कि—'हम तो इतने से ही सन्तुष्ट हो जायंगे कि हरएक मारवाड़ी को मारवाड़ में ही ले जाकर छोड़ दिया जाय'—लेकिन बहुसंख्यक यही कहते हैं कि—'(मारवाड़ियों का नाश कर देने के लिये) मशीनगनों का प्रयोग ही अधिक सन्तोष-जनक और सस्ता होगा।'

मेमो नं० ७६२।६३ एम० आई० एस० सी० (१)

रांची

२८ जून १९४४

प्रिय वर्मा महोदय,

"......बी० ओ० सी० डिपो के सामने अपर बाजार में पीपल का एक प्राचीन और विशाल वृक्ष है......क्यों न उसे (पीपल के वृक्ष को) फांसी का आधार बना दिया जाय ? यदि हम लोगों की मनोवृत्ति जर्मनों और रूसियों जैसी होती तो बहुत पहले ही इसी पीपल के वृक्ष को हम लोग मारवाड़ियों के लिये फांसी का वृक्ष ही बना देते। मेरे विचार से तो एक मात्र यही एक चीज़ हो सकती है जिससे ये नर-पशु (मारवाड़ी) साथ के आदमियों से उचित व्यवहार करने का सबक सीख सकते हैं।"

(मि० वर्मा, रांची के डिस्ट्रिक्ट सप्लाई अफसर थे)

मुस्लिमलीगी पत्र "स्टार आफ इण्डिया" के एक सम्वाद को देखिये :—

Calcutta,

Friday, March 3oth, '45.

Shall Marwari money rule Bengal ?

Open Secret Behind Present

Constitutional Crisis.

....Never in its life had the Assembly building seen many yellow, green and blue turbanned gentlemen as it did on Wednesday and you should have seen their jubilation on the speaker ruling favouring the opposition the ministry was defeated by nine votes, more than that number arriving too late to tip the scale against the blackmarket influence. Colourful turbans mingled in self congratulatory em-

braces. The accused ministry (Nizamuddin) it had dared attack the blackmarket. The blackmarket had shown how powerful it was and how the friends of the blackmarket would rule Bengal and the blackmarket would rule itself.

उपर्युक्त टिप्पणी का हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है :—

कलकत्ता, शुक्रवार ३० मार्च सन १९४५ ई०

"क्या बगाल पर मारवाड़ियों का पैसा ही हुकूमत करेगा ?"

वर्तमान वैधानिक गतिरोध की ओट में नग्न रहस्य

"..... गत बुधवार के दिन बङ्गाल असेम्बली भवन में पीली, हरी और नीली पगड़ीधारी भले आदमी जितनी अधिक संख्या में दिखाई पड़े, बङ्गाल असेम्बली भवन के जीवन में कभी भी उतने पगड़ीधारी एकत्र न हुए होंगे और आपने देखा होगा कि चोरबाजारी के विरुद्ध किये जाने वाले वैधानिक प्रयास के तुला दण्ड को घटाने के निमित्त बहुत देर करके आने वालों ने भी वोट देकर जब मिनिस्ट्री के प्रस्ताव को ९ वोटों से गिरा दिया और जब स्पीकर महोदय मिनिस्ट्री के प्रस्ताव की हार की रूलिंग देने के लिये खड़े हुए तो उन पगड़ी धारियों ने कैसा विजय-उल्लास दिखाया था, किस प्रकार रंग बिरंगी पगड़ी धारण किये हुए वह लोग बधाई की सूचना में फूल फूलकर एक दूसरे के गले मिल रहे थे। (नाजिमुद्दीन की) अभियुक्त मिनिस्ट्री ने चोरबाजारी पर प्रहार करने की हिमाक़त कर डाली ! चोरबाजारी ने अपनी शक्ति का परिचय स्पष्ट कर दिया ! चोरबाजारी को शह देने वालों ने दिखला दिया कि किस प्रकार बंगाल पर वे खुद तथा खुद चोरबाजारी भी हुकूमत करेगी !"

यह हैं मारवाड़ी समाज पर तथा मारवाड़ियों के विरुद्ध किये जाने वाले आक्षेपों और आक्रमणों के बिल्कुल थोड़े और साधारण उदाहरण ! समाज को ज्ञात हो कि इससे भी कहीं अधिक अपमानजनक, कटु और संगीन आक्षेप तथा क्रियात्मक आक्रमण बड़े वेग के साथ हमारे विरुद्ध बहुत से प्रगट रूप में और बहुत से गुप्त रूपसे— चल रहे हैं। सिनेमा थियेटर और फिल्म चित्रों में हमारे अपमान की बात भी

प्रगट हो चुकी है। सुहराब मोदी जैसे निर्देशकों की सारी शक्ति मारवाड़ियों को तिरष्कृत, अपमानित और लांछित करने में लग रही है फिर भी हम हज़ारों की संख्या में उनके चित्रों को देखने के लिये, स्त्री बच्चों समेत, जाते हैं, और हज़ारों रुपयों के टिकट खरीद कर अपने द्रोहियों की मदद करते हैं! लानत है आनन्दोपभोग की ऐसी कमीनी हरकत पर! इस प्रकार के प्रत्यक्ष अपमान पर भी जिनकी आंखें नहीं खुलतीं, ऐसी भद्दी गैरत और जिल्लत पर भी जिनका खून नहीं खौलता, समाज के ऐसे नराधमों की मातायें बांझ रहतीं वही अच्छा था। उपहास करने वालों को कुछ भी कहने का हमें क्या अधिकार है? जिसका मखौल उड़ाया जाय, जिसका अपमान किया जाय, जिसे बरबाद कर देने की साजिशें की जायं, उन्हीं मुर्दा दिलों की नसों में बिजली भरने की जरूरत है, उन्हीं जरूरत से ज्यादा सहिष्णु अथवा बुद्धुओं को आत्म-बल से अवगत कराने की आवश्यकता है, और हमारी इस पुस्तक के प्रत्येक पाठक के लिये सक्रिय प्रयत्न का यह एक शपथ पूर्ण प्रोग्राम है!

———

परिच्छेद १०

भावी राष्ट्र में मारवाड़ी समाज

प्रांतीयता, सामाजिक विचार से उच्चता और निम्नता का भाव तथा अनुभूति, मतमतान्तर संबन्धी विभेद, प्राचीन रूढ़ियां, भाषा और वेशभूषा गत वैषम्य, वैयक्तिक अहंभाव तथा साधारण विवेक का अभाव आदि भारतवर्ष के अभिशाप रूप संस्कार हैं, और जब तक इन अभिशापों के सीमित दायरे से प्रत्येक समाज बाहर नहीं निकलेगा, अपने साधारण विवेक से काम लेकर विकास-पथ पर अग्रसर नहीं होगा तब तक इन सभी समाजों का एकत्र रूप, भारतीय राष्ट्र ससार के सामने एक शक्तिशाली राष्ट्र बनकर न तो अपने स्वरूप का ही दिग्दर्शन करा सकेगा और न ऊँचा ही उठ सकेगा। इस विषय में अपनी कर्तव्य-निष्ठा और आशा के बल पर हम यह कहने के लिये तैयार हैं कि देश के सभी समाज संभलेंगे और सामूहिक रूप से भारतीय राष्ट्र भी उन्नत होगा परन्तु प्रतीक्षा अवश्य करनी पड़ेगी। अपने कर्तव्य में तत्पर रहकर, धैर्य के साथ, कर्मयोग को अपना आदर्श बनाते हुए, उसे चरितार्थ भी करते हुए, साथ साथ जापानियों के Suicide squadron (आत्म-घाती दस्ते) के तत्वगत सिद्धान्तों को आत्मसात करते हुए, एक साथ भारतवर्ष में क्रियात्मक राष्ट्रीयता के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए, उस अरसे तक प्रतीक्षा करनी होगी जब हमारी वयोवृद्ध पीढ़ी मर जायगी, उसके बाद में हमारी पीढ़ी भी लड़ते लड़ते समाप्त हो जायगी। इस अवधि में हम अपने बाद वाली पीढ़ी के लिये वह भूमि तैयार कर जायंगे जिसमें बोया हुआ बीज अंकुरित, प्रस्फुरित पुष्पित और फलित हो सकेगा।

फल प्राप्ति के लिये और फल का उपभोग करने के लिये जिस सतर्कता और जिस परिश्रम की आवश्यकता हुआ करती है वह हमारी भावी संतान की साधना का विषय होगा।

भारत की राष्ट्रीयता का वर्तमान युग प्रतिस्पर्धात्मक युग है। भारतवर्ष के लिये जमाने का परिवर्तन चक्र बड़ी तेज़ी के साथ घूम रहा है। प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक दल, इसी प्रकार प्रत्येक समुदाय और समाज अपनी अपनी शक्ति और अपना अपना बुद्धि-बल, कौशल तथा साहस दिखाकर भावी राष्ट्र की पृष्ठ-भूमि पर अपनी छाप अंकित करने में लगा हुआ है तथा अपने अपने भावी स्वतंत्र और ज्वलंत अस्तित्व रूपी प्रासाद के निर्माण में अपनी नींव बना रहा है। और कहांतक कहा जाय, अपने इसी ध्येय के प्रयास में देश के लीगी मुसलमान जो कुछ कर रहे हैं वह भी किसी से छिपा नहीं है। सोशलिष्ट, कम्यूनिष्ट, कांग्रेस, हिन्दूमहासभा आदि, बंगाल, बिहार, युक्तप्रांत, पंजाब और देशी रियासतें, सभी खराद पर उतारे जा रहे हैं; सब की संस्कृति की अग्नि-परीक्षा हो रही है।

भारत-वासी होने के नाते सभी को अनिवार्यतः उस अग्नि-परीक्षा में प्रविष्ट होना पड़ेगा। परीक्षा में प्रविष्ट होना अपरिहार्य समझ कर भी जो प्रयास और तैयारी न कर सकेगा और इसके फलस्वरूप जो उस अग्नि-परीक्षा में असफल हो जायगा, वह सदा के लिये ही खोटा साबित हो जायगा, सदा के लिये हीन और निंद्य ही बन कर रह जायगा।

परीक्षा की इस अनिवार्य होड़ के लिये अन्य सबों की तरह राजस्थान को भी एक बार फिर कसौटी पर चढ़ना होगा और तब देखा जायगा कि बाप्पा रावल, पद्मिनी, गोरा-बादल, सांगा, महाराणा प्रतापसिंह, महाराज अग्रसेन, रानी दुर्गावती, भामाशाह और दुर्गादास आदि जिन महापुरुषों और वीरांगनाओं ने अपने रक्त से जिस खेती को सींचा है, उसमें कितने फल लगे हैं। इतने बड़े परिमाण में जिस जाति का रक्त-पात हुआ, त्याग और बलिदान हुआ, उसे किस प्रकार भुलाया जा सकता है और कैसे उसकी शान पर धब्बा लगते देखना बर्दाश्त किया जा सकता है?

वर्तमान समय 'कलि-युग' है, नीति और धन यही दो इस युग के अस्त्र हैं।

आज की शक्ति पशुबल में नहीं, भौतिक विज्ञान में है। जिस सर्वशक्तिमान की कृपा से अभी भी राजस्थान की गौरव गरिमा वर्तमान रही उसी की दया से आज हमें युगके उपयुक्त नीति और धनके दोनों ही अस्त्र प्राप्त हैं और सुलभ हैं। जो कुछ कमी है वह विज्ञान की ही है। उस विज्ञान की शक्ति को भी हम सुलभ बना सकते हैं यदि हम अभी से सतर्क होकर उसके प्रयत्न में लग जायं।

"जब तब दिल्ली तवरों की"

यह एक नारा है, एक आदर्श वाक्य और एक संकल्प है जिसका अर्थ है—कभी न कभी तवर लोग दिल्ली पर अधिकार करेंगे ही। क्या आप जानते हैं, ये "तवर" कौन हैं? नहीं जानते तो सुनिये—जब महाराज पृथ्वीराज चौहान परास्त हो गये और दिल्ली पर यवनों की पताका फहराने लगी, तभी चौहान क्षत्रियों के एक वर्ग के अन्दर एक टीस उठी, खून में एक ऐसा उफान उठा जिसे वे सहन न कर सके, और उन्होंने चित्तौड़ की दुर्गा-भवानी के सामने शपथ ली कि—"आज हम घर से निकलते हैं, मां तेरी शपथ लेकर—कि जब तक भारत का राज्य वापस न ले लेंगे, जब तक दिल्ली पर अधिकार नहीं कर लेंगे तबतक घर नहीं लौटेंगे"—यही हैं वे "तवर" जो शताब्दियों से खाना बदोश की तरह पहाड़ों; जंगलों और देश बिदेशों में नाना कष्ट झेलते हुए बैल गाड़ियों में ही घर द्वार और परिवार रखे हुए घूम रहे हैं। इन संकल्प-वीर राजस्थानी चौहानों को आजकल "गाड़िये-लोहार" कहा जाता है और वे जगह जगह घूमते हुए लोहार का काम करते हैं। राजस्थान के लिये इन "तवरों" की तथा उनके व्रत और कष्टों की स्मृति भुला देना कलंक की बात होगी। राजस्थानियों को आज दुनियां के सामने इन "तवरों" के अधिकार की बात खोल कर रखनी होगी, वर्तमान राष्ट्रीय कर्णधारों के सामने स्पष्ट करना होगा कि "मुस्लिम लोग" के मुक़ाबले तवरों के वंशधरों के मौलिक अधिकार कितने अधिक हैं तथा देश के शासन में इन चौहान वंशधरों के अधिकार का क्षेत्र कितना अधिक है तथा राष्ट्रीय समुदाय से पूछना भी होगा कि इस वर्गके प्रति किसे कितनी जानकारी प्राप्त हुई है तथा उन्हें सामाजिक और राजकीय क्षेत्र में कितना अधिकार और कितनी सुविधायें दी जा चुकी हैं?

घोर संताप की एक गर्म आह निकल जाती है यह देखकर कि शताब्दियों तक ठोकरें खाते खाते हमारी भावनायें इतनी कादर बन गई हैं कि हम अपने उपलब्ध अधिकारों को मांगने में भी कष्ट का अनुभव करते हैं। पुस्तक के प्रथम परिच्छेद में बुद्धूपन के लिये जो प्रतिबाद किये गये हैं, हमारे इस विषय के बुद्धूपन का उनमें से किसी से भी प्रतिवाद नहीं हो सकता। केवल यही नहीं है कि हमें राष्ट्र से अपने न्यायोचित अधिकारों को मांगना भी भार समझ पड़ता है, वरन हमारी कादरता पराकाष्ठा पर पहुंच गई है और आज हम अपनी जीवन रक्षा में, अपने माल असबाब, घर द्वार, जमीन जायदाद, भाई बन्दों की सुरक्षा में तथा बहू बेटियों की इज्जत बचाने में भी दूसरों का ही मुंह ताकते हैं। जो हम से खाता है वह भी हमारे मुंहपर थप्पड़ मार कर अपना उल्लू सीधा करता है, और इसी जगह पर मारवाड़ियों का डरपोकपन चरितार्थ होता है। अपने स्वाभिमान और अपने स्वरूप को हम इस क़दर भूल गये हैं कि विद्वान, धनवान होते हुए भी अपनी गृहस्थी, अपने व्यापार और अपने समाज का भी नियंत्रण दूसरों के मुक़ाबले व्यापक रूप से नहीं कर सके। आज हमारी यह दशा है कि खुद हमारा नौकर ही व्यंग, परिहास और उपहास के रूप में हमारा मजाक और हमारी खिल्ली उड़ाता है और हम "के कहबो है भाया" कहकर ही टाल देते हैं जब कि जरूरत इस बात की है कि अपना उपहास सुनकर हमें उस आदमी पर भी, जिससे हमारा कोई ताल्लुक न हो, चीते की तरह टूट पड़ें फिर अपना ही नमक खाने वाले नमकहराम के मुंह से अपना उपहास सहन करना तो दूर की बात है। ऐसे अवसरों पर पंजाबिन औरतें जूते चला कर ही नाम पैदा करती हैं। अंगरेज मानहानि का मामला चलाकर उपहास करने वाले को जेल भेजकर भी क्षमा कर देने का श्रेय लड़कर हासिल कर लेते हैं। एक हम हैं जो भारी से भारी बेइज्जती को गले से उतार देने में ही अपनी फर्ज अदाई समझ लेते हैं। लाखों बार धिक्कार है ऐसी हीन मनोवृत्ति पर, पैसे पर और स्वार्थ लिप्सा पर! क्यों न पग पग पर हम अपमानित, ताड़ित दंडित और लांछित हों, जब हम कुत्ता और बिल्ली से भी गये बीते हैं क्योंकि कुत्ता और बिल्ली भी, यहां तक कि चींटी भी दबाव और चपेट में आने पर जान की बाजी लगाकर अपना असली, विकराल रूप धारण कर लेते हैं।

हम स्वार्थी हैं, आज का युग भी स्वार्थ का ही है, हमें स्वार्थ का सच्चा परिचय देना होगा, वह भी समस्त विश्व के सामने। राष्ट्र के सामने! यदि हम अपने अधिकार की प्राप्ति के लिये अड़ जाते हैं, स्वार्थ की सिद्धि के लिये जो भी उपाय काम में लाते हैं, उन्हें कदापि अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता। भारत का राष्ट्रीय विधान मारवाड़ी वर्ग को साथ लिये बिना, कदापि पूर्ण नहीं हो सकता। और न वह एक क्षण, एक पल, तिलभर आगे ही बढ़ सकता है। यदि वैधानिक बागडोर सभालने वाला वर्ग मारवाड़ियों को साथ लिये बिना ही आगे बढ़ना चाहेगा तो यह उसकी राजनीतिक अज्ञानता का ही प्रमाण होगा। और हमारे इस कथन के कुछ ठोस कारण भी हैं।

क्या आज देश की राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस अपनी सफलता के मार्ग में मारवाड़ियों द्वारा प्राप्त सहायता से इनकार करके कृतघ्नता का परिचय देगी? आज यदि मारवाड़ी वर्ग कांग्रेस को सफल बनाने के क्षेत्र में अपनी सहायता का स्वरूप पहिचानने के लिये कांग्रेस-कोष की जांच का प्रश्न उठाये अथवा उसकी रिपोर्ट मांगे तो उसकी यह मांग अनुचित होगी? क्या यह उचित नहीं होगा कि हम कांग्रेसी सत्ताधारियों से पूछें कि आप मारवाड़ी जाति के साथ क्या सलूक कर रहे हैं और मारवाड़ी जाति के प्रति आपकी क्या भावना है?

आज सर फिरोज़ खां नून जैसे जिम्मेदार मुसलमान भी उस इज्ज़त और सम्मान को—जो मारवाड़ और मारवाड़ियों द्वारा मुसलमानों को प्राप्त हुआ—भूल गये हैं और खुले प्लैटफार्म पर से हमें मक्खी-चूस आदि शब्दों से तिरष्कृत करके अपनी कृतघ्नता का परिचय दे रहे हैं। 'मारवाड़ी सम्मेलन' में ऐसे लांछनों और अपमान तथा तिरष्कार पूर्ण लेखों, समाचारों और वक्तृताओं का एक संग्रह एकत्र हो चुका है और जिन मारवाड़ियों के दिल में कुछ जलन हो, जिज्ञासा हो, वे सहज ही में उन वर्णनों को देख और पढ़ सकते हैं।

यह सब अपवाद, तिरष्कार, लांछन तथा भर्त्सनायें इसी लिये तो हो रही हैं कि हम अपनी शक्ति को, अपने स्वाभिमान को भुलाये हुए पड़े हैं। ऐसे लांछनों को बर्दास्त करके हम दुनियां को यही बता रहे हैं कि हम अपने कौशल का भी ज्ञान

नहीं रखते। यदि कांग्रेस के मुक़ाबले मुस्लिम लीग आधे भारतवर्ष पर क़ब्ज़ा करने तथा पाकिस्तान बना कर ही दम लेने को अपना अधिकार घोषित कर सकती है तो समस्त भारतवर्ष, आर्यावर्त, हिन्दुस्तान, उसकी संस्कृति, सभ्यता तथा उसके नाम को भी, "राजस्थान" और "राजस्थानी" घोषित करने को क्यों नहीं हम अपना अधिकार मान सकते और क्यों उस अधिकार पर हम नहीं अड़ सकते, विशेषतः इसलिये कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों के सामने राजस्थान ही अधिक ध्वनिबद्ध, प्राचीन, संस्कृति और सभ्यता का सूचक है। अस्तु। तात्पर्य यह कि भावी राष्ट्रनिर्माण में मारवाड़ी वर्ग को बहुत ही उपयुक्त और निकट स्थान देना होगा। जब तक यह "पार्टी-बाज़ी" और 'समाजबाज़ी" भारतवर्ष में चलती रहेगी और जबतक इन सब दलबदियों का तिरोभाव होकर एक राजनीतिक मतवाद सत्ताधारी नहीं हो जायगा तबतक हम अपने समाज के हक़ में मारवाड़ी अथवा राजस्थानी, किसी भी एक नाम से, जो हमें प्रिय और उच्च समझ पड़ेगा, भावी राष्ट्र में अपना उचित और न्यायपूर्ण स्थान तथा अधिकार प्राप्त करने की इस होड़ में, तथा राष्ट्रीय संग्राम में बराबर युद्ध करते रहेंगे। इस होड़ में मारवाड़ी वर्ग को एक बार पुनः राजस्थानी गौरव तथा राजस्थानी महिमा को चरितार्थ कर दिखाने की प्रबल आवश्यकता है जिसमें चूक हो जाने पर वह भूल सामने आयेगी कि एक बहुत बड़े समय तक हाथ मल-मल कर पछताना पड़ेगा और हमारी भावी संतान हमें उसी तरह कोसेगी जिस प्रकार महाराणा प्रतापसिंह अपने पिता उदयसिंह को कोसा करते थे।

इसी वर्तमान समय में तथा निकट भविष्य के बीच के थोड़े से अरसे में हमें क्या करना चाहिए, इसी बात पर कुछ कहना प्रासंगिक है, इसके लिये यद्यपि अतीत के सम्बन्ध में कुछ कहना सिद्धान्ततः व्यर्थ ही समझा जाता है फिर भी—अतीत को भी भविष्य के सम्बन्ध से कभी विच्छिन्न नहीं किया जा सकता। एक ओर हमें मानना होगा कि 'इतिहास मनुष्य के ज्ञान-चक्षुओं को खोल देता है, दूसरी ओर हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि करोड़ों और अरबों वर्ष पूर्व मनुष्य का जो रूप, गुण कर्म, स्वभाव और जाति थी, आज वर्तमान में हम, आप, सभी उसी शृंखला की

एक कड़ी तो है, और भावी सन्तान भी उसी शृंखला की एक कड़ी होगी अर्थात काल और अवकाश अथवा आकाश का क्रम सदैव अविच्छिन्न है। कल का भविष्य आज बनकर वर्तमान कहलायेगा और आवश्यक कर्त्तव्य की पुकार उठायेगा तथा आज का वर्तमान कल बनकर अतीत कहलायेगा। इस प्रकार अतीत और भविष्य दोनों ही वर्तमान की एक शृंखला की कड़ियां हैं। इन्हीं कड़ियों के सम्यक ज्ञान को जागरूक रखना ही मनुष्यता की नींव है। इस प्रकार अतीत और वर्तमान की शृंखला में भविष्य की विवेकपूर्ण तथा तर्क-संगत विवेचना करते हुए कल्पना को सत्य बनाना ही मनुष्य की अजेय शक्ति है जिसके कारण वह पशुता के वृत्त से बाहर रहता है। मनुष्य की उस अजेय शक्ति को बुद्धि कहते हैं जिसके द्वारा भविष्य के लिये वर्तमान में कर्म करना ही किसी वर्ग, समाज, राष्ट्र तथा सृष्टि-नियम-बद्ध संसार की एक महत्वाकांक्षा का रूप प्राप्त करता है।

उसी महत्वाकांक्षा को लेकर भारतीय मारवाड़ी समाज को अपने भारतीय राष्ट्र में एक बहुत महत्वपूर्ण भाग लेना है, वह भी खासकर राष्ट्र के सबसे प्रबल 'आर्थिक' विभाग में। प्राचीन भारत में यदि राजस्थान ने लड़ने और मरने मारने में अपनी दक्षता का परिचय दिया है और जिसके कारण एक बार राजपूती साहस और वीरता की तूती समस्त संसार में बोल उठी, यहां तक कि युग और संसार के बड़े से बड़े इतिहासकार की लेखनी ने भी राजस्थानी शान में ही शरण ली—तो आज बाहुबल का युग बीत जाने पर राजस्थानी समाज अर्थ और वाणिज्य बल में श्रेष्ठ तथा उस नीति में दक्ष है। भारतीय राष्ट्र को इस आर्थिक और वाणिज्यगत दक्षता से लाभ उठाना है। आज मारवाड़ी या राजस्थानी अर्थ और वाणिज्य-शक्ति के बिना राष्ट्र भूखा है और अपनी इसी क्षमता को पूर्ण सांस्कृतिक विकास तक हमें ले जाना है। राजस्थानी व्यापार-कुशल वीरों को अपनी दक्षता का परिपूर्ण और निश्शंक परिचय देने का समय अत्यन्त निकट आ पहुंचा है जिसके लिये उन्हें हर प्रकार से तैयार हो जाना चाहिए। सावधान! कहीं तुम्हारी विख्यात दक्षता में त्रुटि न निकले।

जो युग हमारे अति सन्निकट आ गया है, उसके लिये हमें यार होने केतै लिये जहां अपने सर्वाङ्गीण सुधार का प्रश्न है उसमें भी अब सोच विचार के लिये

समय नहीं रहा। अब तो हरएक आदमी को दो में से एक ही निश्चय कर लेना होगा कि वह इस पार रहता है या उस पार। प्रत्येक व्यक्ति को अब या तो युग के अनुकूल न बनकर वही करना चाहिए जो मुसलमानों के चाप में पड़कर बहुत से हमारे राजस्थानी पूर्वज भी कर डालते थे (अर्थात् इस्लाम कबूल कर लेते थे) अथवा फिर उसे जल्द से जल्द युग के अनुकूल बन कर पौरुष, बलिदान, वीरता तथा कष्ट सहिष्णुता और आत्मबल के गुणों को धारण करके अति कठोर संग्राम के सामने भिड़ जाना चाहिए। भावी भारत के लिये हमारे आपके सामने यही दो रास्ते हैं, इनमें से एक, जो भी आप चाहें, अपने लिये निश्चित कर सकते हैं।

जो लोग किसी चाप विशेष की यातनायें सहने में या उनका मुकाबला करने में असमर्थ और भीरु हैं उनकी बात को हम छोड़ देते हैं परन्तु दूसरे रास्ते वालों के लिये निम्नलिखित सुझावों पर अमल करने की आवश्यकता है :—

१—प्रत्येक व्यक्ति का पहला काम यह हो कि वह अपने को समाज का, संस्कृति और सभ्यता का अत्यन्त गौरव पूर्ण तथा अत्यावश्यक अंग समझे जो राजस्थानी गौरव का एक कारण है। उस व्यक्ति के लिये उसका समाज खुद उसी का वृहत चित्र (Enlarged picture) है अतएव उसका कर्तव्य समाज का कर्तव्य है तथा समाज का कर्तव्य ही उस व्यक्ति विशेष का कर्तव्य है।

२—समाज का हित उस व्यक्ति विशेष का हित है तथा व्यक्ति का हित ही समाज का हित है। उसे सावधान रहना होगा इस बात से कि कहीं उसके द्वारा किया हुआ कार्य ऐसा न हो जिससे वह पूरा समाज राष्ट्र के सामने अपमानित या कलंकित समझा जाय।

३—यदि मारवाड़ी या राजस्थानी होने के नाते आप वाणिज्य व्यवसाय-कला प्रवीण हैं तो आप अपनी कला से पूरा काम लें, धन कमायें, जिस नीति से भी कमा सकते हैं, बराबर कमायें, मेहनत से, सद्व्यापार से, राजकीय नियमों की अनुकूलता से तथा अपने लिये घातक परिणामों से बचते हुये धन कमायें, परन्तु उस कमाये हुये धन को खर्च करने के मामले में आप

यह समझें कि हम समाज द्वारा प्रतिबन्धित और अनुशासित हैं। धन को खर्च करने में आप अपने विवेक से काम लें, समाज की अनुमति से काम लें, समाज के प्रवाह और उसकी प्रवृत्ति से काम लें, न्याय की अनुमति लें, शास्त्र और विज्ञान की अनुमति से काम लें। समाज और राष्ट्र के एक आवश्यक अवयव के नाते आपको याद रखना चाहिए कि आप कार्य करने में स्वतन्त्र हैं परन्तु फलोपभोग में परतन्त्र ही हैं।

अपने सुख के पूर्ण साधनों के लिये आप खर्च करें, जी भर कर खर्च करें लेकिन बुद्धू और अहमक बनकर न खर्च करें। एक पैसा भी खर्च करने के पूर्व यह सोच लें कि इसके बदले में हमें उपयुक्त और यथेच्छ तृप्ति प्राप्त होगी या नहीं, उस एक पैसे के उपयोग का कोई और अधिक सुन्दर और सन्तोषजनक उपाय हो सकता है अथवा नहीं, यदि कई आवश्यक काम १ पैसे के खर्च के सामने हैं तो उन सब में सबसे अधिक आवश्यकता वाला काम कौन सा है।

अपने आराम के लिये; अपने जीवन-मान (Standard of living) के लिये आप खर्च करें, अपनी योग्यता और आमदनी के अनुकूल, लेकिन समय के प्रवाह को देखकर, राष्ट्र की प्रगति और प्रवृत्ति को देखकर तथा समाज के प्रभाव प्रवृत्ति और जरूरत को देखकर।

४—बन्द कर दें आप किसी भी मद में १ छदाम का भी चन्दा देना। सिद्धान्त बना लें कि किसी भी रूप में और किसी को भी चन्दा नहीं देंगे। क्या आपको चन्दा देकर तृप्ति की अनुभूति होती है? यदि तृप्ति होती है तो व्यष्टि रूप से आपके लिये चन्दा देना उचित हो सकता है परन्तु क्या अच्छे काम के नाते, दूसरों की सहायता करके परोपकार करने के श्रेय के नाते अथवा नेकनामी, लोक ख्याति की होड़ के नाते, सामाजिक रूप से आप न्याय कर रहे हैं? सोचिये कि आपकी उस वृत्ति का आपके व्यक्तित्व के साथ, देश या राष्ट्र के साथ, संसार के साथ और विश्वंभर की निखिल सृष्टि के साथ क्या और कैसा सम्बन्ध है?

५—विशेष परिस्थिति के अतिरिक्त "भूख" के नाम पर किसी भी प्रकार का दान

देना इस युग का सबसे बड़ा पाप है और इस प्रकार का दान लेना व्यापार है। आज भारतवर्ष के ६० लाख अकर्मण्य मक्कारों का जीवन आमदनी और ऐशो आराम के साथ इसी दान के कारण चल रहा है। इतने पर भी यही लोग उन्हें बेवकूफ और उल्लू कहते हैं जिनसे वे दान पाकर पुष्ट होते हैं। इस दान का पैसा प्रायः शराब खोरी, चरस, गांजा, सुलफा और अफीम की नशेबाजी में खर्च होता है।

यदि आपने 'भूख' के नाम पर दान दिया है तो आप इतने बड़े जन समुदाय को निष्क्रिय, और आलसी बनाने के अपराध के भागी हैं। इसी अपराध के सिलसिले में आपने उक्त जन-समुदाय को देश का कोई भी काम करने से बञ्चित कर दिया इसलिये अंशतः आप देशद्रोही भी हैं। जो मनुष्य मांग कर ही अपनी उदर पूर्ति करता है, उसे इस युग में रहने का अधिकार नहीं है। मांगने वाला यदि देखे कि किसी की थैली में लाखों और करोड़ों रुपये हैं और यदि वह रुपये वाले का गला घोंटकर रुपये ले ले तो यह डाकेज़नी उसका अधिकार बन सकती है परन्तु मांग कर खाना उसका अधिकार कदापि नहीं हो सकता। वस्तुतः यदि कोई भूखा है और उसमें शक्ति और साहस है तो निश्चय ही वह किसी पैसे वाले की छाती पर सवार होकर अपनी भूख मिटाने का उपाय कर सकता है। यदि कोई भूखा ऐसा नहीं कर सकता तो या तो वह वस्तुतः भूखा नहीं है अथवा फिर वैसे आदमी की न तो राष्ट्र या समाज को ज़रूरत ही है और न उसे जीवित रहने का ही अधिकार है।

६—ईश्वर के नाम पर किये जाने वाले खर्च को भी बंद कर दें, चाहे वह एक पैसे का खर्च हो या लाखों का। ईश्वर का सौदा इतना सस्ता नहीं कि वह एक पैसे या हज़ार लाख रुपयों से खरीद लिया जाय। ईश्वर का सम्बन्ध आपकी आत्मा से है, पैसे से नहीं। ईश्वर की ईश्वरता तो "दुर्योधन की मेवा के बदले बिदुर के शाक" में ही सन्तुष्ट होने वाली होती है। ईश्वर का मन्दिर आपके हृदय के ही अंतर्गत है। वहीं पर भगवान अपनी अनन्त सत्ता, और अनन्त ज्योति लिये हुए संतत प्रतिष्ठित हैं। आप उनका दर्शन करते हैं या समय

और पैसा ही नष्ट करते घूमते हैं ? आपने अपने वयोवृद्धों की यथार्थ और सक्रिय रूपसे श्रद्धा की, या केवल श्राद्ध ही करते रहे ? आप ईश्वर के पुजारी को भोजन कराते हैं या ईश्वर के भूत को ? यह ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर आप अपनी ही ओर से प्राप्त करें। उपर्युक्त बातों के प्रति हमारा निज का कोई विरोध या अनुकूल भाव नहीं है। इन सब बातों का ठीक ठीक उत्तर अपने ही हृदय से जो कुछ मिलेगा वही ठीक है, शेष सब गलत है। हमारा मतलब केवल यही है कि अपने विवेक को पूर्ण जागरूक रखकर ही काम करें, अन्ध विश्वास से यथाशक्ति दूर रहें।

धर्म और ईश्वर

यह वह युग है जिसमें कपटाचार ही प्रधान है इसलिये पारस्परिक अविश्वास संसार का एक चिरसंगी बन चुका है अतएव यदि हम यथार्थ कार्य और कारणों के प्रमाण के बिना धर्म और ईश्वर के संबंध में कुछ भी कहें या करें, उसे महत्व देने के लिये कोई तैयार नहीं होगा और इसीलिये धर्म और ईश्वर के संबंध का हमारा कोई भी आचार आदर्श का स्थान नहीं पायेगा इसलिये इस दिशा में भी हमें संभलने की आवश्यकता है।

धर्म और अधर्म की व्याख्या हिन्दू संस्कृति के अन्दर कोई इतना छोटा विषय नहीं जिसे थोड़े से शब्दों द्वारा थोड़ी ही देर में स्पष्ट कर दिया जाय अथवा समझ लिया जाय। शास्त्रकारों ने "यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः" के रूप में भी धर्म की एक परिभाषा निश्चित की है जिसका आशय है कि जिस भाव से हमारा सांसारिक अभ्युदय हो, साथ ही शरीरान्त के पश्चात आत्मा को सद्गति प्राप्त हो उसी को धर्म कहते हैं।

दर्शनकारों की एक दूसरी श्रेणी ने धर्म की परिभाषा में कहा है—"किसी वस्तु के उस गुण को धर्म कहते हैं जिसके अभाव में वह वस्तु अपना सत्व और स्वरूप खो देती है, जैसे उत्ताप और तेज रहित अग्नि को राख या कोयला कहा जाता है इसलिये उत्ताप और तेज ही अग्नि का धर्म है।"

इस विषय में अधिक कुछ न कह कर हम देखते हैं कि इतने से ही हमारा काम पूर्ण हो जाता है।

जिस कार्य से हमारा इस लोक का अस्तित्व सफल रहे और आत्मा में वह संस्कार अंकित हो जायं जिनसे मृत्यु के उपरांत भी आत्मा शांति पावे वही कार्य हमारा धर्म है इसलिये जीवन के लिये, अस्तित्व के लिये, मान-मर्यादा और सदाचार के लिये जो कर्म हमें करना चाहिये वही तो हमारा धर्म हुआ! इस प्रकार सच्चे अर्थ में हमारा धर्म-पालन तो यही हुआ कि हम वर्तमान राष्ट्र या संसार में अपना न्यायोचित अधिकार प्राप्त करके सुखी और शांत रहें। यदि हम यह नहीं कर सके तो हमसे बढ़कर अधर्मी कौन होगा?

इसी प्रकार आज यदि हम अपने उन गुणों से पराङ्मुख हो जायं जिनके कारण हम राजस्थानी, मारवाड़ी, मनुष्य, व्यापारी और सनातनी कहे जाते हैं तो यही हमारा धार्मिक पतन हो गया, अतएव उत्ताप और तेज से युक्त रहकर ही अग्नि को अग्नि समझा जायगा तथा यदि उसे कोई उंगली लगायेगा तो जल जायगा।

यदि हम धर्म की इन्हीं दो परिभाषाओं को हृदयंगम कर लें और यह भी जान लें कि—**"धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः"**—अर्थात् जो अपने धर्म की रक्षा करता है स्वयं धर्म उसकी रक्षा करता है, तथा जो अपने धर्म को मारता है उसे धर्म भी नष्ट कर देता है—तो हमारी सारी समस्यायें एकदम से ही सुलझ जायं। हम अपने धर्म के प्रति प्राणों को जोखिम में डालकर भी कट्टर बन जायं तो कोई ताक़त नहीं जो हमारे अधिकारों से इनकार कर सके अथवा हमारी ओर उंगली उठा सके। धर्म के क्षेत्र में इसी मार्ग पर चलकर हम अपना उचित स्थान बना सकते हैं।

ईश्वर का प्रश्न व्यक्ति विशेष के विश्वास और श्रद्धा से सम्बन्धित है फिर भी साधारण रूप से सर्वसाधारण के समक्ष यही कहा जा सकता है कि वह सर्वशक्तिमान सर्वत्र और सम-भाव से वर्तमान है जो प्रत्येक भूत या प्राणी को इस कार्यक्षेत्र में नानाविध नाच नचाया करता है सही परन्तु प्रत्येक प्राणी उसकी आज्ञानुसार कर्म करने के लिये विवश है। ईश्वर की यह ईश्वरता भी हमें अकर्मण्य रहने का आदेश नहीं देती, साथ ही वह किसी भी कर्म के परिणाम की भीषणता से किंचित् भय की भी सूचना नहीं देती। इस रास्ते से भी हमें वही निर्णय मिलता है कि हम अपने अधि-

कार के लिये, अपने धर्म के लिये सतत कर्मशील बनें और उसके लिये आने वाले कष्ट और बरबादी की किंचितमात्र भी परवाह न करें। यदि हम अपनी चेष्टा में सफल हुए तो संसार का सुख और शांति हमें प्राप्त होगी और यदि मर गये तो ईश्वर के अनन्य आज्ञाकारी बनकर स्वर्ग लाभ करेंगे। जिस ईश्वर के विश्वास में शहीद हो जाने का इतना बड़ा अलभ्य लाभ मिलता है उसके उपासकों को त्याग, बलिदान और कर्मपरायणता से भय कैसा! कर्मक्षेत्र में हम अपने अधिकार के लिये और अपने धर्म के लिये जीवन का मोह छोड़कर प्रवृत्त हो जायें, यही तो हमारी आस्तिकता और ईश्वर-भक्ति है! ऐसी सच्ची ईश्वर भक्ति करने वालों के न्यायोचित अधिकारों को रोकने की शक्ति किसमें होगी?

विशाल हिन्दू संस्कृति के ग्रन्थों, साधु संतों से जितना ही अधिक संपर्क किया जायगा, धर्म और ईश्वर का विषय उतना ही विस्तृत और स्पष्ट होता मिलेगा परन्तु प्रत्येक स्थल पर कर्म और जीवन के मोह के त्याग का ही आदर्श सामने आयेगा। यदि हम इस विषय में सिर्फ इतना ही हृदयंगम कर लें तो अपने धर्म के पालन और अपनी ईश्वर-भक्ति से ही हमारा उचित स्थान बन जाने में देर नहीं लगेगी।

जिन कार्यों से तथा जिन मार्गों से उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति न हो वे सब अधर्म और नास्तिक भाव हैं। यदि हम सनातनी हैं तो अधर्म और नास्तिक भावों से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध जोड़ना हमारे लिये कलंक है। अपने हृदय में अनुसंधान कीजिए, कहीं ऐसा कलंक विद्यमान तो नहीं है? यदि है तो तत्काल उसका परिष्कार कर दीजिये और तब आप देखेंगे कि आप सांसारिक स्थिति में कितने अधिकार युक्त, धन, वैभव, यश और शक्तिशाली होकर राष्ट्र तथा समाज को भी वैसा ही बना देने वाले हैं। केवल धर्म और ईश्वर की उपासना के हो ठीक ठीक मार्ग में यह चमत्कार भरा हुआ है।

धर्म और ईश्वर के विषय का साधारण ध्येय यही है। इसके विपरीत होनेवाला समस्त व्यापार, मन्दिर, पूजा, साधु, सन्यासी, गंगा-स्नान, दान-पुण्य के रूप में जो कुछ भी हो, किसी न किसी रूप में स्वार्थ का ही व्यापार है, परमार्थ का नहीं, और उसमें वैयक्तिक तथा सामूहिक अहित ही भरा हुआ है।

अर्थात् उद्योगों का सम्पूर्ण उत्पादन दुनियाँ भर से सस्ते दामों में प्राप्य होगा ? उदाहरणार्थ एक मोटरकार का दाम ५०० रू० से अधिक नहीं होगा ?

(३) हमारे समाज, जाति अथवा वर्ग में फूट बिलकुल नहीं है ?

(४) किसी भी काम की पूर्ति में खुद आपका ही प्रयास और परिश्रम कितना रहता है ?

(५) अपनी निजी मान मर्यादा की रक्षा के प्रश्न पर आप किस हद तक कटिबद्ध हो सकते हैं तथा कितना त्याग कर सकते हैं ?

ऐसे ही प्रश्नों के जब पूर्ण सन्तोषजनक और सप्रमाण उत्तर आप देंगे तभी राष्ट्र की सत्ता में आपको स्थान मिलेगा। वह समय अब बहुत निकट है जब आपसे यह प्रश्न किये जायंगे, अतएव समय पर उनके यथार्थ उत्तर प्रस्तुत करने के लिये सोचना समझना और तैयार रहना आप का काम है।

हुई नज़र आ रही है। ईश्वर की सत्ता पर विश्वास करने वाले यह मानते आये हैं कि जो कुछ करता है, ईश्वर ही करता है तथा वह जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है। ठीक यह बात वर्तमान समय के दंगों से प्रगट हो रही है जिनमें सब से अधिक धन-जन तथा इज्ज़त आबरू की हानि हम मारवाड़ियों को ही अधिक सहनी पड़ रही है। इन दंगों का प्रत्यक्ष फल यह हो रहा है कि हमारे समाज का अहंकार तथा "अपनी अपनी डफली, अपना अपना राग" की हठ नीति काफूर होती जा रही है। इन्हीं दंगों के फल स्वरूप "आवश्यकता ही आविष्कारों की जननी है" का उदाहरण भी चरितार्थ होता जा रहा है। आज हम विवश होकर स्वार्थ परायणता को त्याग कर ऐक्य-सूत्र में आबद्ध होते जा रहे हैं।

जो इन संघर्षों के फल स्वरूप उत्पन्न होने वाले एकता और समान, सद्भाव स्थापन के अवसरों से लाभ नहीं उठायेंगे, जो उस ऐक्य-सूत्र पर विश्वास नहीं करेंगे उनका विनाश भी अनिवार्य है और इस नाते से उनके विनष्ट हो जाने पर हमें कोई दुःख भी नहीं होगा। अपने अंग के उस भाग को शल्य चिकित्सा द्वारा काटकर फेंक देना ही श्रेयस्कर होगा जो सड़ गया है तथा स्वस्थ अंगों को भी सड़ा देने का खतरा पैदा करता है। हमें तो सुख होगा कि इसी बहाने समाज के उन अंगों का— बिना हमारे प्रयास के ही— सफाया हो गया जो वस्तुतः सड़ चुके हैं—जो अपने अस्तित्व को ही अभी तक नहीं पहचान सके, जो एकता और पारस्परिक सहयोग के फल को अब तक भी न जान सके, जो एकता के महत्व का आज तक भी ज्ञान न प्राप्त कर सके, माता बहनों और बेटियों की इज्ज़त लुटते देखने पर भी आत्मत्याग, जीवन की क्षण भंगुरता का ज्ञान, जोश और वीरत्व जिनमें नहीं आता, समय के अनुसार जो अपने अन्दर परिवर्तन नहीं ला सकते, तथा जिन्हें अपने विनाश में ही मुक्ति सूझ रही है, उन्हें नष्ट ही हो जाना चाहिए, इस तेजी के साथ बढ़ते हुए युग में हम उन सड़े हुए अङ्गों की ओर पीछे मुड़कर नहीं देख सकते। असाध्य रोगी की शीघ्र मृत्यु ही वांछनीय हुआ करती है।

भावी भारत का श्रेष्ठ, उच्च तथा दायित्वपूर्ण स्थान तो उन्हीं का भोग्य विषय है जो आत्मत्यागी, बलिदान-परायण सच्चे शूरमा हैं और जो अपने इन्हीं गुणों द्वारा;

अर्थात् उद्योगों का सम्पूर्ण उत्पादन दुनियां भर से सस्ते दामों में प्राप्य होगा ? उदाहरणार्थ एक मोटरकार का दाम ५०० रू० से अधिक नहीं होगा ?

(३) हमारे समाज, जाति अथवा वर्ग में फूट बिलकुल नहीं है ?

(४) किसी भी काम की पूर्ति में खुद आपका ही प्रयास और परिश्रम कितना रहता है ?

(५) अपनी निजी मान मर्यादा की रक्षा के प्रश्न पर आप किस हद तक कटिबद्ध हो सकते हैं तथा कितना त्याग कर सकते हैं ?

ऐसे ही प्रश्नों के जब पूर्ण सन्तोषजनक और सप्रमाण उत्तर आप देंगे तभी राष्ट्र की सत्ता में आपको स्थान मिलेगा। वह समय अब बहुत निकट है जब आपसे यह प्रश्न किये जायंगे, अतएव समय पर उनके यथार्थ उत्तर प्रस्तुत करने के लिये सोचना समझना और तैयार रहना आप का काम है।

पाठकों से

चाहे कोई लेखक हो या व्यवसायी, संसार के किसी भी क्षेत्र में जब वह अपने लेख या अपनी पुस्तक के साथ अथवा व्यवसाय विशेष के साथ अवतीर्ण होता है तो उसे प्रोत्साहन और प्रगति उसी दशा में मिला करती है जब लोकमत उसकी वस्तु का आदर करता है और अपनाता है। सर्व साधारण पाठकों के रूप में इस पुस्तक के सम्बन्ध से, जिस लोकमत के सम्पर्क में हम आ चुके हैं, उसकी सहानुभूति अपनी ओर आकृष्ट करना ही तो वह गुण है जो किसी लेखक या व्यवसायी की सफलता तथा लोकप्रियता का निर्णय करता है। जो इस तथ्य की अवहेलना करते हैं वस्तुतः वह व्यवसाय के मौलिक उद्देश्य से ही वंचित हैं और सफलता से बहुत दूर हैं। "नेशनल इंडिया पब्लिकेशन्स" अपने इस ध्येय को शिरमौर रखकर उसके पूर्ण निर्वाह के लिये कृत-संकल्प है। कम से कम दामों में अधिक से अधिक उपयोगी तथा रोचक पाठ्य सामग्री जन साधारण की सेवा में प्रस्तुत करते रहने के मार्ग में हम अपने कृपालु पाठकों और ग्राहकों की सम्मति सुझाव और संशोधनों का सदैव स्वागत करते रहने के अभिवचन से आबद्ध हैं। अस्तु आपलोगोंसे संपर्क स्थापित करने की दिशा में यहां हम प्रस्तुत पुस्तक के लिये उचित सम्मति संशोधन तथा सुझावों को आमंत्रित करते हुए एक फार्म दे रहे हैं और आशा करते हैं कि आप इस विषय में हमें अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करेंगे।

इतना ही नहीं, प्रस्तुत पुस्तक के द्वितीय संस्करण के प्रकाशन के पूर्व शीघ्र ही हम "मारवाड़ी डाइरेक्टरी" के प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ कर रहे हैं जिसके लिये आपके मार्फत हम मारवाड़ी समाज के प्रत्येक क्षेत्र के प्रमुख और विशिष्ट नर-नारी

अर्थात् उद्योगों का सम्पूर्ण उत्पादन दुनियां भर से सस्ते दामों में प्राप्य होगा ? उदाहरणार्थ एक मोटरकार का दाम ५०० रू० से अधिक नहीं होगा ?

(३) हमारे समाज, जाति अथवा वर्ग में फूट बिलकुल नहीं है ?

(४) किसी भी काम की पूर्ति में खुद आपका ही प्रयास और परिश्रम कितना रहता है ?

(५) अपनी निजी मान मर्यादा की रक्षा के प्रश्न पर आप किस हद तक कटिबद्ध हो सकते हैं तथा कितना त्याग कर सकते हैं ?

ऐसे ही प्रश्नों के जब पूर्ण सन्तोषजनक और सप्रमाण उत्तर आप देंगे तभी राष्ट्र की सत्ता में आपको स्थान मिलेगा। वह समय अब बहुत निकट है जब आपसे 'यह प्रश्न किये जायंगे, अतएव समय पर उनके यथार्थ उत्तर प्रस्तुत करने के लिये सोचना समझना और तैयार रहना आप का काम है।

पाठकों से

चाहे कोई लेखक हो या व्यवसायी, संसार के किसी भी क्षेत्र में जब वह अपने लेख या अपनी पुस्तक के साथ अथवा व्यवसाय विशेष के साथ अवतीर्ण होता है तो उसे प्रोत्साहन और प्रगति उसी दशा में मिला करती है जब लोकमत उसकी वस्तु का आदर करता है और अपनाता है। सर्व साधारण पाठकों के रूप में इस पुस्तक के सम्बन्ध से, जिस लोकमत के सम्पर्क में हम आ चुके हैं, उसकी सहानुभूति अपनी ओर आकृष्ट करना ही तो वह गुण है जो किसी लेखक या व्यवसायी की सफलता तथा लोकप्रियता का निर्णय करता है। जो इस तथ्य की अवहेलना करते हैं वस्तुतः वह व्यवसाय के मौलिक उद्देश्य से ही वंचित हैं और सफलता से बहुत दूर हैं। "नेशनल इंडिया पब्लिकेशन्स" अपने इस ध्येय को शिरमौर रखकर उसके पूर्ण निर्वाह के लिये कृत-संकल्प है। कम से कम दामों में अधिक से अधिक उपयोगी तथा रोचक पाठ्य सामग्री जन साधारण की सेवा में प्रस्तुत करते रहने के मार्ग में हम अपने कृपालु पाठकों और ग्राहकों की सम्मति सुझाव और संशोधनों का सदैव स्वागत करते रहने के अभिवचन से आबद्ध हैं। अस्तु आपलोगोंसे संपर्क स्थापित करने की दिशा में यहां हम प्रस्तुत पुस्तक के लिये उचित सम्मति संशोधन तथा सुझावों को आमंत्रित करते हुए एक फार्म दे रहे हैं और आशा करते हैं कि आप इस विषय में हमें अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करेंगे।

इतना ही नहीं, प्रस्तुत पुस्तक के द्वितीय संस्करण के प्रकाशन के पूर्व शीघ्र ही हम "मारवाड़ी डाइरेक्टरी" के प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ कर रहे हैं जिसके लिये आपके मार्फत हम मारवाड़ी समाज के प्रत्येक क्षेत्र के प्रमुख और विशिष्ट नर-नारी

सज्जनों के परिचय का संकलन करना चाहते हैं। इस प्रकार आपको थोड़ा सा कष्ट देकर हम यह चाहेंगे कि इस समाज का कोई भी महत्वपूर्ण रत्न प्रमाद या अज्ञानता-वश प्रकाश में आने से वंचित न रह जाय। इस कार्य में पाठकों से हम यथाशीघ्र संबंधित लेखों, सूचनाओं, जीवन-चरित्रों के रूप में परिचय प्रेषित करने की प्रार्थना करते हैं जिसके बदले में हम स्वयं अपनी सेवायें उनके लिये अर्पित करने के लिये तैयार हैं।

प्रकाशक—

नेशनल इंडिया पब्लिकेशन्स

२१, बड़तल्ला स्ट्रीट

कलकत्ता

पाठकों को आमंत्रण

भीमसेन केड़िया

C/o नेशनल इण्डिया पब्लिकेशन्स

२१, बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता

महोदय,

मैंने आपकी "भारत में मारवाड़ी समाज" पुस्तक पढ़ी। प्रस्तुत पुस्तक में मेरे विचार से जो जो त्रुटियां हैं तथा जहां जहां संशोधन की आवश्यकता है उसका विवरण द्वितीय संस्करण के लिये अपनी सम्मति के रूप में पत्र द्वारा मैं आपके पास भेज रहा हूं:—

भवदीय—